

NAINI TAL
Class No. 891.3
Book No. Sh906R
Reg No. 5693

रेणु

श्रीराम शर्मा 'राम'

नवयुग प्रकाशन
दिल्ली

प्रथम संस्करण : नवम्बर १९६०

मूल्य : ४ रुपया ७५ नये पैसे

प्रकाशक : नवयुग प्रकाशन
बैंगलो रोड, दिल्ली-६

मुद्रक : शुक्ला प्रिंटिंग एजेन्सी द्वारा
नूतन प्रेस, दिल्ली

एक

रामनगर गाँव, भले ही, अपने आप में अधिक बड़ा न हो, परन्तु अब उसकी गोद में पाला-पोसा गया एक आदमी, गाँव की सीमा के पार, नगर और देश में प्रसिद्ध हो गया, तो अनायास वह गाँव भी लोगों की जिह्वा पर आ गया। सर्वत्र उस गाँव का चर्चा होने लगा। लेकिन वह रामनगर भले ही, बाहरी संसार के लिये विस्मय और कौतुक का विषय बना हो, परन्तु उसका आकार-प्रकार ज्यों-का-त्यों था। मानो सदाबहार की तरह, जो कुछ वर्ष पूर्व उसका रूप था, वही आज था। मनुष्य बदला, समाज बदला और देश बदला; परन्तु रामनगर रूपी शरीर में जो रोग एक बार लग गया, मानो उसके जीते-जी वह नहीं निकल सकता था। उसका वही पुराना पथ, वही खलिहारे, वही कच्चे-पक्के मिट्टी के मकान। जिसके निवासियों का वही चिर-पुरातन से चला आया कृश-गात, दुर्बल मन और उनमें भरा क्षीण आत्म-सम्मान का भाव।

किन्तु उस गाँव की गोद में श्रीधर नाम का एक युवक ऐसा आया कि उसने गाँव का नाम उजागर कर दिया। श्रीधर से मिलने और दो बात करने के लिये देश के समाज-सुधारक, धनपति और राष्ट्रीय नेता उस गाँव में आते और उसके कच्चे मकान में बैठकर लौट जाते। मानो श्रीधर के पास देश के उत्थान की कुंजी थी। उसकी बुद्धि, विचार और सम्मति मानो सभी के लिये माननीय थी। कदाचित् यही कारण था कि श्रीधर उन दिनों गाँव में कम रहता, उसे नगर में ही, अपना अधिक समय देना पड़ता।

फलस्वरूप, उस दिन भी श्रीधर घर पर नहीं था। गाँव का एक जवान हाथ में लाठी लिये श्रीधर के द्वार पर पहुँचा और उसकी माँ को आवाज देता हुआ बोला—'अरी, ओ चाची!'

घर के अन्दर बैठी हुई चाची ने बोल सुना तो वहीं से कह दिया—'अरे, अन्दर आजा, जगपाल!'

किन्तु उत्तर पाने से पूर्व ही, जगपाल अन्दर पहुँच गया। वह चाची को घर के चौक में बैठी देख, उसी के सामने खड़ा होकर बोला—'अब तुझे यह चर्खा कातना और मजूरी करना शोभा नहीं देता, चाची!'

बात सुनी, तो उस वृद्धा चाची ने जगपाल की ओर देखा। उसे पता था कि वह उद्धत जगपाल पूरा नटखट है,...। शैतान है! इसलिये, जब वह कुछ कहने चली, तो तभी, जगपाल ने फिर कहा—'चाची, भाग्य अपने-अपने, कि तेरा बेटा श्रीधर इतना बड़ा आदमी हो गया। गाँव में क्या, देश-देशांतर में प्रसिद्धि पा गया।'

बलात् चाची ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'अरे पगले! यह भी देखा कि मैंने श्रीधर के लिये क्या कुछ नहीं किया। चक्की पीसी और मजूरी करके उसे पढ़ाया-लिखाया। वह यों ही, बड़ा आदमी नहीं बन गया।'

जल्दी से, मानो आतुर बनकर जगपाल ने धरती में लाठी को बजाया और कहा—'हाँ, हाँ, तुमने बहुत बड़ा परिश्रम किया, चाची! सच, बहुत बड़ा।' और तभी वह कुटिल भाव से मुस्करा कर उस वृद्धा की ओर देखने लगा। स्पष्ट ही, उसके मन में जो बात आयी, बरबस ही रोक गया। क्योंकि उसने सोचा, वह कुछ कहेगा, तो इस बुढ़िया को अच्छा नहीं लगेगा। श्रीधर की माँ है, तो इसे पसन्द नहीं आयेगा कि मैं इसके बेटे की बुराई करूँ। इसे यह बताऊँ कि तू जिस बेटे पर अभिमान करती है, वह भी साँप है, फूत्काकर करता है, काटता है···अपने दाँतों का जहर···

किन्तु तभी, श्रीधर की माँ ने कहा—'जगपाल, मेरा श्रीधर हजारों में एक है।'

जगपाल बोला—'पर चाची, तू श्रीधर का ब्याह क्यों नहीं कर देती। उसका घर बसा दे। फिर तेरी गोद में पोते पोतियाँ...'

इतना सुना, तो उस चाची ने साँस भरी और छोड़ दी। वह उसी स्वर में बोली—'श्रीधर अभी ब्याह नहीं करेगा। मैं कुछ कहूँ, तो उसे नहीं सुन सकेगा। अब उसकी निगाह ऊँची है न, तो भला नीचे कैसे देख सकेगा।' उसने फिर कहा—'तू बोल, जगपाल! आज कैसे भूल आया।'

जगपाल ने कहा—'चाची, आ नहीं पाता, पर तुम्हारे पास तो सचमुच ही, बहुत दिन से नहीं आ सका।'

चाची ने कहा—'बड़े बाप का बेटा है। पूरी जमींदारी है, लेन-देन है।'

तुरन्त ही, जगपाल ने कहा—'अरी चाची! अब हमारा बड़ा क्या···छोटा क्या! पूरा गाँव अब श्रीधर की ओर देखता है। भला जमींदार को अब कौन पूछता है। मजदूर भी हमारे खेत पर काम करने से कतराता है।'

तभी चाची ने कहा—'क्यों न कतराये रे! तुम लोग काम लेते हो और देते कुछ नहीं। उस दिन चरतू चमार की औरत रोती आयी कि उसका खेत···'

बीच में ही जगपाल ने कहा—'चाची, तुम जिन्हें गरीब समझती हो, वह अब मालदार हैं। गरीबी का ढोंग करते हैं। चरतू की बहू तुम्हारे पास रोकर तो आयी, पर यह नहीं बता गयी कि असलियत क्या थी। खेत हमारा था और अब चरतू ने उसे अपने कब्जे में कर लिया है। उसने मुकद्दमा किया है।' यह कहते हुए उसने लाठी उठा ली और कहा—'आज सोचा कि भैया श्रीधर से मिलूँ और गाँव की स्थिति बताऊँ। चाची, जो घर कल बड़े थे आज उन्हें रोटी मिलना

भी कठिन हो रहा है। देखती हो, जमाना बदल गया।'

चाची ने साँस भरी और कहा—'हाँ जगपाल, यह परिवर्तनशील संसार है।'

जगपाल चल पड़ा और बोला—'चाची, कहे देता हूँ यह परिवर्तन हमारा नाश कर देगा। ऐसे क्या इन्सानियत को रखा जा सकेगा। राम-राम, चाची !'

चाची ने कहा, 'राम-राम, जीते रहो।'

जगपाल उस मोहल्ले से निकल गाँव के चौक में पहुँच गया। एक घर के चबूतरे पर कई किसान बैठे हुक्का पी रहे थे। जगपाल वहीं ठहर गया। उनमें जो आयु से प्रौढ़ था, वह जगपाल को लक्ष्य करके बोला—'बैठ जगपालसिंह, हुक्का पी। सुना, इधर कैसे आना हो गया।'

जगपाल बैठ गया और बोला—'आज आया था नेताजी के पास।'

दूसरे ने कहा—'श्रीधर यहाँ कहाँ है। कई दिन हुए, एक मोटर में बैठकर दो शहरी आये और उन्हीं के साथ वह भी चला गया। उस वक्त मैं खेत पर था। पानी दे रहा था।'

जगपाल ने कहा—'भैया हरदयाल, तुम्हारे नेता के पास जो भी आ जाये, वह कम है। हवा के रुख पर चढ़ा परिन्दा ऊँचाई पर जाता है।'

हरदयाल ने कहा—'श्रीधर अब गाँव में बहुत कम रहता है।'

जगतू नाम के प्रौढ़ व्यक्ति ने जगपाल की ओर हुक्का बढ़ा दिया और कहा—'जब भाग्य चेतता है, तो भगवान् धन भी देता है और प्रतिष्ठा भी...'

हरदयाल ने कहा—'श्रीधर के पास पैसा नहीं है।'

जगतू बोला—'तुम मूर्ख हो ! श्रीधर को भोला समझते हो।'

हरपाल ने कहा—'दादा, किसी के पास पैसा हो, तो वह छुपता नहीं है। पैसा शोर करता है, बोलता है।'

जगपाल हँसा—'हमारे गाँव का बनिया धनपतराय सदा नंगे पैर और फटा कुरता पहिने रहता था। पर जब मरा, तो पचास हजार रुपया उसका उधार में पड़ा हुआ देखा गया। भला कोई कह सकता था कि वह···'

हरपाल बोला—'भैया जगपाल, धनपतराय का समय उसके साथ चला गया। आज पैसे को कोई छुपाकर नहीं रख सकता।'

जगतू ने कहा—'शहर में सभी लखपति दिखाई देते हैं। सभी बिजली के प्रकाश में चमकते हैं।'

यह सुनकर जगपाल हँस दिया। हरपाल भी मुस्करा दिया।

उसी समय वहाँ पर बैठे तीसरे व्यक्ति लखमा ने कहा—'बुढ़िया मरी और श्रीधर इस गाँव से गया। फिर वह यहाँ नहीं आयेगा।'

जगपाल बोला—'हाँ, क्यों आयेगा। कौन मूर्ख है कि जो शहरी साधन पाकर हम जंगलियों में आकर बसेगा।'

हरपाल ने कहा—'हम जंगलियों में ही श्रीधर का जन्म हुआ। इस गाँव की गोद में पला और बड़ा हुआ।

जगतू ने कहा—'इसे कोई नहीं समझता। भला अब गाँव में कौन रहना चाहता है।'

मलखू बोला—'गाँव में न तहजीब है, न रोजगार है।'

जगपाल ने कहा—गाँव में भूतों का डेरा है। इन्सान क्या यहाँ ठीक से साँस लेता है।'

जगतू ने कहा, 'आज की सरकार भी गाँवों पर ध्यान नहीं देती। शहरों को बढ़ाती है, वहीं पर रुपया लगाती है।'

जगपाल उठ खड़ा हुआ और बोला—'भैया, अब इस देश का रूप गाँवों में नहीं, शहरों में है। वहाँ इन्सान हैं, उसका सौन्दर्य है।'

किन्तु उसके साथ ही हरनाम भी खड़ा हो गया और बोला—'एक बात मैं कहता हूँ, अगर इस देश को जीवित रहना है, तो गाँवों की हालत में सुधार करना होगा।'

जगतू ने अपनी लाठी सँभाली और कहा—'हो गया, इन गाँवों का सुधार ! जो पहिले खुशहाल थे, वही आज हैं। आज भी वही समाज के सरपंच हैं। देखो न, यह जगपाल···इसका बाप···'

जगपाल हँस दिया—'चौधरी, अब हमारे पास क्या रखा है ?'

जगतू ने कहा—'सब कुछ है, तुम्हारे पास। कहने को जमींदारी समाप्त हो गयी, पर तुमने कितनी जमीन दी, दूसरों को। मैं देखता देखता हूँ, सभी घेर ली। जो दूसरे जोतते थे, वह भी छीन ली। पटवारी के कागजों में तुम्हारी ही जीत लिखी मिली।'

हरनाम ने कहा—'अरे, चल जगपाल ! यह दादा तो अब सठिया गया है। अपनी आँख का शहतीर तो देखता नहीं, दूसरे का तिनका देखता है।

इतनी बात सुनी, तो जगतू तुनक गया। वह अपने स्वर पर जोर देकर बोला—'अरे, वाह ! चोर-चोर मौसेरे भाई ! अब तेरा बाप भी तो जमींदार बन गया है। मूंछें मरोड़ कर निकलता है।'

हरनाम जवान था, उसका खून गरम था, तुरन्त ही लाठी को जमीन में मारकर बोला—'हमने किसी का खाया नहीं है। किसी का कर्ज······'

वह चबूतरा कि जिस पर पर वे सब खड़े थे, जगतू का था। घर में जगतू की औरत सब बातें सुन रही थी। जब उसने हरनाम से कर्ज की बात सुनी, तो तुरन्त बाहर निकल आई और तपाक से अपना हाथ मचका कर बोली—'ओहो, आज बड़ी बात करने चला है, रे तू ! बता तो कब का साहूकार बन गया। काल तक तो······'

हरनाम क्रोध में आ गया। वह अपने स्वर पर तनखी लाकर बोला—'देख चाची······'

किन्तु चाची ने कहा—'अरे, चल, चल, आया बात बनाने।'

उसी समय जगपाल बीच में पड़ा और हरनाम की लाठी पकड़ कर बोला—'आगये न, अपनी राह पर ! भई, लड़ो मत ! चलो मेरे साथ।'

उस समय पड़ौस के कुछ और आदमी आ गये। अवसर की बात कि हरनाम की माँ भी निकल आयी।

मलखू ने कहा—'सचमुच हम जंगली हैं। जानवर का स्वभाव रखते हैं।'

जगपाल तभी हरनाम को वहाँ से ले गया। रास्ते में उसने कहा—'हम एक नहीं हैं।'

हरनाम बोला—'कोई दो रोटी खाता है, तो ये गाँव के लोग जलते हैं।'

जगपाल बोला—'ये शहर वाले आते हैं, और हमें उल्लू बनाकर चले जाते हैं।'

किन्तु हरनाम के मन में उस समय बात चुभ गयी थी। उसका सोया हुआ क्रोध उभर आया था। उसके मन में बार-बार आ रहा था कि लौट कर जाय और अपनी लाठी से जगतू का सिर फोड़ दे। उसकी औरत को भी बता दे कि किस तरह बात की जाती है।

लेकिन तभी जगपाल ने कहा—'भैया हमारे गाँव में अब एक साँप पैदा हो गया है। हमें उसे मारना है। हमीं ने उसे दूध पिलाया है,—समझ लो न मेरी बात। यह श्रीधर हमारे टुकड़ों से ही आदमी बना है। वही अब हमारे लिए घातक सिद्ध हो रहा है।'

हरनाम ने जमीन पर थूका और कहा—'जगपाल, यही सब करते है। श्रीधर फिर भी गाँव का है।'

'जगपाल ने अपने स्वर पर जोर दिया और कहा—'वह हमारे गांव का है, यह हमारी और परेशानी है। पहिले लोग जमीदार और साहूकारों को कोसते थे, पर अब तो इन नेताओं ने अपनी दूकानें खोल दीं हैं और जनता को लूटना आरम्भ कर दिया है।'

हरनाम ने इतनी बात सुनी, तो अपना मत नहीं दिया। वह गाँव से बाहर जाकर, दूर खड़े अपने खेत की ओर देखने लगा।

उसी ओर देखते हुए जगपाल बोला—'अब की तुम्हारी फसल

अच्छी है। सरसों भी खूब फूली है।'

हरनाम ने बात सुन ली, पर अपना मत नही दिया। वह तब भी मौन बना रहा। उसी समय जगपाल दूसरी ओर बढ गया। किन्तु अभी वह कुछ ही दूर चला था कि एक परिचित परिवार की युवा लडकी को कुए पर दूसरी लडकी से बात करती देख वह ठिठका और तब आगे बढ़ने लगा। निश्चय ही, उस लडकी को देख पाते ही, उसके मानस मे एकाएक ही एक अजीब प्रकार का भाव उठ आया था। वह उससे बोलना चाहता था।

किन्तु तभी लडकी ने कहा—'अरे भैया, जगपाल!'

जगपाल ने कहा—'रेणुका देवी!'

रेणुका ने कहा—'आज इधर कैसे?'

जगपाल ने कहा—'एक काम था। कहो, अच्छी तो हो, तुम?

रेणुका ने कहा—'हाँ अच्छी हूँ। चलो, घर।

जगपाल बोला—'अब नही फिर आऊँगा।'

रेणुका जगपाल के पास आ गयी तभी वह बोली—'माँ कहती थी कि तुम आते नही।'

जगपाल बोला—'छूट नही होती।' उसने पूछा—'कहो श्रीधर आता है?'

रेणुका ने तुरन्त ही जैसे अज्ञात बनकर कहा—'नही—'इधर देर से नही।'

जगपाल वहाँ से चल दिया और ताना मारता हुआ बोला—'अब वह क्या आयेगा। बडा आदमी हो गया है!'

दो

जीवन की जिस प्रज्वलित हुई अग्नि से श्रीधर ने अपने को तपाया तो निश्चय ही वह कुन्दन बन गया। गाँव में जगपाल के पिता ठाकुर जगजीत को छोड़ कदाचित् ही कोई और व्यक्ति होगा कि जो श्रीधर के प्रति अनुराग या सद्भावना न रखता हो। यद्यपि जगजीतसिंह भी उस श्रीधर को स्नेह का पात्र मान सकता था, परन्तु गोर अपने राज्य-क्षेत्र में इसका प्रभुत्व मानना अथवा कीर्ति-विवाद सुनना पसन्द नहीं कर सकता था। अतएव ठाकुर में, स्वभाववश ही, उस सामान्य घर के श्रीधर के प्रति ईर्ष्या और जलन का भाव संचित हो रहा था। क्योंकि जो गाँव का जमींदार था, सम्पन्न था, पहिले के समान अब उसके प्रति किसी का भी झुकाव नहीं था। यदि कभी गाँव में तहसीलदार, थानेदार या कलेक्टर आता तो वह परम्परागत रूढ़ि के अनुसार ठाकुर के बँगले पर नहीं पहुँचता। उन्हें श्रीधर से ही बात करना आवश्यक जान पड़ता।

इस प्रकार, गाँव में, मानो एक नयी परम्परा और भावना का जन्म हो रहा था। लोगों की निगाहें बदल रही थीं; विचार बदल रहा था। धार्मिक और सामाजिक मान्यतायें भी नया रूप धारण करती जा रही थीं।

लेकिन ठाकुर जगजीत के लिये जो सबसे बड़ी सुगमता प्राप्त थी, वह यह कि उसका व्यवसाय कृषि था। अतएव, गाँव के किसानों और मजदूरों से उसका तब भी सम्बन्ध था। फलस्वरूप, आत्मीयता का भाव भी, वह उस वर्ग से सहज में प्राप्त कर सकता था। इसलिये, अब अपने

पिता के मनोभावों का प्रतिनिधित्व पुत्र करने के लिये समर्थ बना, तो वह जगपाल पूर्ण रूप से इस बात के लिये चेष्टित हुआ कि वह गाँव के समाज में अपनी घुस-पैंठ स्थापित करे। क्योंकि अब तक सब प्रकार मे जमींदार गाँव में रहते हुए भी, जैसे गाँव का व्यक्ति नहीं था। उसका अलग बँगला था और बहुत कम व्यक्तियों से उसका सम्पर्क रह पाता था। क्योंकि वह जमींदार था, सम्पन्न था, इसलिये गाँव का विशिष्ट व्यक्ति बनकर जनसाधारण से सम्बन्ध रखना उसे प्रिय नहीं था।

किन्तु जब देश स्वतन्त्र हुआ और जमींदारी प्रथा का भी अन्त हुआ, तो स्वभाव से अहंमन्य और महत्वाकांक्षी जगजीत ने देखा कि मानो किसी नयी दिशा की हवा क्या आयी, चिरकाल से चली आयी परम्परा को ही उड़ा कर ले गयी। यद्यपि उसने अखबारों में पढ़ा कि रूस का जार बोल्शेविकों द्वारा राजमहल से निकाल कर जन-पथ पर फेंक दिया गया···उसका मांस, हड्डी सभी छितरा दिया गया, नगर के चौराहे पर···और पढ़ा उस जगजीत ने कि अब राजा को नहीं माना जा सकता···प्रजा का राज्य ही सर्वोपरि हो गया। कल जो मँजदूर था, कारखाने में लोहा कूटता था, खेत में हल जोतता था कि आज वही एक विशाल देश का सर्वस्व बन गया। उसकी वाणी ही देश की वाणी··· उसकी इच्छा ही, देश की इच्छा···

यों, अनायास ठाकुर जगजीत का दम घुटता। जैसे प्राणों को कोई ऐंठन देता। उसमें जहरीला धुआँ घुमड़ता। उसे लगता कि अब देश नहीं रहेगा, मर जायेगा। मूर्ख और कायरों के हाथ में क्या देश का सम्मान और वैभव सुरक्षित रह सकेगा!

किन्तु ठाकुर के पुत्र जगपाल का मत यह नहीं था। वह गाँव और नगर दोनों सभ्यताओं का मिश्रण था। यद्यपि वह पढ़ तो अधिक नहीं सका, परन्तु पढ़ाई के लिये उसे अनेक वर्ष नगर में रहना पड़ा था, अतएव उसने सहज ही जान लिया कि आज देश का प्राण, गाँवों में नहीं, नगरों में है। सभ्यता वहीं; नवयुग की धारा वहीं. फिर भी

पिता और पुत्र का दृष्टिकोण एक था। जगपाल पिता से अधिक चतुर और कुटिल था। जिस रेणुका नाम की युवती को उसने कुएँ पर देखा, वह दूसरे दिन ही, उसके घर पहुँच गया। यद्यपि गाँव के जमींदार के पुत्र का उस घर पर पहुँचना अचरज का विषय था, परन्तु वहाँ जाते ही, जिस बात को प्रगट किया, उससे, यह नहीं समझा गया कि उसका जाना अप्रत्याशित था। जगपाल ने रेणुका के पिता को लक्ष्य किया और कहा—'ठाकुर, तुमने पिता से एक खेत लेने की बात कही थी, सो अब चाहो तो उसका सौदा हो जायेगा। बोलो, क्या उस विचार को अब भी कार्यरूप दिया जा सकेगा।'

उसी समय रेणुका की माँ भी वहाँ आ गयी। जगपाल ने उसे देखते ही कहा, 'राम-राम चाची!'

चाची ने कहा—'जीते रहो, बेटा ; बड़ी उम्र हो।'

सुनकर जगपाल हँसा—चाची, आजकल अधिक उम्र पाना शोभा की बात नहीं। जल्दी मरना ही अच्छा है। देखती हो न, बाजार में चीज महँगी मिलती है और कम टिकाऊ भी। ग्राहक जल्दी उस वस्तु का खरीदार बने, यही आज का उद्योगपति चाहता है। सो ऐसे ही परमात्मा...'

रेणुका के पिता ने कहा—'सचमुच! हाल बुरा है। अभी एक महीना गुजरा कि यह धोती का जोड़ा लाया था कि अभी से फट चला। पहिले से दाम भी दूने देकर आया।'

जगपाल हँसा—'चाचा जी, शहर वाले सोचते हैं कि गाँव के किसान मालामाल हो गये हैं। एक के दस बनाते हैं।

किन्तु रेणुका का पिता हँसा नहीं, वह गम्भीर होकर बोला—'एक के दस शहर वाले बनाते हैं, हम नहीं। मैंने जिस भाव में गेहूँ बेचा था, उसी का अब दुगना हो गया है। हमें लगता है कि व्यापारी और सरकार दोनों ने हम लोगों को ठगना शुरू किया है।'

जगपाल ने कहा, 'किसान सदा ठगा गया है, चूसा गया है। तभी उसने रेणुका की माँ को लक्ष्य किया और कहा—'तुम कहो चाची, रेणुका के लिये कोई लड़का देखा ? मैंने सुना था श्रीधर···'

रेणुका की माँ बोली—'हाँ भैया ! श्रीधर की माँ से बात तो चली थी। पर पहिले तो हाँ कर ली, पर अब······'

जगपाल ने तुरन्त ही कहा—'अब श्रीधर कैसे विवाह करेगा, तुम्हारी रेणुका से। अब वह नेता है। बड़ा आदमी है।'

रेणुका का का पिता ठाकुर कल्याणसिंह बोला—'पर हमने जब बात चलायी, तब वह गरीब था। माँ पीसने पीसती थी। माँ और बेटे दोनों दया के मोहताज थे।'

इतनी बात सुनी, तो जगपाल कड़वे भाव से मुस्करा दिया। वह तुरन्त बोला—'ठाकुर,, इस दुनियाँ में ऐसे नहीं निभता। तुमने गरीब श्रीधर को देखा, तो इसमें आश्चर्य की बात क्या ; पर सम्पन्न श्रीधर तुम्हारी लड़की को स्वीकार करे, ऐसा तुम्हें देखने को नहीं मिलेगा।'

बात सुनी तो ठाकुर रोष में आ गया। वह छूटते ही बोला—'हम भी उस श्रीधर की खुशामद नहीं करेंगे। वह बड़ा आदमी अपने लिये होगा, हम उससे कुछ माँगने नहीं जायेंगे।'

यह सुन, ठकुरानी ने पति की ओर देखा। तुरन्त ही, उसने कहा—'तो गुस्सा करने की क्या बात है। भाग्य जहाँ लड़की का ले जायगा, वहाँ जायेगी।'

उसी समय, जैसे अवसर पाकर, जगपाल ने आग को और किरोदना चाहा। उसने कहा—'चाची, बात तो तुम्हारी ठीक है, पर यह भी देखती हो कि आदमी कितनी जल्दी बदलता है। आज हमारे समाज में जैसी परम्परा है,उसे देखते क्या कहा जा सकता है कि भाई-चारा रहेगा। ऐसे तो इन्सान ही इन्सान के लिये खाई खोदने लगेगा।'

उस समय रेणुका बैठकखाने के दरवाजे पर जा खड़ी हुई थी। जगपाल जो कुछ कह रहा था, उसे वह भली भाँति सुन रही थी।

किन्तु उसी समय रेणुका की माँ राधाबाई ने साँस भर कर कहा—भैया, इस दुनियां में कौन किसका है। सब बनी के साथी हैं। और हम तो इस गांव में हैं ही नये, अभी कुल पाँच वर्ष तो आये हुये हैं, इस गांव में।'

जगपाल हँसा—'चाची, इन वर्षों में ही चाचा गाँव में आधे के हिस्सेददार बन गये हैं। इस बार भी गाँव में तुम्हारे खेत सबसे अच्छे हैं। बच्चे के पाँव पालने में दिखाई देते हैं।'

ठाकुर भी हँसा—'वाह, क्या बात कही है जगपालसिंह।'

जगपाल ने कहा—'झूँठ नहीं कहता, चाचीजी! आप भाग्यवान् हे। सब यही कहते हैं।'

उसी समय राधाबाई ने रेणुका की ओर देखा। उससे कहा—'जारी' भैया जगपाल आया है, एक गिलास दूध—'

जगपाल ने कहा—'न, चाची! दूध पीकर चला था।'

ठाकुर बोला—'नहीं, 'नहीं, दूध पीना पड़ेगा। अरे दूध और पूत (पुत्र) को कौन इन्कार करता है।'

दूध आ गया। उस गिलास भरे दूध को हाथ में लेकर जगपाल बोला—'चाचा एक बात कहता हूँ, अब समय बदल रहा है। शहर के दूकानदार और कारखानेदारों ने अपना संगठन बनाया है, तो भला हम'''हम किसान लोग''''

ठाकुर ने कहा—'हाँ हाँ, यह जरूरी है।'

जगपाल ने दूध पी लिया और बोला—'हमने सोचा था कि श्रीधर गाँव वालों के कुछ काम आयेगा, मदद करेगा। पर वह तो शहर वालों की जेब में पहुँच गया है। देखते हो न, अब वह क्या गाँव में रहता है।'

ठाकुर ने अपनी मूँछें मरोड़ीं और कहा—'अब वह बड़ा आदमी बन गया है।'

उसी समय ठकुरानी बोली—'नहीं, नहीं, श्रीधर अब भी वही है। जब आता है तो मेरे पास होकर जाता है। वह क्या अब भी शहर से

खा-पी पाता है।'

इतना सुना, तो जगपाल कडवे भाव से मुस्करा दिया। वह बोला—'अरी चाची! तुम ठहरीं औरत जात, निरी भोली; तुम कैसे समझोगी कि वह सीधा-सादा श्रीधर अब जिन्दगी के चौड़े रास्ते पर दौड़ा जा रहा है। गाँव वालों को वह यही दिखाता है कि गरीब है, भूखा है; पर अब उसके पास कितना पैसा जमा है, उसे क्या कोई आसानी से समझ सकता है। मेरा मत है कि श्रीधर अब इस गाँव को खरीद सकता है।'

बात सुनी, तो रेणुका खिलखिला कर हँस पड़ी। वह उसी भाव से जगपाल की ओर देखने लगी।

चकित बनकर जगपाल बोला—'क्यों, झूठ कहता हूँ?

रेणुका ने कहा—'झूठ, बिल्कुल झूठ!'

उसकी माँ राधाबाई ने कहा—'रेणुका ठीक कहती है। इसको पता है।'

इतनी बात सुनी, तो जगपाल चुप रह गया। माँ-बेटी के उस आत्म-विश्वास को देख, जैसे उसकी छाती पर घूसा-सा लगा। क्योंकि जिस श्रीधर के विषय में उनकी बात थी, वह जगपाल का बचपन का साथी था। जगपाल इस बात को भलि भाँति जानता था कि श्रीधर स्वभाव से जहाँ कम बोलने वाला और मितभाषी था, वहाँ पर अपने पेट की बात भी सुगमता से बाहर नहीं निकाल पाता था। अतएव उसे लगा कि उस माँ-बेटी के समक्ष जैसे वह हार गया। मानों औरत ने आदमी के अधिकार को पीछे फेंक दिया। श्रीधर के साथ उसका बचपन से से चला आया संगम इस रेणुका के समक्ष बालू की दीवार के सदृश गिर गया।

किन्तु उसी समय, जैसे ठाकुर ने जगपाल के मन में आयी बात को समझ लिया। उसने पुरुष की पीड़ा को पहचान लिया। फलस्वरूप उसने कहा—'न, न, रेणुका की माँ! श्रीधर को तुमने नहीं समझा

ऐसा आदमी क्या सहज में जाना जा सकता है।'

रेणुका की माँ बोली—'परन्तु श्रीधर ······'

जगपाल को जैसे सहारा मिला। उसने कहा—'चाची जी, सुनती तो हो कि जो व्यक्ति कल तक देश-सेवा का नारा लगाते थे, वे आज उसी आदर्श और सेवा-भाव की छाती पर बैठ कर सोने की सिलियाँ इकट्ठी कर रहे हैं। उनके सम्पर्क में आने वाले जानते हैं कि वे लोग···

उसी समय रेणुका ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'पर भैया सभी तो नहीं हो सकते, ऐसे लोग!'

ठाकुर ने कहा—'हाँ, हाँ, यह ठीक है।'

जगपाल बोला—'मैं सोच नहीं पाता कि पुरानी और आज की परम्परा में अन्तर क्या आ गया है। पहिले एक राजा शासक था, उसकी इच्छा पर ही, देश का शासन चलता था। पर आज शासक हैं अनेक तो समाज का रक्त चूसने वाले भी······'

रेणु बोली—'भैया जगपालसिंह, यह परम्परा का दोष नहीं, नीयत का दोष है। जब माँ डायन बन जाये तो भला बालक का उद्धार कौन कर सकता है। श्रीधर बाबू कहते थे कि इस देश का व्यक्ति लुटेरा है, चोर और डाकू है···'

बीच में ही जगपाल ने कहा—'रेणु बहिन, पर यह भी सोचा श्रीधर बाबू ने कि ऐसे लोगों का निर्माण किस प्रकार होता है। समझती तो हो कि गन्दे पानी का पतनाला ऊपर से गिरता है।'

रेणु ने कहा—'जगपालसिंह, शासन तो बदल गया, परन्तु इस देश के समाज की नियत बदले, तभी उद्धार हो सकता है। जानते हो न, देश में फैले हुए डाकुओं को आश्रय जमींदारों और ऊँचे अधिकारियों द्वारा दिया जाता है। पुलिस और फौज के आदमी ही उन्हें शस्त्र और गोली-बारूद देते हैं। 'रुपये के लिये इस देश का आदमी बिक गया है।

ठाकुर ने हँसकर कहा—'जगपालसिंह, रेणु बिटिया का अध्ययन अब ऊँचा हो गया है।'

राधाबाई बोली—'इसके कमरे में किताबों का अम्बार लगा है। श्रीधर जब भी आता है, तो दस-बीस किताबें ले आता है।'

जगपाल ने कहा—'परन्तु वह विवाह क्यों नहीं करता। यह आपकी समस्या...'

राधा बोली—'अब हमने इस बात को उठाना ही बन्द कर दिया है।'

ठाकुर ने कहा—'बिटिया समझदार है। अपना भला-बुरा देखती है।'

जगपाल ने कहा—'परन्तु बेटी के भले-बुरे को देखना अपना भी काम है। आज तो आप हैं और कल...'

राधाबाई हँस पड़ी—'अरे कल की कौन जानता है, जगपाल सिंह!'

जगपाल उठ खड़ा हुआ और बोला—'खेत की बात पर सोच देखना। इरादा हो, तो पिताजी से मिल लेना।'

ठाकुर ने कहा—'हाँ, हाँ, मैं तुम्हारे पिता से मिलूंगा।'

राधा ने कहा—'कभी-कभी तो आया कर, भैया!'

वहाँ से चलने के लिये प्रस्तुत होकर जगपाल बोला—'हाँ, हाँ, चाची! अच्छा, राम-राम।' और वह तेजी के साथ वहाँ से लौट पड़ा। रास्ते में सिर के ऊपर एक पक्षी तेजी से उड़ा जा रहा था। जगपाल ने उसी की ओर देखा और अपने आप कहा—'रेणु के मन में श्रीधर के प्रति कितना विश्वास है, यह मुझे आज दिखायी दिया... उसके माँ-बाप में भी! मूर्ख कहीं के।' और वह दृष्टि की सीध में पड़ते-अपने एक खेत की ओर बढ़ गया।

तीन

अब कथा कुछ पीछे से सम्बन्ध रखती है। हरियाले खेतों में अंकुर फूट आये थे। चारों ओर सरसों फूल रही थी। लगता था कि मानो प्रकृति केशर का थाल सजाये उस पृथ्वी पर उतर आयी थी। श्रीधर सुबह-शाम उन्हीं खेतों के मध्य पहुँच जाता। स्कूल की छुट्टियों में जब भी वह गाँव में आता, तो उसका यह क्रम अपरिवर्तनीय था। एक बार जब श्रीधर नगर से गाँव में आया, तो तभी, उसके साथी ने बताया कि अब हमारे गाँव में कुछ और परिवार आकर बस गये हैं। हमारा गाँव गरीब है, तो बाहर से आये परिवारों ने कुछ किसानों की जमीन खरीद ली है।

एक दिन जब श्रीधर फलते-फूलते खेतों के मध्य घूम रहा था, तो तभी, अकस्मात् सामने से आती हुयी एक लड़की उसके समीप आ खड़ी हुई और छूटते ही बोली—'तो तुम हो, श्रीधर? यही न!'

सुना, तो श्रीधर कुछ खो गया। वह लड़की को समझ नहीं सका। फिर भी, उसने सिर हिलाकर कहा—'हाँ, मैं ही श्रीधर···और तुम?'

लड़की ने कहा—'वह तुम्हारे मकान के पीछे का मकान है न, हम उसी में आकर बसे हैं। अभी चार महीने तो हुए हैं, इस गाँव में आये।' वह बोली—'तुम्हारी माँ हमारे यहाँ आती है। वे बड़ी अच्छी है। वही कहती थीं कि मेरा लड़का है श्रीधर···बड़ा नटखट···और जानते हो, मैं हूँ रेणु···रेणुका···जब माँ गुस्से में होती है, तो मुझे चण्डिका और कालिका भी कह देती है···समझे!'

'हाँ, मैं समझा, रेणुका!' हँसते हुए श्रीधर ने कहा—'तो चण्डिका-रेणुका से मिली-जुली यह रेणु अब इस गाँव में आ गयी है।

तुम्हारे पिता ने यहाँ जमीन खरीद ली है।'

रेणु ने कहा—'हमारे गाँव में दरिया चढ़ आता था। सरकार ने वह गाँव उठा दिया। तभी हमें यहाँ आना पड़ा।' वह बोली—'रात आये होगे तुम ?'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, रात ही।'

रेणु बोली—'कल शाम तुम्हारी माँ कहती थीं कि श्रीधर आयेगा। सो, आ गये तुम···ऐसे हो, तुम !'

श्रीधर ने पास के खेत में फूलती हुई सरसों की ओर देखते हुए कहा—'हाँ रेणु, ऐसा हूँ मैं ! देख लिया। निरा बेकार ! निरा दीन !'

रेणु ने कहा—'ऊँह, क्या बात ले बैठे हो तुम ! सच, तुम सनकी भी हो। जमीन पर चलकर आसमान की बात भी सोचते हो। मैं समझी, तुम शहर में रहते हो। एक की दस बातें करनी सीख गये हो।' यह कहते हुए रेणु खिलखिला पड़ी।

किन्तु इतनी बात सुनकर भी, श्रीधर कुछ नहीं बोला। वह नहीं हँसा। मुस्कराया भी नहीं। अपितु उसके मन में आया कि गरीब है, यह रेणु। जिद्दी बच्ची···निरी अजान अल्हड़ भी खूब है। हँसना और खेलना ही इसका काम है।

उसी समय आँख भर कर रेणु ने कहा—'अच्छा, श्रीधर, मैं अब अपने पिता के पास उस खेत पर जा रही हूँ। यह रोटी लिये जा रही हूँ। तुम आना हमारे खेत की ओर, ईख कट रही है। कोल्हू भी चल रहा है। गरम-गरम गुड़ खाना, रस पीना···हाँ !'

श्रीधर ने कहा—'अच्छा, आऊँगा।'

रेणु ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'तो जरूर !'

श्रीधर मौन रह गया। सहज भाव से मुस्कराकर दूसरी ओर देखने लगा। रेणु आगे बढ़ गयी, श्रीधर उधर ही देखने लगा। वह दस-ग्यारह वर्ष की कन्या···रेणु, वह चौदह-पन्द्रह वर्ष का लड़का···श्रीधर; मानो दोनों ही, किसी जन्म के परिचित; आत्मीयता के धागे में बंधे

हुए जिन्दगी के रास्ते पर चलने वाले दो राहगीर ! सोचा श्रीधर ने, यह रेणु सरल है। भोली है। मधुर है। रात ही उसकी माँ ने कहा था कि इस गाँव में जो बाहर से आये हुए परिवार हैं, वे यहाँ के लोगों से भले हैं। खाते-पीते हैं। किन्तु उस श्रीधर को इतना भला कहाँ ज्ञान कि भला क्या है···बुरा क्या ! क्योंकि वह अभी बच्चा है, नादान है। जो उससे कोई प्यार से बोल ले, मानो उसके लिये वही अच्छा है। अतएव, जब वह बालिका रेणु अनायास ही, उसके पास आकर बोल पड़ी, दो बात भी कर सकी, तो सोचा श्रीधर ने, सच ही, भली लगती है, यह रेणुका ! अभी निरी अल्हड़···अबोध ! उससे जान, न पहचान ; और पास आते ही लगी बात करने। मानो हम देर के सगे-सम्बन्धी हों ; कि जो आज यों अकस्मात् मिल गये। इस पथ पर एक-दूसरे के सामने आ गये···

श्रीधर घर आ गया। माँ ने कहा—'अरे श्रीधर ; कुछ खा ले, बेटा ! और देख यह पीछे ठाकुर का मकान है न, तो वहाँ हो आना ! ठकुराइन बड़ी भली है। कहती थी, तुम्हारा श्रीधर आये, तो मेरे पास भेजना ! तू जंगल में निकल गया कि उस घर की लड़की रेणु तुझे बुलाने और बात करने सुबह-ही-सुबह उठ आयी ! आते ही वह नटखट मुझसे चिपट गयी और बोला—'तायी जी कहाँ है, तुम्हारा श्रीधर ! और जब मैंने कहा कि वह तो जंगल में घूमने चला गया। तो उसने मुँह लटका कर कहा—'वाह, यह भी कोई बात ! तुमने हमारे यहाँ क्यों नहीं भेजा अपने श्रीधर को !'

माँ ने कहा—'भैया, मैंने उस बिटिया को समझाया कि श्रीधर आयेगा। मैंने कह दिया था।' पर उसने तो कहा—'नहीं, तुम अपने श्रीधर को नहीं भेजोगी हमारे घर ! उसे नहीं दिखाओगी।'

माँ हँसी—'ऐसी पगली है, यह ठाकुर की बिटिया ! बड़ी बूढ़ी की तरह बात करती है। जब आती है, तो मेरा सिर खा जाती है मेरे कई काम करा जाती है।'

श्रीधर ने कहा—'माँ, यह रेणु मुझे अभी खेत के डौले पर मिली थी। रोटी लेकर अपने पिता के पास जा रही थी।'

माँ ने कहा—'हाँ, वह गोरी-गोरी, बड़ी-बड़ी आँख, सुन्दर मुँह···

हँसकर—श्रीधर ने कहा—'हाँ, माँ, वही।'

माँ बोली—'जब वह यहाँ आ जाती है, तो मेरा मन लग जाता है। पड़ौसिनें भी कहती हैं कि यह लड़की भाग्यवान है। ठाकुर के घर में लक्ष्मी आ गयी है।'

किन्तु मानो श्रीधर से उस विषय का कोई सम्बन्ध नहीं था। तभी माँ ने तस्तरी में एक लड्डू लाकर दिया और कहा—'रेणु की माँ सुबह आयी थी। वह चार लड्डू दे गयी थी। भाग्यवान् औरत है। हँस-मुख है।'

श्रीधर ने लड्डू का पहला कौर खाया और कहा—'माँ, वह तुम्हारे पास क्यों आती है?'

माँ बोली—'बेटा, ये लोग नये-नये इस गाँव में आये हैं। सभी से हेल-मेल बढ़ाना चाहते हैं। और रेणु की माँ ने समझा होगा कि मैं··· हाँ, रे, तुझे बिना बाप का देखकर, उसे भी खयाल आया होगा कि माँ-बेटे अनाथ हैं, अकेले हैं···'

श्रीधर ने लड्डू खा लिया और कहा—'माँ स्कूल के मास्टर जी एक दिन कहते थे कि किसी की दया पाना और भोगना अच्छा नहीं है। इससे आत्मा का सम्मान गिरता है।'

माँ ने कहा—'वह मास्टर भी ठीक कहता था, बेटा!'

'तो माँ; श्रीधर ने कहा—'हमें भी किसी की दया नहीं पानी चाहिये। मजदूरी करके ही पेट भरना चाहिये।'

माँ बोली—'पर बेटा, यह दुनिया है। यहाँ सभी कुछ चलता है। पास-पड़ौस का नाता भी निभाया जाता है। देख तो, कल उसकी रेणु बिटिया का जन्म-दिन था। लड्डू बनाये होंगे, चार यहाँ दे गयी, तो क्या इन्हें लौटा दिया जाता?'

किन्तु श्रीधर उस समय इतनी समझ नहीं रखता था कि माँ की बात का जवाब दे। निश्चय ही, उसके पास विरोध का कोई विचार नहीं था। लेकिन, यह बात उसके मन में अवश्य थी कि रेणु की माँ जब सम्पन्न हैं, तो उससे मेरी माँ को अधिक व्यवहार नहीं करना चाहिये। क्योंकि इतना उसे पता था कि उसकी माँ मजूरी करके ही अपना और उसका पेट पालती है। जब अपने खेत की पैदावार से अधिक नहीं मिल पाता, तो चर्खा कातती है। उस सूत को बेंचती है। इसलिये, सहज ही, श्रीधर के मन में यह बात थी कि वह गरीब है, उस गाँव के छोटे-से समाज में भी उसका कोई अस्तित्व नहीं है।

लड्डू खाकर श्रीधर ने पानी पी लिया और बाहर निकल पड़ा। जब वह गाँव के स्कूल में पढ़ता था, तो अपने साथियों के साथ खेलता था, हँसता था, बोलता था। परन्तु जबसे वह नगर के स्कूल में गया, तो अपेक्षाकृत गम्भीर बन गया। गाँव के साथियों से उसका साथ छूट गया। क्योंकि वर्ष में दो-चार बार ही वह गाँव आ पाता। लम्बी छुट्टियाँ भी वह प्रायः नगर में बिताता। निश्चय ही, सब ओर से छूटकर उसका ध्यान पढ़ने की ओर अधिक था। स्कूल के जिस अध्यापक के संरक्षण में वह रह रहा था, उसका भी यही आदेश था।

इसलिये जब श्रीधर घर से निकल कर, गाँव के मन्दिर की ओर गया तो तभी जमींदार का पुत्र जगपाल उसे मिल गया। जगपाल गाँव के स्कूल का साथी विद्यार्थी रह चुका था। वह भी बाहर पढ़ रहा था। जिस समय वह मिला, तो जगपाल के पैरों में बूट जूता था। वह पैण्ट और बुश-शर्ट पहिने हुए था। उसके बाल अंग्रेजी ढंग के कढ़े हुये थे। श्रीधर को देखते ही, उसने पुकारा—'अरे, श्रीधर......'

श्रीधर आवाज सुनते ही रुक गया। मुड़कर खड़ा हो गया।

पास आकर जगपाल ने कहा—'अरे, श्रीधर, ऐसा हो गया, तू! गाँव में आकर भी नहीं मिलता। देखकर भी नहीं देखता।'

बात सुनी तो श्रीधर मुस्करा दिया। अपने श्वेत दाँतों से हँस भी दिया।

जगपाल बोला—'मैंने सुना है कि तू फस्ट डिवीजन में पास हो गया, शाबाश !'

श्रीधर ने पूछा—'और तू ?'

जगपाल ने कहा—'अरे, मेरी न पूछ, भैया ! डिवीजन का मिलना तो दूर, पास का नम्बर भी नहीं मिला।'

श्रीधर बोला—'तुम बड़े आदमी हो।'

जगपाल ने बात को उड़ा दिया और कहा—'इस बार पास होने की उम्मीद थी, पर नहीं हुआ गया। इस वर्ष भी नहीं पढ़ा गया। शहर में जिनके यहाँ रहता हूँ उनका लड़का न स्वयं पढ़ता है, न मुझे पढ़ने देता है। उसका तो बस, एक ही काम है, कभी सिनेमा, कभी सैर-सपाटा......।'

श्रीधर का मुँह उस समय आसमान की ओर उठा था। बात सुनी, तो वह जगपाल की ओर देखकर हँस दिया और बोला—'तुम्हें पढ़ने की क्या जरूरत है। बहुत बड़ी जमींदारी है तुम्हारे पिता की।'

जगपाल बोला—'पढ़ना सभी के लिये जरूरी है भैया ! पर मुझसे नहीं पढ़ा जाता। अब पिताजी कहते हैं कि घर पर रहो। जमींदारी का काम देखो और सीखो।'

श्रीधर ने पूछा—'तो नहीं पढ़ोगे ?'

जगपाल ने कहा—'नहीं,' अभी तो पढ़ूंगा। दसवीं तो पास करूँगा। माँ का भी यही कहना है। पिता-जी ने मुझसे तो नहीं कहा। पर माँ से कहा था कि जगपाल दसवीं पास कर ले, तो इसका सम्बन्ध...हाँ, उनका विचार है कि मेरा विवाह किसी बड़े घर हो सकेगा।'

श्रीधर ने कहा—'अरे, अभी से ब्याह ! अभी तो छोटा है।'

जगपाल ने कहा—'मेरी माँ और पिताजी को अभी से चिंता है। उनके पास लड़की वाले आते हैं और लौट जाते हैं। जमींदारी का

काम देखने वाला मुन्शी मुझसे कह रहा था। और तभी उसने अपने स्वर पर झटका सा-खाया और बोला—'अरे, छोड़ इन बातों को, तू सुना अपनी बात ! अब किधर चला ! चलता है, हमारे खेत पर। ईख कट रही है। गन्ना चूसना। चाहे गरम-गरम गुड़......'

श्रीधर ने कहा—'नहीं भैया, इस समय नहीं।'

जगपाल ने आगे पैर बढ़ाये और कहा—'अच्छा तो आना। कभी मिलना।'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, हाँ, आऊँगा। तुम्हारे पिताजी के भी दर्शन करूँगा।'

जगपाल आगे बढ़ गया। सामने मन्दिर था। उस मन्दिर पर देर से एक साधु रहता था। श्रीधर के देखते-देखते वह बूढ़ा हो गया था। तभी उसे याद आया कि वह देर से मन्दिर पर नहीं गया। साधु से भी नहीं मिला। बचपन चला गया, तो जैसे श्रीधर का अपनापन स्व-भाव-वश ही छूट गया। नहीं तो, बचपन में जब मन्दिर की आरती के समय, अन्य बच्चों के साथ श्रीधर भी मन्दिर पर जाकर भगवान के दर्शन करता, आरती में सम्मिलित होता, तो तभी, साधु प्रसाद बाँटता। जो बच्चे चालाक थे, शहजोर थे, वे आगे बढ़कर साधु से प्रसाद प्राप्त कर लेते थे। वे इतने चतुर रहते कि एकबार की जगह दो-दो बार भी ले लेते थे। परन्तु श्रीधर तब भी, न चालाक था, न चतुर था। वह सदा तटस्थ रहता। जैसे निर्विकार भाव से साधु की ओर देखता रहता। किन्तु साधु उसे भूलता नहीं, उसके प्रति दृष्टि-क्षेप न करता। वह दूर खड़ा रहकर भी पुकारता—अरे, श्रीधर...'

तब श्रीधर जैसे चौंकता और कहता—'हाँ, बाबा......'

प्रसाद नहीं लेगा—'ले, तू भी।' और उसके फैले हाथ पर प्रसाद रख दिया जाता।

क्षण भर में स्मृति पट पर उभर आयी। उस याद को ले, श्रीधर मन्दिर के चबूतरे पर चढ़ गया। वह देवता के समक्ष जा खड़ा हुआ

उसे ज्ञान नहीं था कि देवता का क्या अस्तित्व है। किन्तु उसने सुना कि वह देवता है,—भगवान, उसका निर्माता—जगत का पालक; तो अपने मन में इतनी सी आस्था लिये-लिये ही, उस समय भी, श्रीधर जब भगवान् के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, तो तभी पीछे से बाबा का स्वर सुनायी दिया—'अरे श्रीधर'''

श्रीधर ने साधु की ओर देखा और श्रद्धा तथा अपूर्व-भावना के के साथ, उसके चरणों में झुक गया'''।

चार

कदाचित् भगवान् के रूप में मन्दिर की प्रतिमा के प्रति मान्यता की भावना श्रीधर को अपनी माँ से मिली थी। परन्तु वह भगवान् कौन हैं, क्या है, इतना जानने की समझ, उसे सहज ही प्राप्त नहीं हुई थी। केवल मां ने इतना बताया था कि बेटा, मन्दिर का भगवान् ही, हम सभी के अन्दर समाविष्ट है। वह ही हमारा पालनहारा और जन्मदाता है। फलस्वरूप, इसी आस्था और श्रद्धा का स्रोत जब बालक श्रीधर को प्राप्त हुआ, तो मानो जैसे वह उसी में डूब जाना···लय हो जाना पसन्द करता था। मन्दिर के साधु ने भी यही कहा था।

किन्तु उसी समय, एकाएक आ गयी, वह रेणु···रेणुका! मानो भगवान् की तरह उसमें भी संगति थी। जिस प्रकार मन्दिर की प्रतिमा दिप-दिप करती हुई दमकती तो उसी के समान, वह रेणु भी श्रीधर को अपनी ओर आकृष्ट कर सकी थी। जब पहले दिन श्रीधर वहाँ नहीं गया कि जहाँ रेणु ने उसे गुड़ और गन्ना खाने के लिये आमन्त्रित किया था तो वह दूसरे दिन के प्रातः ही, उसके घर पहुँच गयी। देखा कि श्रीधर घर के एकान्त में किताब लिये बैठा था, उसकी माँ दूसरी ओर थी। पास जाते ही, रेणु ने ऐसे कहा जैसे कि वह देर की परिचित थी, बहुत पुरानी आत्मीयता की साख गड़ाये थी, उस श्रीधर पर अपना अधिकार मानती थी। एकाएक बोली—'अरे, श्रीधर। तुम कैसे हो जी, आये नहीं कल! मैंने तुम्हारे लिये मुलायम-मुलायम रस दार गन्ने तोड़े थे, गरम गुड़ रखा था···धत् तेरे की।'

श्रीधर ने किताब बन्द कर दी और रेणु की ओर देखा। उसने भी जैसे बरबस अपना अपराध स्वीकार कर लिया। बोला—'मैं भूल गया

रेणुका। कल मन्दिर पर गया तो देर तक साधु महाराज के पास बैठा रहा। फिर माँ ने गाय के लिये घास लाने को कहा, तो जंगल चला गया।'

इस कैफियत को पा, जैसे रेणुका ने श्रीधर का अपराध क्षमा कर दिया। वह पास बैठ गयी और उसकी किताब खोलकर उसे देखती हुई थी बोली–'यह तो बड़ी किताब है,—गूढ़ है; मुझसे क्या पढ़ी जा सकती है?' और तभी वह किताब को फिर बन्द करती हुई बोली—'तो आज आओगे, खेत पर!' उसने कहा—'रे श्रीधर! तू हमारे घर भी नहीं आया। सच, लजाता है, क्या? तुम्हारी माँ कहती थीं कि श्रीधर लाज करता है।'

श्रीधर हँस दिया और बोला—'नहीं, रेणुका, मैं लजाता नहीं, ऐसा क्यों करूँगा?'

'तो चलो, मेरे साथ—चलो!' यह कहते ही, रेणु ने एकाएक श्रीधर का हाथ पकड़ लिया।

अवसर की बात कि उसी समय श्रीधर की माँ भी उधर आ गयी। उसे देखते ही श्रीधर बोला—'अरी, माँ! यह रेणुका...

माँ ने कहा,—'यह रेणु बिटिया बड़ी नटखट है। मुझसे भी बहुत जिद्द करती है।'

श्रीधर ने कहा—'यह कहती है कि हमारे घर चल। भला पूछो तो इससे, कोई काम हो तो चलूँ! या वैसे ही!'

रेणु ने कहा—'वाह; यह भी कोई बात! जब काम हो, तभी जाया जाता है, किसी के यहाँ! आदमी ही आदमी के घर जाता है।'

माँ ने कहा—'हाँ, रे श्रीधर! हो आ। इसकी माँ भी कहती थी।'

रेणु ने कहा—'अब भी माँ ने कहा है। इस श्रीधर को बुलाया है। कहती थी, मैं भी तो देखूँ उस श्रीधर को जो पढ़ने में होशियार है।'

इतनी बात सुनी तो श्रीधर हँस दिया। वह माँ की ओर देखने लगा।

माँ ने कहा—'चला जा, बेटा !'

श्रीधर ने कहा—'अच्छा, चल !' वह खड़ा हो गया। साथ चल दिया।

जब रेणु अपने घर पहुँची, तो उसने दहलीज पार करते ही, माँ को पुकारा और कहा—'माँ, श्रीधर...'

माँ सामने आ गयी। पहली बार उस श्रीधर को देख, मुस्करा दी। तभी श्रीधर ने हाथ जोड़े और नमस्ते किया।

रेणु की माँ ने कहा—'जीते रहो, बेटा ! तुम्हारी बड़ी उम्र हो।'

उसी समय रेणु की भाभी भी सामने आ गयी और बोली—'यह है, वह श्रीधर ! सच लड़का अच्छा है, भला है।'

किन्तु श्रीधर बैठे, बैठाया जाये, इसका ध्यान किसी को नहीं हुआ। रेणु ने स्वयं ही चारपाई डाल दी और उस पर दरी बिछा दी। उसी ने कहा—'श्रीधर बैठ चारपाई पर !'

यह देख-सुन माँ भी हँसी और भाभी भी। उनकी रेणु कितनी चतुर है, यह बात उन दोनों नारियों के दिमाग में उठ आयी।

माँ ने कहा—'हाँ, बैठ बेटा !' और उसने रेणु की भाभी से कहा—'बहू, इस श्रीधर के लिये दूध ला...लड्डू !'

श्रीधर ने कहा—'नहीं, माँ जी...'

माँ जी ने कहा—'यह कैसे होगा, बेटा ! पहिली बार तो आये हो, इस ड्योढ़ी पर ; तो भला मुँह झुठाये कैसे जाओगे !' वह बोली—'तो दसवीं पास कर ली है तुमने !'

श्रीधर ने कहा—'जी !'

'सुना है कि सरकार तुम्हें वजीफा देगी।'

'हाँ, माँ जी !'

'बड़ा अच्छा है, बेटा ! तुम्हारी माँ बड़ी भली हैं। तुम्हारे ही लिये मेहनत करती हैं।'

उसी समय रेणु की भाभी गिलास में दूध ले आयी, तश्तरी में लड्डू !

श्रीधर ने गिलास ले लिया और तश्तरी से लड्डू उठा लिया।

रेणु ने कहा—'माँ ये शर्म करते हैं।'

माँ बोली—'न बेटा। शर्म किस बात की। यह भी तुम्हारा घर है। जब गाँव में आओ, तो यहाँ जरूर आया करो। यह रेणुका तो कहती थी कि मैं श्रीधर से पढ़ूंगी। पर तुम गाँव में रहो तब तो!'

श्रीधर ने कहा—'घर पर भी पढ़ा जा सकता है। गाँव के स्कूल का मास्टर भी पढ़ा सकता है।'

माँ ने कहा—'हाँ, उसी से कहा है। सुना है कि वह अंग्रेजी भी पढ़ा है।'

तभी श्रीधर खड़ा हो गया और बोला—'अच्छा माँ जी...'

माँ जी ने कहा—'आया कर बेटा!'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, आया करूँगा।' और वह तभी रेणु की भाभी और माँ को प्रणाम करके लौट पड़ा। द्वार तक रेणु साथ आयी। तभी दरवाजे पर खड़ी होकर बोली—'मैं खेत पर जाऊँगी, आओगे न, तुम!'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, आऊँगा।'

रेणु ने कहा—'तुमने कल भी यही कहा था।'

श्रीधर हँस दिया और वहाँ से चलता हुआ बोला—'नहीं, नहीं, आज आऊँगा। कल तो मैं चला जाऊँगा।'

उसी समय, जब रेणु घर की ओर मुड़ी, तो उसकी भाभी माँ से कह रही थी—'अम्मा जी लड़का अच्छा है। पढ़ने में तेज, शकल-सूरत का सुन्दर; हमारी रेणुका के लिये इससे अच्छा...'

तभी बीच में ही, माँ ने कहा—'अरी बहू! जब यह श्रीधर बड़ा हो जायेगा, तो इसकी आँख भी ऊँची हो जायेंगी। इसकी माँ भी...'

रेणुका की भाभी ने कहा—'बस, श्रीधर की माँ को अपने हाथ में रखना है। लड़का माँ के आदेश पर चलेगा।'

माँ ने साँस भरी और कहा—'आजकल के लड़कों का क्या भरोसा!

इन पढ़े-लिखे लड़कों में भला कौन माँ-बाप का कहा मानता है। देखती नहीं कि जमाना क्या है ?'

भाभी ने कहा—'रेणुका को पढ़ाना जरूरी है। यही आज के जमाने की माँग है। लड़की पढ़ी-लिखी न हो, तो क्या उसे अच्छा लड़का मिलता है ?'

और कदाचित् रेणु के जीवन में वह पहला अवसर था कि जब उसने, जैसे अनजाने में, अपरोक्ष रूप से माँ और भाभी की बात को सुना था। एक दिन उसका विवाह होना है, इस घर को छोड़ किसी और घर चले जाना है, इतना तो उसने समझ लिया था। परन्तु वह जिसके साथ जायेगी, वह यह श्रीधर हो सकता है, इसकी न तो उसकी समझ में सम्भावना थी, न उसके मन में परिकल्पना ही। किन्तु जब वही विचार, बरबस ही, उसके मस्तिष्क में आ गया, तो उसे लगा कि हां, सच ही तो कहती है मेरी भाभी ! इतना मन में आते ही, रेणु घर में नहीं गयी। वह उल्टी लौट पड़ी। वहाँ से कुछ दूर पर ही मन्दिर था। अनजाने ही, वह उस ओर चल पड़ी। देवता की मूर्ति के सामने जा खड़ी हुयी। देखा कि देवता जैसे हँस रहा था। वह रेणु के मन की भावना को पा गया था। वह समझ गया कि उसके मन में क्या है। किन्तु उस प्रतिमा को एकटक देखती हुयी ही, रेणु नीचे झुक गयी। वह देवता के चरणों पर हाथ की उँगलियाँ फेरती हुयी, जैसे उन चरणों का स्पर्श करने लगी। श्वेत पत्थर के बने उन चरणों पर, वह अपने हाथ की छोटी-सी उंगली से लिखने लगी, श्रीधर···रेणुका···रेणुका···श्रीधर

रेणुका चौंक गयी। उसके पीछे ही, मन्दिर के पुजारी साधु ने उसके पीछे आकर कहा—'कहो बिटिया ! क्या माँगती हो, क्या कहने आयी हो, अपने भगवान् से !'

इतना सुना और रेणु ने उस साधु की ओर देखा। जैसे उस साधु की बात का मर्म समझना चाहा।

किन्तु साधु ने कहा—'क्या बात है, बिटिया···तुम्हारी ये आँखें··· आँसू···'

रेणु ने अपनी आँखें पोंछ लीं और कहा—'कुछ भी तो नहीं बाबा !'

बाबा ने कहा—'नहीं ! कुछ तो !' वह बोला—'एक दिन उस विधवा ठकुरानी का लड़का श्रीधर भी इसी तरह इस भगवान के चरणों में बैठकर रो पड़ा था। वह मुझे रोता दिखाई दिया था।'

बरबस रेणु ने पूछा—'बाबा, वह क्यों ?'

बाबा ने कहा—'वह भी बड़ा सरल और भावुक लड़का है, बिटिया। भाग्य उसका कि गरीब घर में पैदा हुआ। बाप का भी सहारा नहीं मिला। ऐसा दूसरा लड़का क्या मुझे इस गाँव में दिखायी देता है—नहीं !

रेणु ने कहा—'बाबा, रोना क्या अच्छा है ?'

बाबा बोला—'हाँ, बेटी। रोना भी आदमी के मन की किसी बात को कहता है···आँसुओं में मन का जाने क्या बह जाता है।'

उसी समय मन्दिर पर गाँव की एक और औरत आ गयी। रेणु को देखते ही वह बोली—'अरी, रेणुका ! देख, तेरी माँ दरवाजे पर खड़ी आवाज दे रही है।'

बाबा ने कहा—'रेणु बिटिया, भगवान् की सेवा में आयी है।'

औरत प्रौढ़ा थी, बोली—'जिस घर के भाग्य अच्छे हों, उसकी औलाद भी सुपात्र होती है। गाँव में आकर बसे ये चौधरी अच्छे आदमी हैं। धरम-करम मानते हैं।'

बाबा ने कहा—'जहाँ सुमति वहाँ सम्पत्ति नाना···राधे की माँ !'

राधे की माँ ने कहा—'ठीक कहते हो, महाराज !'

बाबा बोला—'जहाँ कुमति तहाँ विपति निधाना !'

रेणु चल पड़ी। वह घर पहुँच गयी। उसे देखकर माँ बोली—'अरी कहाँ थी, रेणु ! जा, अपने भैया को रोटी ले जा।'

भाभी ने हँसकर कहा—'क्या हमारी बीबी उस श्रीधर के साथ…'

तुरन्त ही, जैसे आतुर बनकर रेणु ने कहा—'नहीं, भाभी ! मैं मन्दिर पर गयी थी ।'

रेणु के इस कहने के ढंग को सुन, बरबस भाभी के साथ माँ भी हँस पड़ी । यह देख, रेणु बरबस ही लजा गयी । वह तुरन्त ही माँ की ओट में हो गयी ।

तभी भाभी ने खाने का डिब्बा वहाँ लाकर रखा । माँ ने कहा—'जा, बेटी ! देख, तेरा भैया भूखा होगा । दिन कितना चढ़ गया । पिताजी से घर आने को कह देना । और देख, तू आजकल अपनी किताब कम लेती है । पढ़ा कर, बेटी ! जब से कोल्हू चला है, तो तू सुबह को जाकर शाम को लौटती है ।'

बलात् रेणु के मुँह से निकल पड़ा—'माँ, आज श्रीधर भी जायेगा । वहाँ गन्ने चूसेगा और गुड़ खायेगा ।'

माँ ने कहा—'अच्छा, अच्छा !'

भाभी बोली—'श्रीधर शहर जायेगा, तो थोड़ा गुड़ लेता जायगा । वहाँ खा लेगा ।'

माँ बोली—'उसकी माँ से कह देखना । ले तो पाँच-दस सेर गुड़ दे देना ।'

किन्तु तभी रेणु ने कहा—'नहीं, माँ ! श्रीधर की माँ गुड़ नहीं लेगी । श्रीधर भी नहीं मानेगा ।'

भाभी ने कहा—'हाँ, अम्माजी, श्रीधर की माँ गरीब है तो क्या, उसका सम्मान क्या ऐसा आदेश देगा ?'

रेणु ने डिब्बा उठा लिया और चल पड़ी । वह जंगल में पहुँच गयी । ईख के खेत में बहुत से मजदूर थे, वे सभी गन्ना काट रहे थे । कुछ लोग कटे और साफ किये हुए गन्ने बैलगाड़ी पर लाद रहे थे । वे मजदूर काम कर रहे थे और गाते जा रहे थे । एक गा रहा था कि बदरिया आये और नायिका के आँगन में बरस जाये । क्योंकि वहाँ

आग है। पिया के विरह से वह नायिका तपी जा रही है। उसका पिया परदेश गया, तो लौट कर नहीं आया। वह ऐसा निर्मोही निकल गया कि उसकी पत्नी जवान है, घर में अकेली है···उन सावन-भादों के दिनों में वह छाती थाम कर रह जाती है···कभी भी सिहर जाती है···

एक मजदूर ने पास में बैठी काम करती हुयी मजदूरनी को टंकोरा और कहा—'अरी, घसीटा की बहू ! सुनती है, कैसा गीत गा रहा है, यह रामदीन ! बोल, है न, तेरे मतलब का ! वह तेरा घसीटा···'

घसीटा की बहू ने मुँह फेरा और आँख तरेर कर उस कहने वाले की ओर देखा। जैसे वह उद्धत आदमी—उसका पड़ौसी—गाँव के रिश्ते में देवर; उसे टँकोर कर जाने क्या कहना चाहता है।

वह फिर बोला—'हाँ, भाभी, वह भैया घसीटाराम ! ऐसा मरदूद निकला कि जाकर नहीं लौटा।'

घसीटा की बहू ने कहा—'अभी तो उस दिन चिट्ठी आयी। इस महीने के उतार पर आ जायेगा, तुम्हारा भैया !'

'सच ! वाह-वाह ! तब तो खूब माल लायेगा। तेरे लिये चुनरी, लहँगे का रेशमी कपड़ा, साड़ी···'

घसीटा की बहू ने कहा—'बस, बस, वह तो ले आया, सब कुछ। खुद ही आ जाये, तो भला !'

जो गा रहा था, वह हँसा—वाह ! क्या बात कही तूने, रामप्यारी ! सच, मन की बात ! हाँ, मरदुआ खुद ही आ जाये, तो भला ! पर याद तो कर, तू ही तो कहती थी, उस बेचारे से, कि जा, जा, कमाई करके ला। और अब चला गया, तो रोती है, सिर धुनती है, उसकी याद में छटपटाती है···औरत···औरत यह कहते हुये, वह मजदूर ही-ही करके हँस दिया। जिसे देख, उस रामप्यारी को अच्छा नहीं लगा—'नहीं।'

किन्तु उसी समय, अपने भैया के पास बैठी, रेणु एकाएक जोर से बोल पड़ी—'श्रीधर !'

और श्रीधर गाँव से चल रेणुका के उस खेत में पहुँच गया था।

पाँच

पास जाते ही, श्रीधर ने कहा—'रेणुका, ले, मैं आ गया। माँ कहती थी कि मैं न आऊँगा, तो रेणु नाराज होगी।'

अल्हड़ भाव से, हँसकर रेणु ने कहा—'मेरे अच्छे श्रीधर!'

श्रीधर बोला—'मैं यों किसी के खेत में नहीं जाता, गन्ना नहीं चूसता।'

तुरन्त ही, जैसे तुनक कर रेणु ने कहा—'अहँ, तुम भी अजीब हो। मुझे भी गैर समझते हो।'

एकाएक श्रीधर ने इस बात पर अपना मत नहीं दिया। निश्चय ही, उसके मन में बात उठ आयी थी कि कह दे कि तुमसे ही मेरा क्या मेल; परन्तु उसने इतनी भी एकाएक कहने का साहस नहीं किया। क्योंकि उसने देखा कि रेणु जिस तन्मयता और आत्मीयता के साथ अपनी बात कह चली, वह सचमुच, जैसे निरा अप्रत्याशित, अलौकिक भाव भरी बोल था कि जिसे अपनी उस छोटी अवस्था में भी श्रीधर सुगमता से समझ गया, वह एकाएक ही, इस बात को मान गया कि यह रेणु मधुर है, सुगम है, और सरल है। इसमें दम्भ नहीं, छल नहीं है। अतएव, जब रेणु ने अपनी बात कही, तो मन में आयी बात को लिये-लिये भी मुस्करा दिया और हँस दिया।

रेणु ने कहा—'श्रीधर आओ, वह हमारा मटर का खेत है। उसमें हरी-हरी मटर है।'

तब श्रीधर, जैसे अनजाने ही, उधर बढ़ गया। वह रेणु के साथ उस खेत में पहुँच गया। रेणु खेत के अन्दर जाकर मटर तोड़ने लगी, श्रीधर बाहर डौल पर ही खड़ा रहा। तभी लौटकर, रेणु ने मुलायम

और हरी मटर की फलियाँ श्रीधर की ओर बढ़ा दीं और कहा—'लो, खाओ, श्रीधर।

श्रीधर खाने लगा। मटर खाते हुए वह खेत की हरियाली भी देखने लगा।

तभी रेणु ने कहा—'तो श्रीधर, तुम कल ही चले जाओगे। अभी और कुछ न रहोगे। अकेले में मेरा तो इस गाँव में मन भी नहीं लगता।'

हँसकर श्रीधर ने कहा—'क्यों, गाँव तो है। तुम्हारा घर......।'

रेणु बोली—'अरे, श्रीधर ! तुम नहीं समझते। साथ खेलने वाले और बात करने वाले जब तक न हों, क्या मन लगता है। मेरी जो सहेलियाँ थीं, वे तो पीछे छूट गयीं। उसी गाँव में रह गयीं।'

श्रीधर ने कहा—'मैं तुम्हारे साथ नही खेल सकूंगा।'

'हाँ, सो तो जानती हूँ, मैं ! तुम अब बड़े हो चले हो। कुछ पढ़-लिख गये हो। आओ, अब चलें, ईख के खेत में।'

श्रीधर ने कहा—'अब मैं जाऊँगा। कुछ पढ़ूंगा।'

जैसे चकित बनकर, रेणु ने कहा—'बस, अभी से ! गन्ना गुड़...'

आतुर स्वर में श्रीधर ने कहा—'रेणुका, अब मैं कुछ न खा सकूंगा।

इतना सुन, जैसे उदास हो गयी। उसके मन का हर्ष लोप हो गया। कदाचित् यही देख, श्रीधर ने कहा—'रेणुका, तू अजीब है ! क्षण में हँसती है कि क्षण में......'

ईख के खेत में पहुँचकर, रेणु सीधी भैया के पास पहुँच गयी। उसी से बोली—'भैया, यह श्रीधर...'

भैया ने उस ओर देखा और कहा—'अच्छा, यह श्रीधर...'

श्रीधर ने कहा—'मैं अब जाऊँगा, रेणुका।'

किन्तु रेणु का भैया बोला—'अरे, श्रीधर गन्ना चूस ! गुड़ खा !'

श्रीधर ने कहा—'जी, कृपा है आपकी।'

उसी समय रेणु का पिता वहाँ आ गया और बोला—'अच्छा, यह है, श्रीधर।

श्रीधर ने उस चौधरी को नमस्ते किया और कहा—'जी, मैं श्रीधर।

रेणु ने कहा—'पिताजी, यह श्रीधर अभी आया है, और जाता है।'

'क्यों बेटा ! बैठो ! गन्ने खाओ।'

रेणु बोली—'यह सकुचाता है। हमें गैर समझता है।'

पिता ने इसकी बात सुनी, तो हँस दिया। उसने तब फिर अपना मुंह श्रीधर की ओर उठा दिया।

रेणु के भाई ने कहा—'लड़का सीधा है। भला लगता है।'

पिता ने कहा—'हाँ, जैसा सुना वैसा ही दीखता है।'

और उस समय श्रीधर के मन में बात आ रही थी कि ये लोग भी अजीब हैं। जैसी बेटी, वैसे ही बाप और बेटे हैं। पर ऐसा निभता है। किसी गैर की दया और ममता को क्या यों ग्रहण किया जाता है। अतएव, इसी भाव से भर, उसने फिर रेणु की ओर देखा और कहा—'अच्छा, रेणुका। मैं जाऊँगा। घर जाकर पढ़ूंगा।'

रेणु ने फिर अनुरोध के स्वर में कहा—'तो रुकोगे नहीं।'

किन्तु श्रीधर ने अपने स्वर पर बल देकर कहा—'नहीं।'

और वह तभी वहाँ से लौट पड़ा। जंगल से सीधा घर पहुँच गया।

माँ ने कहा—'अरे, आ गया, बेटा ! इतनी जल्दी।'

श्रीधर ने कहा—'माँ, मैं वहाँ क्या करता। गया और चला आया। मुझे दूसरे का गन्ना चूसना अच्छा नहीं लगा।'

माँ ने जैसे चकित बनकर बेटे की ओर देखा। जैसे वह पहले से बदल गया है। उसमें कुछ नयापन आ गया है, कुछ पुरानापन चला गया है। परन्तु वह 'नया' जो उसके पुत्र में आया है, भला क्या है। कितना भारी है कितना ठोस है। कितना सरल है, कितना पत्थर ! अपने मन को इसी विचार से भर, माँ घर के काम में लग गयी। श्रीधर दूसरी ओर जाकर पढ़ने में लग गया। किन्तु सचाई यह थी कि उस समय उसका

मन पढ़ने में नहीं लग रहा थ । जगल से लौटते समय ही,उसके मन में एक द्वन्द्व आ गया था, वह उसी में डूब गया था । वह जैसे अपने से लड़ रहा था । एक हल्का-सा मनस्ताप उसके मन को कुरेद रहा था । वह कह रहा था, आखिर वह क्यों जंगल से चला आया । उसके मन में ही यह क्यों आया कि उसे रेणु के साथ नहीं बैठना चाहिये । भला यह क्या पाप था ? मेरा या उस रेणु का अपराध था ?

मानो श्रीधर जवान हो चला था । वह इतना समझ गया था कि उसे किसी लड़की के साथ नहीं बैठना चाहिए । वह लोगों की चर्चा का विषय बनेगा । लोगों की आँखों से गिरेगा ।

किन्तु स्थिति यह थी कि श्रीधर अपने मन में इतना कहने और अनुभव करने के बाद भी, यह नहीं भूल सका कि रेणु ने उसे जिस प्रकार की भावना और आत्मीयता प्रदान की, उसे वह अन्यत्र नहीं पा सकेगा । वह आज अपराधी बना है । उस रेणु की दृष्टि में अकल्पित और अवांछनीय हो गया है । कितने मन से उसने कहा था कि गन्ना चुस लो, गुड़ खा लो,...। एकाएक श्रीधर ने किताब से ऊपर मुह उठाया और कहा—'अब कहो रेणुका, कि यह श्रीधर अच्छा लड़का नहीं है, घमण्डी है । कुछ अक्षर पढ़ गया है, तो अपने को जाने क्या समझने लगा है हाँ...

उसी समय माँ उस ओर आयी और बोली—'अरे, श्रीधर ! तू यहीं रहना । देख, चौके में कुत्ता-बिल्ली न घुस जाये ! हाय बेचारी रेणुका...।'

एकाएक श्रीधर के मुंह से निकला—'माँ, रेणुका...।'

'हाँ रे ! उस पर आज जाने कैसी गिरह आयी कि कुएँ पर डोल से पानी खेंच रही थी कि पैर फिसल गया । यह तो राम ने भली की कि कुएँ पर आदमी थे, नहीं तो...हाँ...जाकर देख आती हूँ । सुनती हूँ कुएँ से निकाली गयी, तो उससे बोला नहीं गया । उसके पेट में पानी भी बहुत चला गया ।' माँ चली गयी ।

किन्तु माँ के जाने पर, श्रीधर भी जैसे एकाएक खो गया। वह चंचल और अधीर बन गया। वह घर में एक जगह नहीं बैठ सका। चौके में, चूल्हे पर दाल की पतीली रखी थी, दाल उफल रही थी। श्रीधर ने उतार कर नीचे रख दी। चूल्हे की आग जल रही थी, तो वह बुझा दी। जैसे उसे कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। उसके मानस में जैसे जहरीला धुआँ घुट गया। उससे उसके प्राण भी छटपटाने लगे। वह चाहता था कि माँ जल्दी लौट आये। वह स्वयं रेणु को देख आने के लिए उत्सुक था। जैसे उसी का अपराध था। उसी ने आज रेणु का मन उदास कर दिया था। जब वह कुँए पर पानी खेंच रही होगी, तो तब भी, क्या जाने उसके मन मे रोष होगा।

और माँ नहीं आ रही थी। अभी नहीं लौटती दिखती थी। चूल्हे की आग प्रायः बुझी जा रही थी। दाल गली या नहीं, यह वह देख नहीं पाता, तो माँ कहेगी, कच्ची दाल उतार दी। आग बुझा दी। फिर भी, इस चिन्ता के साथ, रेणु को देख आने की लालसा, उसकी बलवती थी। जैसे उसमें उत्तेजना थी, कसक और टीस भरी थी। और अभी इतना श्रीधर जानता नहीं कि यह सब क्यों है। कोई दर्शन का पण्डित हो, तो कदाचित् कहे, इसी का नाम दर्शन है,—प्रणय-दर्शन ! क्योंकि जैसे उस समय श्रीधर की आत्मा और मन बोल रहा था। दोनों में सान्निध्य स्थापित हो गया था और आत्मा ने आत्मा की वाणी को सुना था। निश्चय ही, इसका एक कारण यह भी था कि श्रीधर उस स्वल्प-काल में अपने प्रति ममत्व और निश्छल प्यार उस रेणु से पा सका, वह कदाचित् उसे पहिले नहीं मिला था, इस रूप में नहीं। इतना वह जानता नहीं कि उस रेणु का कोई और भी अर्थ है, नारी-प्रेम और प्रणय-याचना मानो रेणु के साथ वह भी अजान था। निपट वैरागी,—'केवल किशोर।'

इसलिए वह आतुर था। एक अन्य के लिए सह्य, चिंतित और आतुर बना था। वह उसके पास जाना चाहता था। देख लेना पसन्द करता था।

तभी मा लौट आयी। चूल्हे को देखते ही वह बोली—'अरे सब ठण्डा कर दिया, तूने !' वह चूल्हे के पास गई, उसे फिर सुलगाने लगी, तो श्रीधर ने कहा—'तो माँ ठीक हो गई, रेणु ! चोट तो नहीं लगी।'

माँ ने कहा—'बच गई, बेचारी ! बोलने लगी है। चोट नही लगी।'

श्रीधर बोला—'मै भी देख आऊँ माँ।'

माँ ने कहा—'देख आ। जल्दी आना।'

श्रीधर चल दिया और कहता गया—'अच्छा माँ !' वह चला गया।

जब वह रेणु के घर पहुँचा, तो सामने ही रेणु की माँ पड़ी देखकर बोली—'अरे श्रीधर···

श्रीधर ने कहा—'चाची, रेणु कहाँ है, कुएँ में गिर गई।'

माँ ने कहा—'वह चारपाई पर पडी है, वह बोली—'कुएँ मे क्या गिरी, मौत के मुँह मे से निकल आयी।'

और श्रीधर रेणु के पास पहुँच गया। जाते ही बोला—'अरी, रेणु···' बलात्, रेणु ने कहा—'श्रीधर···'

'बोलो तो, कैसे यह सब हो गया।' श्रीधर ने कहा—'मैंने अभी सुना, माँ आई थी न, तो उन्होंने बताया।'

उस समय रेणु जैसे गम्भीर बनी थी। वैसे वह स्वाभाविक ऐसी नहीं थी, क्या जाने कि वह श्रीधर को देखकर ही मौन और भारी हो गई।

किन्तु उसकी चारपाई पर बैठते ही, श्रीधर ने फिर कहा—'बोलती नही, बोल।' यह कहते हुए उसने बरबस ही, अपना हाथ रेणु के सिर पर रखा। उसके मुलायम बालों को सहलाया।

उसी समय रेणु ने कहा—'श्रीधर आज मुझे लगा कि लोग जिस मौत का नाम लेते है वह भी कोई है, भारी है, भयावनी है।'

'फिर भी यह सब हुआ कैसे ? किस प्रकार ?'

रेणु ने कहा—'बस, मै डोल भरने झुकी थी कि मेंड पर पैर फिसल गया। वह दरिया है न, ठाकुर का लडका; मुझे गिरता देख, वह भी तुरन्त कुएँ में कूद पड़ा। मैंने एक ही गोता तो खाया कि उसने मुझे

तुरन्त गोद में उठा लिया।' रेणु ने साँस भरी और कहने लगी —'पर मुझे तो लगा कि जैसे उस कुएँ में मौत थी, वह किलकिला रही थी···पानी की हर बूंद में मौत···'

श्रीधर बोला—'उस कुएँ में पानी अधिक नहीं है।'

पर मेरे लिए तो बहुत था। मुझे डूब जाना था। वहाँ कोई न होता तो मैं···हाँ श्रीधर मुझे तो लगा कि मरना भी जैसे इस जिन्दगी के साथ लगा है।'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, नहीं तो!' वह बोला—'इसी गाँव में एक लड़का था मदन, कि साँप के काटने से मर गया। बड़ा हँस-मुख और सुन्दर लड़का था, वह!'

उसी समय रेणु की माँ वहाँ आई और बोली—'देख श्रीधर जो माँ-बाप का कहना नहीं मानते उनका यह हाल होता है। यह नटखट रेणुका भी क्या मेरा कहना मानती है। कितनी ही बार कहा कि तू कुएँ पर मत जाया कर, पर इसे तो पानी भरने का शौक है। आज भगवान् ने बुलाई तो थी, पर लौट आयी।'

तभी भाभी भी वहाँ आ गई। वह हँसकर बोली—'सोचा होगा भगवान ने कि यह रेणु अभी छोटी है, नादान है, अकल की कच्ची···

श्रीधर ने भी हँसकर कह—'हाँ यह तो भगवान् ने कहा होगा, यह रेणु किस काम आयेगी···बेकार रहेगी···'

रेणु ने माँ की ओर देखकर कहा,—'मैं मर जाती, तो फिर···हाँ, माँ, मैं फिर पैदा हो जाती!'

भाभी बोली—'तब रेणु न बनती। कुछ और······'

'वह क्या भाभी···?'

भाभी ने कहा—'चिड़िया···मैना···'

श्रीधर ने कहा—'जंगल का बाज आता और उस चिड़िया को अपने पंजों में दबोच लेता। और वह मैना···हाँ, री रेणु, कोई भी उसे पकड़कर अपने पिंजड़े में बन्द कर लेता।'

माँ ने रेणु के सिर पर हाथ फेरा और कहा—'मेरी रेणु आज भी चिड़िया है, मैना है...'

रेणु ने कहा—'माँ मैं मैना...चिड़िया...अहुँक, मैं पिंजड़े में बन्द होने वाली मैना नहीं, जंगल की चिड़िया, उड़ने वाली...एक डाली से दूसरी डाली पर बैठने वाली...'

माँ ने कहा—'सच. मेरी सुनहरी चिड़िया !'

रेणु ने कहा—माँ, यह श्रीधर भी अजीब लड़का है। शरमाता है। आज खेत पर गया, तो लौट आया। कह तो इससे कि यह...'

माँ ने कहा—'श्रीधर अभी नया है। तुझे कम जानता है। पहली बार तो तुझे देखा है।'

रेणु ने कहा—'न माँ ? यह श्रीधर कुछ और सोचता है। हमें गैर समझता है।'

उसी समय गाँव का पड़िया आ गया। रेणु की माँ ने उसे तेल, अनाज और कुछ कपड़ा दिया। उसने कहा—'आज मेरी रेणु पर कोई गिरह आई थी कि भगवान् ने...'

पड़िया बोला—'हाँ माँ जी ! यह गिरह बड़ा ही जोर था। भगवान् ने लड़की को बचा दिया।'

माँ ने कहा—'घर में एक तो बच्चा है। हँसता है बोलता है।'

पड़िया बोला—'माँ जी, अब चिन्ता की बात नहीं। आँधी आई और निकल गयी।'

माँ बोली—'उस समय तो बुरा हाल था, इस रेणु का। आदमियों से घर भरा था। कुएँ पर क्या पैर रखने को स्थान था।'

पड़िया बोला—'गाँव भर में बात फैल गयी। सभी के मुँह पर आ गयी कि ठाकुर की लड़की...'

और उसी समय श्रीधर रेणु के पास बैठा हुआ कह रहा था—,यह बुरा हुआ। मुझे भी दुःख हुआ।'

रेणु ने कहा—'सच !'

श्रीधर ने रेणु का हाथ पकड़ लिया और आतुर स्वर में बोला—'सच ! मुझे तो आज लगा कि जैसे मेरा-तेरा आज का परिचय नहीं, देर का था, किसी दूसरे जन्म का था !'

किन्तु तब रेणु ने अपना मत नहीं दिया, कदाचित् उससे नहीं दिया गया ।

छः

लेकिन रामनगर गाँव के उस समाज में, जहाँ रीति-नीति और व्यवस्था का अपना ही अलग ढंग था, जब लोगों ने देर तक यह देखा कि श्रीधर और ठाकुर की लड़की रेणु आपस में बोलते हैं, हँसते हैं, तो यह ढंग उस गाँव की व्यवस्था को स्वीकार नहीं हुआ। और स्थिति यह थी कि श्रीधर और रेणु अब बालक नहीं रह गये थे। वे युवा हो चुके थे। निश्चय ही, उनके अन्तर्मन में अब बचपन की थिरकन नहीं रही; यौवन का गाम्भीर्य अपना अस्तित्व स्थापित कर चुका था। कदाचित् यही कारण था, कि वे दोनों अब गम्भीर हो गए थे। दृष्टि के साथ-साथ उनकी वाणी भी भारी हो गयी थी। दोनों मिलते थे, बोलते थे, तो मानो थोड़े में वह अपनी अधिक बात कहना पसन्द करते थे। अपने-अपने संस्कार की बात कि श्रीधर कालेज से डिग्री लेकर नौकरी करने के लिये किसी सरकारी दफ्तर में नहीं गया, अपितु देश और समाज के सेवा-कार्य में लग गया। यद्यपि उसका वह क्रम विद्यार्थी समय से ही चल रहा था, परन्तु पढ़ाई से छूट कर वह निर्बाध रूप से उसी में लग गया। हालाँकि माँ की आकांक्षा थी कि श्रीधर किसी दफ्तर में नौकरी कर ले, चार पैसे प्राप्त करे। फिर ब्याह करके अपना घर बसा ले। किन्तु माँ की उस बात से श्रीधर एक दिन भी सहमत नहीं बना। उसने माँ से स्पष्ट कह दिया कि वह नौकरी न करेगा। इस जीवन को किसी कुएँ-पोखर में न फेंक देगा।

तब क्या करती माँ! बेचारी लाचार! श्रीधर जिस रास्ते पर जा रहा था, उसे देखकर रेणु की माँ और पिता को भी अच्छा न लगा। उन्होंने भी समझ लिया कि पढ़ा-लिखा श्रीधर अपने पथ से

भटक गया । दुनियादार नहीं बना । कमाऊ पूत नहीं । वेकार और निठल्ला निकल गया । यह देख, रेणु की माँ ने तब उसके पिता को टंकोरा और कहा—'लड़का देखो एक श्रीधर न सही, दूसरा सही ।'

उसी समय पिता ने कहा—'यह श्रीधर अब इस घर पर भी नहीं आना चाहिये । लोगों की चर्चा अब अधिक नहीं बढ़नी चाहिए ।'

रेणु की माँ बोली—'हाँ, हाँ, मैं उसे रोक दूंगी । रेणु से भी कह दूंगी । उसकी मा को भी बता दूंगी कि तुम्हारे लड़के ने हमारी इच्छा का खून कर दिया, तो अब, उसे हमारे घर भी नहीं आना चाहिये । श्रीधर को हमारी रेणु से मिलना-बोलना बन्द कर देना चाहिये ।'

ठाकुर ने कहा—'यह लड़का चार अक्षर क्या पढ़ गया, मगरूर बन गया । बेचारी माँ ने मजदूरी करके पढ़ाया, तो उसकी आशाओं पर भी, इस श्रीधर ने कुठाराघात कर दिया ।'

रेणु की माँ बोली—'भाग्य की बात है । उसकी माँ बेचारी ने तो बड़ा प्रयत्न किया । इसी से, हमने भी उससे कह दिया था । तब से जाने कितना तो खर्च कर दिया...सोचा था कि लड़का पढ़ने में अच्छा है, शक्ल-सूरत का भी ठीक है, तो उसे अपना बनाने के लिये चार पैसों का मुंह भी नहीं देखा गया ।'

ठाकुर बोला—'जितना उसे लेना था, ले गया । ऐसा ही होना था ।'

अचरज की बात कि जिस समय पति-पत्नी में प्रस्तुत वार्तालाप चल रहा था, तो उसी समय घर के बाहर वर्षा पड़ रही थी, ठण्ड भी अधिक थी । चलती हुई हवा जैसे हड्डियों के अन्दर घुस जाना चाहती थी । एक दिन पूर्व गाँव में ओले भी पड़े थे । उससे फसल की भी बर्बादी हुई थी, उसी समय ठाकुर का लड़का एकाएक घर में आया । वह माँ और पिता को लक्ष्य करता हुआ बोला—'अजीब बात है, यह श्रीधर भी जाने किस धातु का बना है...'

एकाएक श्रीधर का नाम सुनकर, माँ ने कहा—'क्या हुआ रे !'

जगराम बोला—'माँ, यह श्रीधर सचमुच ही देवता है । अपूर्व है ।'

मानो और अधिक उत्सुक बनकर, ठकुराइन ने पूछा—'फिर भी बात क्या है बेटा ?'

जगराम ने साँस भरी और कहा—'आज श्रीधर का गाँव के जमीदारसे झगड़ा हो गया। वह हरखा चमार है न, तो ठाकुर ने उसको और उसकी औरत को पकड़ मँगवाया। कुछ लेना था उनसे, तो उन्हें पिटवाने लगा। पर देखो तो कैसी बात कि उसी समय श्रीधर वहाँ पहुँच गया। गाँव के लोगों के सामने ही, उसने जमींदार के मुँह पर कहा—'कि तू बेईमान है। क्रूर और कसाई है। अब इस हरखा और इसकी औरत से कुछ कहा तो बुरा होगा।'

पिता ने कहा—'हाँ, हाँ, यह श्रीधर अपनी आत्मा की बात सुनता है। उसके मन में जो कुछ आता है, वही करता है।'

जगराम ने कहा—'पिताजी आज भगवान् ने बड़ी कृपा की इस गाँव पर कि खून होते-होते बच गया। जमीदार बन्दूक उठा लाया और श्रीधर को लक्ष्य करके बोला—'तुझे गोली मार दूँगा।'

पीड़ित स्वर में जगराम की माँ ने कहा—'ऐसा कहा, उस ठाकुर ने राम-राम !'

पिता ने कहा—'दौलत का नशा क्या सहारा जाता है। कभी भी भड़क उठता है। आदमी को जानवर बना देता है।'

माँ बोली—'तो फिर···?'

जगराम बोला—'लेकिन वहाँ पर खड़े लोग तो भौचक्के रह गए कि श्रीधर अपनी छाती उघाड़ कर बोला—'इस बन्दूक की गोली के लिए मेरी छाती तैयार है। मैं किसी साँप का जहर पी जाऊँ और उससे किसी निर्बल को काटने से बचा पाऊँ, तो मैं इतना करूँगा।'

पिता ने एकाएक ऊँचे स्वर में कहा—'शाबाश !'

पत्नी बोली—'जैसी माँ वैसा बेटा !'

जगराम बोला—'माँ, श्रीधर ने जब इतना कहा, तो लोगों की लाठियाँ तन गयीं। किसी ने जोर से कहा—'श्रीधर बाबू पर हाथ उठा,

तो वे हाथ तोड़ दिये जायेंगे।' कहते हुए वह रुका और बोला—'पर ठाकुर कुछ कहे कि लोगों ने उससे बन्दूक छीन ली। उसे घर में ले गये। तब लोग श्रीधर को भी लौटा लाये।'

उसकी माँ बोली—'मैंने सुना है कि यह श्रीधर छोटी कौमों के घरों में जाता है। कोई बीमार हो, तो उसकी मदद करता है। शहर वालों से दवाई और पैसे की मदद दिलवाता है।'

जगराम बोला—'माँ, श्रीधर एक दिन बड़ा आदमी बनेगा। मैंने बहुत बार देखा है कि नदी किनारे या किसी खेत के डौले पर बैठा जाने क्या सोचता है। कभी लिखता और पढ़ता हुआ पाता है।'

पिता ने कहा—'मुझे भी एक दिन जंगल में मिला था। शायद कुछ लिख-पढ़ रहा था। मैंने कहा, कहो श्रीधर, क्या हो रहा है। कुछ काम करना नहीं सोचा, क्या!' तो कहा, हजरत ने—'इस समय भी मैं काम कर रहा हूँ। बेकार नहीं हूँ।' मैंने कहा—'यह काम नहीं, चार पैसे कमाने का काम!' तो बोला कहा—'चाचा जी, क्या पैसा उपार्जित करने के लिये ही जीवित रहा जाता है। आदमी कुछ और कर सकता है।' तब मैंने समझा कि इस आदमी से बहस करना क्या अच्छा है। मैं चुप हो गया। आगे बढ़ गया। उस समय भी उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी। जो कुरता पहिने हुए था, वह भी फटा हुआ था।'

पत्नी ने साँस भर कर कहा—'भाग्य की बात है। बेचारी माँ का मन जाने क्या कहता होगा!'

ठाकुर ने कहा—'कहता क्या, रोता होगा। उसने सांसारिक आदमी नहीं पैदा किया, संन्यासी पैदा कर दिया।'

उसी समय जगराम वहाँ से उठ गया और दूसरी तरफ चला गया। वह जब पत्नी के पास पहुँचा, तो वह बोली—'तुम जो कुछ कह रहे थे, उसी को सुनकर, रेणु बीबी, इस वर्षा में घर से निकली थी। जरूर वह श्रीधर के गयी होगी।'

जगराम बोला—'इतनी ठण्ड में !'

पत्नी ने कहा—'कहे देती हूँ, तुम्हारी बहिन श्रीधर को छोड़ अपने इस जीवन में दूसरे की बात नहीं सोचेगी, वह किसी और आदमी की कल्पना नहीं कर सकेगी।

जगराम ने बात सुन ली, तो मत नहीं दिया। वह मौन रह गया। किन्तु कुछ ही देर बाद उसने माँ को आवाज दी और जब वह पास आयी तो उसने गम्भीर स्वर में कहा—'माँ, रेणु कहाँ है ? क्या श्रीधर के यहाँ ?' उसने कहा—'यह अच्छा नहीं है, जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, तो उसके घर सिगानी लड़की का जाना अच्छा है !'

माँ ने कहा—'अभी गई होरी।'

जगराम की बहू बोली—'अम्माजी, बीबी तुम्हारी बात सुनकर गई है। इस वर्षा में···'

अम्मा ने साँस भर कर कहा—'अब यह लड़की भी तंग करने चली है। अपनी जिद्द करती है···इस घर की आबरू···'

जगराम बोला—'माँ, यह सोचना हमारा काम है कि हमारी बहिन···'

माँ ने कहा—'कितनी बार तो कहा तुझसे कि लड़का देख। जब लड़की बूढ़ी हो जायगी, तो···'

उसी समय जगराम की बहू बोली—'अम्माजी, पर ब्याह किसका करोगी···बीबी का···मैं कह देती हूँ, ऐसी कोई बात सोची तो, क्या जाने···'

माँ ने चिढ़ कर कहा—'अरी, मर भी जाने दे ! न होगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी !'

जगराम बोला—रेणु को पता नहीं हैं, जानती नहीं कि इस जिन्दगी की समस्या क्या है। किस तरह इसे काटना पड़ता है।'

माँ ने कहा—'सब पता चल जायगा, भैया ! न घबड़ा।'

उसी समय बाहर श्रीधर का बोल सुन पड़ा। माँ के साथ जगराम

भी उस ओर गया। देखा तो श्रीधर भीग गया था। पास खड़ी रेणु की धोती से भी पानी चू रहा था। यह देख, माँ ने कहा—'अरी, रेणुका···'

रेणु ने कहा माँ, इन श्रीधर बाबू को समझाओ। यह अपना तो अन्त कर ही देंगे, पर बेचारी माँ···'

रेणु की माँ ने कहा—'पर तू इस वर्षा में गई थी, इस श्रीधर के के घर! कल को चारपाई पर पड़ गई तो···'

रेणु ने कहा—'माँ, मेरी चिन्ता न कर! यह देख कि ये श्रीधर जी...'

ठाकुर ने कहा—'रेणु की माँ, तुम आग लाओ। इस श्रीधर को एक गिलास दूध—'

श्रीधर ने कहा—'मैं जाऊँगा। यह तुम्हारी रेणु ऐसी वर्षा और ठण्ड में मेरे घर पहुँच गई, तो मेरे समान माँ को भी अच्छा नहीं लगा। तभी मुझे साथ आना पड़ा···यों मुझे भी:···'

काँपती हुई रेणु अन्दर चली गई। तभी उसकी माँ ने श्रीधर की ओर देखकर कहा—'बेटा, अभी कहा था जगराम ने कि तुम···वह जमींदार···'

श्रीधर ने कहा—'चाची, सर्वत्र यही होता है। पैसा है न, उस जमींदार के पास तो भटक गया है। रास्ता भूल गया है।'

रेणु की माँ ने कहा—'पर तेरा रास्ता......'

श्रीधर लौटना चाहता था। वह काँप रहा था। उसी समय अँगीठी में आग जल गयी। श्रीधर ने कुरता उतार दिया। कम्बल ओढ़ लिया। ठाकुर ने उसे नहीं जाने दिया। तभी रेणु की भाभी दूध ले आयी।

श्रीधर बोला—'देखो भाभी, मैं दूध सब जगह नहीं पीता। इसलिए इच्छा भी नहीं करता।'

रेणु की भाभी स्नेहमयी थी, हँसोड़ थी। वहाँ स्वसुर बैठा था, इसलिये वह श्रीधर से हास्य की बात नहीं कह सकी, पर जब उसने बात सुनी, तो बोली—'जब दूध पीना अच्छा लगता है, कोई पिलाता है, तो पीयोगे। यह क्या गैर का है, तुम्हारा अपना घर है।'

सात

और इस बात का निर्देश मनोविज्ञान का कोई पण्डित ही कर सकता था कि श्रीधर अपने जीवन में क्या प्राप्त करना चाहता था और क्या नहीं। मानो माँ-बेटे का समझौता हो चुका था। श्रीधर की माँ राधाबाई पढ़ी-लिखी औरत नहीं थी। मन्दिर जाती, तो राम-नाम के अतिरिक्त भगवान् के लिये और किसी शब्द का उच्चारण नहीं कर सकती थी। मन्दिर का साधु जो पुजारी का भी काम करता, जैसे उस गाँव का ही बन गया। अब बूढ़ा भी हो गया। मानो अपने एक परिवार का ममत्व छोड़कर भी, उस रामनगर गाँव के ममत्व में फँस गया।

देर हो गयी कि श्रीधर गाँव से जा चुका था। राधाबाई का काम घर में अधिक नहीं था। उसकी अपनी आवश्यकता भी कम थी। श्रीधर लेखक का कार्य करता था, प्रकाशकों से उसे जो कुछ मिलता, उसका एक भाग माँ के पास भेज देता था। वैसे श्रीधर कहाँ था, वह अपने किस लक्ष्य का पोषण कर रहा था, इतना न राधाबाई जान पायी, न गाँव का अन्य कोई व्यक्ति। परन्तु मन्दिर का साधु, जो प्रायः राधाबाई से बात करने का अवसर पाता, वह उस वृद्धा को सम्बोधित करते हुए कहता----'तुम्हारा पुत्र हीरा है, हीरा! उसे पत्थर न समझना' ऐसा प्रयत्न भी न करना।

किन्तु राधाबाई तो औरत थी, माँ थी, वह भला यह कैसे भूल सकती थी कि उसने जिस श्रीधर को पाला-पोसा और बड़ा किया, उससे कुछ माँगती भी थी। वह अपने मानस की आकांक्षा पूरी करना चाहती थी। किन्तु यही उसके मन का क्लेश था कि वह श्रीधर जाने कैसा कुछ बन गया था। बाहर गया तो लौट नहीं रहा था। बस, कभी

पत्र देता तो उसमें लिख देता कि वह ठीक है। आज यहाँ है, तो कल दूसरी जगह चला जायगा। और राधाबाई वृद्धा हो गयी है। थक गयी है। मौत के किनारे पहुँच चुकी है। उसे अब मर जाना है। जिस घर के लिए उसने अपना समस्त जीवन खपा दिया, उसे प्राणों से अधिक सहेजने का प्रयत्न किया, तो वही घर भला कब तक रहेगा, गिर जायेगा, मिट जायेगा। राधाबाई जायेंगी तो इस घर का नाम भी न रहेगा।

फलस्वरूप, जब श्रीधर की माँ अधिक विचलित बनी, वह नित-नित ही पुत्र के लौट आने की बाट जोहते हुए थक गयी, तो तभी, मन्दिर जाकर भगवान् के चरणों में मस्तक झुकाया और अनमने भाव से उस प्रतिमा को निहारने लगी।

सुयोग से उसी समय साधु उधर आ गया। राधाबाई को प्रतिमा के समक्ष उन्मन बनी बैठी पा, वह एकाएक बोला—'अरे, तुम श्रीधर की माँ...'

राधाबाई ने कहा—'हाँ, मैं महाराज...'

'किन्तु आज तुम उदास हो, क्या सच, आँखों में कुछ लिये हो।'

राधाबाई ने इतना सुना, तो जैसे छाती पर घूंसा-सा खाया। वह तिलमिला गयी। अनायास तड़प कर रो पड़ी।

यह देख साधु और समीप आ गया और बोला—'ओह, तुम सचमुच...'

राधाबाई ने कहा—'मैं दुःखी हूँ, अभागिन हूँ, महाराज!'

इतना सुना तो साधु गम्भीर बन गया। वह भारी स्वर से बोला—'तो आओ मेरे पास! यहाँ अभी और लोग आयेंगे। तुम्हें रोती देखकर जाने क्या सोचेंगे। आओ!' कहते हुए वह अपनी कोठरी की ओर चल दिया। राधाबाई भी उठ चली। साधु के पास पहुँच गयी। जब वह साधु के पास चटाई पर जा बैठी, तो साधु ने कहा—'राधाबाई, मैं समझ गया कि तुम्हारे पास सोना या कीमती

हीरा तो आ गया, पर तुमने उसे परखना नहीं चाहा। नहीं परखा गया। तुम तो बे-पढ़ी हो न, तो इस गाँव के बाहर की दुनिया का तुम्हें कुछ पता नहीं चलता। पर इस मन्दिर पर तो सभी तरह के आदमी आते हैं। अभी परसों ही एक आदमी कह रहा था कि श्रीधर देश की एक बड़ी संस्था का सबसे बड़ा कार्यकर्त्ता है। वह आजकल समूचे देश का भ्रमण कर रहा है। वह देश की भलाई के लिये भाषण देता है, लेख लिखता है। मैंने तो सुना है कि वह दुःखियों और दरिद्रों का सहायक बना है।'

राधाबाई ने कहा—'महाराज, यह सब तो है, पर इससे मुझे क्या मिला...मेरे घर को...'

'ओह, स्वार्थी औरत!' एकाएक बाबा ने अपने स्वर पर रोष लिया और कहा—'तो तू सोचती है कि श्रीधर तूने अपने पेट से क्या पैदा किया, वह केवल तेरा ही रह गया, उसका देश और समाज से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। पगली, यह मत भूल कि श्रीधर अकेला तेरा ही नहीं है, वह सभी का है...समाज और देश का है! वह इस देश की धरती पर पैदा हुआ है।'

कदाचित् राधाबाई इतनी बात नहीं समझ सकी। इसलिये उसने साँस भरा और छोड़ दिया। उसका मुँह कोठरी के बाहर हरे आसमान की ओर उठ गया।

तभी बाबा ने फिर कहा—'राधाबाई, तेरे बड़े भाग्य हैं कि ऐसा लड़का तेरे पेट में आया कि जो इस मनुष्य-समाज की भलाई के काम में लग गया। समझती है न, वह एक से अनेक बन गया।'

राधाबाई बोली—'बाबाजी, आजकल के लड़कों का मन नहीं समझा जा सकता। मुझे डर है कि कहीं...'

एकाएक बाबा ने कहा—'क्या?'

'वह कहीं ब्याह न कर ले...किसी गैर लड़की से...'

बाबा ने बात सुनी, तो ठहाका मार दिया। बरबस, वृद्धा राधाबाई को भी चौंका दिया।

राधाबाई प्रतिमा बन गयी और बोली—'हाँ, मैं सभी कुछ सोचती हूँ, बाबा जी !'

बाबा ने कहा—'मूर्ख !'

राधाबाई ने कहा—'मैं माँ···मैं मूर्ख !'

बाबा ने शान्त बनकर कहा—'मातायें अधिक मूर्ख होती हैं, राधाबाई ! वे क्या अपनी सन्तान के महत्व को समझ पाती हैं। शायद उन्हीं में तुम एक !'

राधाबाई ने कहा—'महाराज, आप तो घर-बार छोड़ बैठे हैं। जिन्दगी काट चुके हैं, पर मुझे तो देखो, किस तरह पिस-पिस कर बिता दी है, यह जिन्दगी ! मैंने इस श्रीधर के लिये शरीर का मोह नहीं किया। जाड़ा, गर्मी और बरसात, किसी ऋतु का भी महत्व नहीं समझा। कभी शऊर से नहीं खाया, ढंग से नहीं पहना।'

इतनी बात सुनी, तो बाबा का जैसे माथा ठनका। उसे लगा कि सच, इस राधाबाई ने त्याग किया है। सन्तान के लिये अपना जीवन मिट्टी बना दिया है। यह औरत है—माँ है। महान् है। त्यागमयी है। अतएव, वह तुरन्त ही, अपने स्वर में सहानुभूति का भाव लेकर बोला—'हाँ, हाँ, यह सर्व विदित है, राधाबाई ! सभी जानते हैं कि तुमने पुत्र के लिये सभी कुछ किया। अपार त्याग किया। पर मैं कहता हूँ, तुम पुत्र के लिये जो बात सोचती हो, जैसा उसे बनाना चाहती हो, जिस रास्ते पर चलने के लिये उसे उद्‌बोधन प्रदान करती हो, वही उसके लिए प्राप्य नहीं है। वह तो सभी करते हैं। सभी पाते हैं। पत्नी, बच्चे, धन का उपार्जन—क्या बस, यही रह गया है, इस जीवन में ? शरीर और मन की इस माँग को पूरा करना ही क्या श्रेयस्कर है राधाबाई, मत भूलो कि जब तुम विधवा बनीं, जवान थीं। तुम्हें रोक नहीं थी, कोई बन्धन नहीं था, शरीर की माँग पूरी करने के लिये दूसरा विवाह भी कर सकती

थीं। इन्द्रियों का भोग तुम भी भोग लेना पसन्द करती होगी। पर तुम्हारी आत्मा ने तो तुम्हें कर्त्तव्य की बात दी, मन ने ऐसी प्रेरणा प्रदान की कि तुम पति द्वारा छोड़ी गयीं थाती को सहेजने में लग गयीं। तुमने जीवन में जो यज्ञ किया, जो आहुति प्रदान की, ऐसी भला कितनी औरतें दे सकेंगी। इसीसे कहता हूँ, तुम अपने पुत्र को भी यज्ञ का आयोजन करने दो। उसे यज्ञ में आहुति देने दो। तुम श्रीधर के लिये समाज को सुनने दो कि आदमी का कर्म क्या है···

बाबा की बात सुनते के साथ ही, राधाबाई ने साँस भरी और छोड़ दी। उसने अपनी गर्दन भी झुका ली।

बाबा ने कहा—'राधाबाई, श्रीधर तुम्हारी ही छाया है—'तुम्हारे मन का प्रतीक। बोलो, तुम्हें भी तो गाँव के घरों में जाना अच्छा लगता है। किसी दुःख-दर्द में···'

राधाबाई ने कहा—'बाबा, यह तो सभी काम है—इन्सानियत का काम!'

उत्साह भाव में बाबा ने कहा,—'हाँ, यही तो। अब तुम्हारा श्रीधर भी यही करने चला है।'

राधाबाई ने तब सहमे स्वर में कहा—'पर बाबा···'

बाबा ने कहा—'भगवान् पर भरोसा रखो। वह कल्याण करता है।'

'और यह गाँव का जमींदार···ये ईर्षालु लोग···'

विषाक्त भाव में बाबा हँसा,—'ये सभी क्षुद्र हैं। कुत्ते हैं,। हाथी रास्ते पर चलता है, तो कुत्ते भौंकते हैं।'

राधाबाई बोली—'मेरे श्रीधर के लोग दुश्मन बन गये हैं। सुनती हूँ कि रेणुबाई का भाई भी उन लोगों में मिल गया है। उसकी बहन से श्रीधर विवाह नहीं करता तो···'

एकाएक बाबा ने अपने हाथों की मुट्ठियाँ भींच लीं और कहा—'राधाबाई, जब आँधी चलती है तो घर ही का कूड़ा उड़ता है। बदबू भी फैलती है। तुम देखना कि ये सभी लोग हारकर बैठ जाने वाले हैं।

ठाकुर का लड़का जगराम भी जमींदार के साथ मिल गया होगा। मिलाया होगा। वह अपनी बहन के अपमान का बदला ले, इतना उससे भी कहा होगा।'

राधाबाई बोली—'मैं गाँव में निकलती हूँ तो लोग आपस में फुस-फुसाते हैं। शायद मुझे देखकर श्रीधर का जिक्र करते हैं।'

बाबा ने कहा—'करने दो। लोगों के मन में जो बात है, उसे मुँह पर आने दो।'

राधाबाई उठ चली। वह जब अपने घर की ओर बढ़ रही थी, तो तभी, रेणुबाई किसी के घर से लौटकर अपने घर जा रही थी। उस दिन वह बहुत दिनों में दीख पड़ी। सयानी हो गयी तो अब घर से नहीं निकलती। जंगल में नहीं जाती। बचपन की चंचलता और नटखट अवस्था भी अब उसकी नहीं रह गयी। गम्भीर बन गई, रेणुबायी। किन्तु जब सामने पड़ी,समीप आ गयी, तो उसने राधाबाई को देख हाथ जोड़े। जिसके उत्तर में राधाबाई ने आशीष दिया और कहा—'अच्छी है न। अब आती नहीं। दिखायी नहीं देती।

रेणुका ने कहा—'ताई, छूट नहीं होती। घर का काम···पढ़ने का काम···'

राधाबाई ने कहा—'हाँ, हाँ, यह तो ठीक ही है, माँ तो अच्छी है तेरी। भाभी···'

रेणु बोली—'ताई, तुमने भी आना बन्द कर दिया है।'

राधाबाई ने कहा—'बेटी, अब शरीर बूढ़ा हो गया। अब कहीं जाना नहीं हो पाता। कहना अपनी माँ से कि वह नहीं आतीं।' यह कहते हुए वह आगे बढ़ चली।

किन्तु जब रेणु और राधाबाई रास्ते में खड़ी थीं, तो तभी, उनके पास से एक औरत निकली। वह जगदम्बा नाम की औरत इस बात के लिए प्रसिद्ध थी कि वह कोई बात सुने, किसी का झगड़ा देखे, तो उसे बढ़ाना अपना बाँये हाथ का खेल मानती थी। एक बार राधाबाई ने

वह फटकार दी थी। इसलिए वह काँटा उसके दिल में चुभ रहा था। कभी भी कसक उठता था। लेकिन जब उसने राधाबाई और रेणु को बात करते पाया, तो वह वहाँ से सीधी रेणु के घर पहुँच गई। रेणु की माँ घर के पौर में बैठी थी, जगदम्बा को देख, बोली—'आओ, सेठानी ! आज कैसे रास्ता भूल गई।

बैठते ही जगदम्बा ने कहा—'बहू, बड़े घरों में जाते बुरा लगता, जानती तो है कि आजकल का जमाना खराब है। आदमी उल्टा समझा जाता है न सीधा...'

रेणु की माँ बोली—'ऐसी भी क्या बात ! सत्य की तरह भला आदमी भी क्या छुपता है। तुमसे क्या किसी का अहित हो गया है !'

'अरी, ऐसा न कह, बहू ! इस गाँव में ऐसी भी औरतें हैं कि जिन्हें मेरा देखना और जीना भी शूल की तरह खटकता है और की तो बात क्या, श्रीधर की माँ...'

रेणु की माँ ने कहा—'वह भी कहती हैं ! भला क्यों ?'

'कोई पूछे, उसी से ! राँड, साँड, संन्यासी...'हाँ, कोई सिर पर तो उसके है नहीं, जो मुँह में आये, वही उससे कहना सुहाता है। अब लड़का चार अक्षर क्या पढ़ गया, तो मेहतारी का दिमाग भी आसमान में चढ़ गया। अब उसका पैर जमीन में पड़ता है।'

हँसकर रेणु की माँ बोली—'नहीं, नहीं ऐसा नहीं दिखता !'

उसी समय रेणु की भाभी भी वहीं आ गई। जगदम्बा की बात उसने भी सुन ली। सास पर क्या प्रतिक्रिया हुई यह भी जान ली। इसी से वह बोली—'हाँ, अम्मा जी, बुढ़िया का दिमाग तो चढ़ गया है।'

जगदम्बा को जैसे सहारा मिला। बहू से बल पाकर उसने कहा—'जगराम की माँ, तुम सीधी हो, सतयुगी लगती हो। तुम्हारे घर में तो भगवान् का दिया सब कुछ है। पर जिसके पास कुछ नहीं होता, उन्हें ही ऊपर की ओर देखना अच्छा लगता है। खाली बर्तन बोलता है। मैं कहती हूँ, राधाबाई का काँटा क्या सहज में पचता है। नागिन है।'

अवसर की बात कि उसी समय रेणु लौट आयी। लेकिन जब जगदम्बा ने 'नागिन' की बात कही, तो वह जैसे बलात् सहम गयी। एकाएक बोल नहीं सकी। किन्तु रेणु को देख, जगदम्बा बोली—'आओ, बिटिया रानी, कहाँ हो आयीं। अभी देखी तो थी राधाबाई के साथ···'

'क्या श्रीधर की माँ के साथ थीं, बीबी जी ! हाय, राम !' एकाएक भाभी ने कहा।

किन्तु निशाना ठीक पड़ता देख, इससे पूर्व कि रेणु कुछ कहे, जगदम्बा ने कहा—'हाँ, तो क्या हुआ। कोई बात करता है, तो की जाती है। बिटिया कहीं से आ रही होगी कि रास्ते में···'

भाभी ने आक्रोश के स्वर में कहा—'रास्ते में खड़ी होकर बात करना क्या अच्छा था।'

इतना सुन, माँ कुछ कहे कि तभी, एकाएक रोष से भरकर रेणु ने कहा—'देखो भाभी, आज कहे देती हूँ, मेरे विषय में चिन्ता करना तुम्हारा काम नहीं, मेरा है।' और यह कहते हुए रेणु तेजी के साथ अपने कमरे की ओर बढ़ गयी।

लेकिन उसके पीछे स्तम्भित रह गयीं भाभी, जगदम्बा और रेणु की माँ जैसे साँस रोके हुए, एक-दूसरे की ओर देखने लगीं। मानो उन तीनों स्त्रियों के मन में एक ही बात थी, एक ही भाव !

किन्तु रेणु की भाभी ने तभी सास की ओर देखकर कहा—'देखा, अम्मा जी ?'

अम्मा चुप ! जैसे पत्थर।

जगदम्बा ने साँस भरी और आग किरोदी—'बहू, कलियुग आ गया है...आजकल के लड़के-लड़कियों पर क्या माँ-बापों का असर पड़ता है···नहीं !'

लेकिन उसी समय रेणु फिर लौट आयी और वह फूत्कार करती हुई, उस जगदम्बा को लक्ष्य करके बोली—'और तू क्यों आयी री,

काल की पोट ! खबरदार, जो कभी…'

माँ ने तेज बनकर कहा—'रेणु…मूर्ख कहीं की ।'

किन्तु रेणु रोष में थी, वह उसी स्वर में बोली—'माँ, गाँव में ऐसी ही औरतें दूसरों के घरों में जाकर आग लगाती हैं। गन्दगी फैलाती हैं ।'

जगदम्बा तड़प कर उठ खड़ी हुई, बोली—'लो भाग्यवान्, मैं जाती हूँ । अब इस ड्योढ़ी पर चढ़े मेरी जूती ।'

रेणु ने चीखकर कहा—'जा, डायन, निकल जा यहाँ से !' और वह वहाँ से जा, अपने बिस्तर पर कटी डाल की तरह जा पड़ी ।

आठ

अप्रत्याशित रूप से, जिस प्रकार का ढंग रेणु ने अपनाया, उसे देख, माँ और भाभी दोनों को आश्चर्य हुआ। जब जगदम्बा उस घर से विदा हो गयी, तो तभी रेणु की माँ और भाभी दोनों उसके पास गयीं। रेणु को चारपाई पर पड़ी देख, माँ ने पुकारा—'अरी, रेणु···'

किन्तु रेणु नहीं बोली। वह चुपचाप पड़ी रही।

तब माँ उसके पास गयी और देखकर, बहू को लक्ष्य करती हुई बोली—'अरी बहू! यह ले, रेणु तो पड़ी रो रही है। भला पूछ तो इससे किसी ने कुछ कहा क्या!'

भाभी ने कहा—'बीबी जी, अब जाने क्या सोचने लगी हैं।'

इतना सुनना था कि रेणु तड़पकर उठ बैठी। रोते हुए उसकी आँखें सुर्ख हो गयी थीं। गोरे गालों पर आँसू निकल आये थे। उसी अवस्था में वह बोली—'भाभी, मैं अपने भाग्य को रोती हूँ। मैं इसलिये भी पछताती हूँ कि इतनी समझ क्यों रखने लगी कि मेरा भी कोई अस्तित्व है। मेरे ही घर में इस गाँव की क्षुद्र औरत मेरा जिक्र करे, मेरी माँ और भाभी ही उसे सुनें, इससे बड़ी मेरे लिये और क्या शर्म की बात हो सकती है। अभी नर्बदा के घर सुनकर आयी हूँ कि मेरा भैया ही···'

माँ ने कहा—'बेटी, तू परेशान क्यों है।'

भाभी ने कहा—'हम सब तुम्हारे हैं, बीबी जी!'

किन्तु रेणु ने फिर अपने स्वर पर जोर दिया और कहा—'मेरा भैया ही अब श्रीधर को मार देने, उसका अपमान करने की बात

सोचता है। वह भी उन लोगों में मिल गया है कि जो श्रीधर का पतन चाहते हैं।'

चकित बनकर, माँ ने कहा—'क्या कहती है ?'

भाभी ने कहा—'यह बात तो नयी है। गढ़ी गयी है। नर्वदा की माँ ने—'

रेणु बोली—'नहीं, भाभी ! यह सत्य है। मैंने दूसरों के मुँह भी सुना है। और मैं कहती हूँ मुझे इस बात की इच्छा नहीं कि मेरा विवाह कहाँ हो। मैं उसे महत्व नहीं देती। मैं इस बात को नहीं सोचती।'

माँ ने कहा—'तब रो क्यों पड़ी, बेटी ! कहने वाले तो कहते हैं। उनके क्या मुँह पकड़े जाते हैं।'

रेणु ने कहा—'माँ, बात घर से चलती है। दूसरों को सुनायी जाती है। मैं समझती हूँ कि श्रीधर इतना भारी नहीं कि वह जिस घर से प्यार और आत्मीयता पा सका, तो अब वहीं से घृणा और प्रतारणा पायेगा। उसकी माँ इसीलिये इस घर नहीं आती।'

माँ बोली—'बेटी, हमारा क्या दोष ! हमने तो चाहा कि श्रीधर हमारा बने। पर वह तो जाने क्या सोचता है। किस दुनिया की बात अपने मन में रखता है।'

रेणु ने कहा—'माँ, श्रीधर विवाह की बात को महत्व नहीं देता। वह मुझसे कह चुका है। उसने जिन्दगी में जो कष्ट और पीड़ायें पायीं तो उन्हीं की वाणी में अपने को खो देना पसन्द करता है।'

माँ ने कहा—'तू शान्त बन। धीरज रख। मैं आज जगराम को समझा दूंगी।'

रेणु ने कहा—'इस झगड़े की जड़ वह जगपाल है। उसके बाप के पास पैसा है न, तो वह निर्धन और एकाकी बने श्रीधर की प्रतिष्ठा को देख कुढ़ रहा है। वह श्रीधर का पतन चाहता है।'

भाभी ने कहा—'यह बात तो है। इस बात की जलन बहुत सों

के मन में है ।'

रेणु बोली—'जमींदार ने उस बार चमार के साथ जो युद्ध किया और फिर उसे जुर्माना भी देना पड़ गया, तो वह काँटा उसके मन में खटक रहा है । बाप का काम बेटा करने पर तुला है ।'

माँ लौट चली और बोली—'मैं आज श्रीधर की माँ के पास जाऊँगी । उनके मन में कुछ हो, तो उसे सुन आऊँगी । मैं कह आऊँगी श्रीधर ब्याह नहीं करता, तो न करे, पर जब गाँव में आये, तो यहाँ भी आया करे ।'

भाभी ने कहा—'श्रीधर आदमी बुरा नहीं है। वह अब भी लजाता है । मैं कुछ कहती हूँ तो क्या शऊर से जवाब दे पाता है ।'

रेणु ने कहा—'भाभी, श्रीधर स्वभाव से ही शर्मालु है । वह औरत की प्रतिष्ठा करता है । दूसरे आदमी औरत को जिस निगाह से देखते हैं, वह क्या उस तरह समझता है । वह औरत का अध्यात्मिक पहलू देखना पसन्द करता है ।'

उस कमरे से माँ चली, तो भाभी भी लौट गयी । रेणु अकेली रह गयी । निश्चय ही अब उसका मन स्वस्थ था । उसके मुँह के सामने ही अलमारी थी । उसमें किताबें लगी थीं । वे किताबें अधिकांश में श्रीधर द्वारा लायी गयी थीं । उसके पैसे भी श्रीधर ने दिये थे । उन किताबों की ओर देखते ही, रेणु उठी और एक किताब को निकाल कर देखने लगी । वह किताब रूसी लेखक टालसटाय की लिखी थी । जिसमें लेखक की चुनी हुई कहानियाँ थीं । रेणु को उसकी कई कहानियाँ पसन्द थीं । किन्तु उस समय वह पढ़ने की स्थिति में नहीं थी । वह केवल यह देखने लगी कि किताब के दूसरे पृष्ठ पर ही, श्रीधर ने अपना नाम लिख दिया था । उस पर जो तिथि पड़ी थी. वह भी देर की थी । निश्चय ही. वह किताब श्रीधर ने तब दी कि जब उसका और रेणु का प्रथम मिलन हुआ था । जिसे अब कई वर्ष का समय बीत गया ।

उसी समय रेणु ने साँस भरी और किताब बन्द कर दी। उसे याद आया कि जब श्रीधर ने यह किताब दी थी, तो तब, न वह अधिक समझ रखती थी, न श्रीधर ! मानो नर-नारी के सम्बन्ध की जानकारी उन दोनों में से किसी एक को नहीं थी। किन्तु उस सन्ध्या के समय, खेत के एक छोर पर खड़े हुए, जब कि चारों ओर सरसों फूली हुई थी, मानो प्रकृति पीली ओढ़नी ओढ़कर इठला रही थी, उन खेतों की ओर देखते हुए ही श्रीधर ने कहा था—'री, रेणुबाई, यह जीवन भी खूब है, भला लगता है। देख तो कहाँ की तू और कहाँ का मैं, यों बरबस ही दोनों का मेल हो गया। जैसे दरिया की दो लहरों ने एक-दूसरी को समझ लिया, परिचय पा लिया···'

तब, रेणु ने कहा था—'तू तो अधिक पढ़ गया है, रे, श्रीधर !'

सुनकर श्रीधर हँसा था। वह रेणु की ओर देखने लगा था।

रेणु ने फिर कहा—'तू मुझे अच्छा लगता है, श्रीधर !'

श्रीधर बोला—'ऐसा सदा थोड़े ही चलता है। न मिलता न निभता है। बचपन का आदमी बड़ा होकर बदल जाता है।'

एकाएक रेणु ने पूछा—'ऐसा क्यों ?' किसलिये श्रीधर ?'

श्रीधर ने कहा—'इतना मैं नहीं समझता। माँ कहती थी कि बड़ा आदमी समझदार बन जाता है। नफा-नुकसान समझने लगता है।

रेणु ने जैसे चिढ़कर कहा—'अरे छोड़ इन बड़े आदमियों की बात ! ये तो अपना ही स्वार्थ देखते हैं, दूसरे का नहीं।'

तब श्रीधर हँसा था और फिर खेत की ओर मुँह उठाये जाने क्या सोचने लगा था।

रेणु ने कहा—'ये हरे-भरे खेत···ये मनमाने फूल-पौधे···'

श्रीधर बोला—'यही जीवन देते हैं। अन्न प्रदान करते हैं इस दुनियाँ को !'

रेणु बोली—'धरती माता है, आकाश पिता···'

श्रीधर ने कहा—'कौन क्या है, यह मैं नहीं जानता। पर इतना समझता हूँ, अपने मास्टर से भी सुन चुका हूँ कि इस धरती से ही इन्सान को जीवन प्राप्त होता है। हम जो कुछ देखते हैं, उसे इस धरती माता ने ही दिया है।'

उसी समय किताब को फिर अलमारी में रखते हुए, रेणु ने साँस भरी और कहा—'अजीब है, यह श्रीधर ! अब जाने क्या सोचता है ! अपनी जिन्दगी की गहरायी में जाने क्या सोचता है।

उसी समय रेणु की भाभी फिर कमरे में लौट आयी और वह अपनी प्यारी ननद के कन्धे पर हाथ रखकर बोली—'मैंने रात ही तुम्हारे भैया से कहा था कि वे गाँव की बातों में न आयें। मैं अब कहती हूँ कि तुम्हारे भैया मेरी इस बात को मान गये हैं। पर विवाह तो तुम्हारा होना है। ससुर जी को भी चिन्ता है। रात ही तुम्हारे भाई ने बताया कि मलिकपुर गाँव में कोई लड़का है, शहर में पढ़ता है···'

रेणु ने कहा—'भाभी, मैं इस विवाह की बात पर कुछ नहीं सोचती। अब तो मुझे चिन्ता है कि वह श्रीधर ··हाँ, भाभी ! तुमने उसे नहीं समझा है। उसका मन कोमल है।'

भाभी ने कहा—'ननद जी, मैं तुम्हारी बात समझती हूँ। तुम्हारी उम्र को मैं भी पार कर आयी हूँ। तुम्हारी पीड़ा···मन की बात ··'

'ओह, मेरी भाभी !'

भाभी ने कहा—'इस उम्र में ऐसा ही लगता है। यही सूझता है। पर जिन्दगी का बोझ पड़ता है, तो आदमी बस, अपने सामने की बात सोचता है। एक दिन जिसे यह प्रेम और आत्म-समर्पण की बात कहता था, उसी को फिर परिस्थितियों के झाँझावात में पड़कर, दिमाग का उन्माद और जवानी का नशा कहने लगता है।'

एकाएक रेणु ने कहा—'भाभी, तुम···'

भाभी ने कहा—'ननद जी, मैं अब एक घर की बहू बनकर आयी हूँ। दो बच्चों की माँ भी हूँ। यह घर अब मेरी ओर देखता है।

समझती हो न, मुझे इस घर के सभी प्राणियों को खुश करना पड़ता है। अभी तो सास है, तुम हो, पर कल जब मेरे ही कन्धों पर बोझा पड़ेगा, जानती हो, मेरे जीवन का अपना कुछ नहीं रह जायेगा।

रेणु ने साँस भरकर कहा—'यह मानती हूँ, भाभी!'

'और यह भी मानती हो, कि पुरुष के समान नारी का भी एक क्षेत्र है—काम है। अर्थ है। किसी से प्रेम करना या किसी के लिये दीवानी बन जाना ही, इस नारी का काम नहीं है।'

रेणु ने स्वर गिराकर कहा—'मैं तुम्हारे कहने का अर्थ समझती हूँ। तुम क्या कहना चाहती हो, यह जानती हूँ।'

भाभी ने तनिक हँसा, आँखों से मुस्कराया—'तो, मैं समझी, मैंने जो कुछ कहा, उसका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। मैं तुमसे बहुत कम पढ़ी हूँ, यह तो तुम जानती हो।'

रेणु ने कहा—'नहीं भाभी, तुम्हारा अनुभव बड़ा है। तुम एक पुरुष की पत्नी हो, माँ बनी हो।'

इतना सुनकर ही, भाभी स्पष्ट रूप से हँस दी। वह बोली—'तो तुम इतना जरूर समझ गयीं कि मेरा उत्तरदायित्व बढ़ा है। वैसे, मैं इतना और अपनी तरफ से कह देती हूँ कि जिन्दगी का रहस्य मेरी समझ में आ गया है। तुम जिसे भावना की कसौटी पर घिसती हो, मैं उसी को वास्तविक चित्र मानती हूँ। जो, घिनौना है। क्रूर है। लगता है कि यह सड़ाँद से भरा है।'

रेणु ने भाभी से इतनी बात सुनी, तो वह तपाक से बोली—'इतना है! जिन्दगी सड़ाँद····क्रूर···घिनौनी···'

भाभी ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'हाँ, ननद जी! यही है। इसी का नाम जिन्दगी है, तो है। वह यही है।' वह बोली—'बोलो तो, पुरुष के समान क्या औरत भी अन्धेरे में नहीं है। वासना की पुकार नहीं सुनती है। माँ बनने की इच्छा नहीं करती है। और फिर भी कहते है लोग कि औरत रत्न गर्भा है, समुद्र! राम! राम!

इतनी ऊँची चढ़ाकर ही, और देवी का आसन प्रदान करके ही, आदमी इस औरत का यौवन,—दूसरा जीवन—इस तरह चूस लेता है कि जैसे कोई साँप मेंढक को अपने मुँह में देकर उसका अन्त कर देता है…'

मानो रेणु चीख पड़ी—'भाभी !'

किंतु भाभी ने कहा—'आज जब कहने चली हूँ, तो सुन लो। तुम जितना पढ़ी हो, मैं उतना नहीं पढ़ी हूँ। फिर भी, जितना पढ़ी, उतना समझ चुकी हूँ। जानती हो, रात-दिन तुम्हारे जिस भैया को देखकर मैं सुख पाती थी, हर्ष मनाती थी, आज उसी को मैं काल मानती हूँ—महाकाल—'

स्वर पर जोर देकर रेणु ने कहा—'तुम पागल हो गयी हो, भाभी !'

भाभी विषाक्त भाव से मुस्करा दी—'हाँ, मैं पागल बन गयी हूँ। अब मेरा यौवन जा रहा है न ! जीवन भी जा रहा है। और पता है, पप्पू हुआ था, तो मेरी कैसी स्थिति थी। प्राण आँखों में आ गये थे, मेरे साँस टूट-टूट जा रहे थे। उस समय तुम सब भी तो…'

रेणु ने कहा—'हाँ भाभी ! तुम्हारी हालत खराब हो गयी थी। दाई भी साहस छोड़ बैठी थी।'

भाभी बोली—'यह कहो कि प्राण लौट आये थे, मेरे !'

रेणु हँसी—'पर भाभी तुम तो फिर…'

भाभी ने कहा—'हाँ, हाँ कहो न कि मैं कितनी निर्लज्ज हूँ। जो पीड़ा पायी, उसे भूल बैठी हूँ। और अब फिर बच्चा जनने की स्थिति में आ गयी हूँ। समझ लो, यही नारी की दुर्बलता है। विवशता है। पुरुष जब भेड़िया बनता है, तो वह इस औरत को मेमना समझ कर ही खा जाना चाहता है, मेरी रानी ! मेरा भी यही हाल है। मैंने भी तुम्हारे भैया को…पुरुष को…'

रेणु ने साँस भरी और कहा—'तुम ठीक कहती हो, भाभी ! श्रीधर बाबू ने भी मुझसे यही कहा था। उन्होंने स्वयं ही बताया कि इस देश की नारी त्रस्त है, पुरुष द्वारा पथ-भ्रष्ट की गयी है।'

भाभी ने कहा—'नहीं, नहीं, इस देश की क्या समूचे संसार की ही यह परम्परा है। पुरुष और औरत ने अपने जीवन का एक ही तरह का व्यापार बनाया है—शरीर का भोग।'

उसी समय वहाँ रेणु की माँ आ गई और बोली—'अरी, बहू ! तू कैसे बैठी है। रोटी की सुध न लेगी। देख, दोपहर आ गया।'

बहू ने कहा—'अभी शुरू करती हूँ, अम्मा ! जरा अपनी ननद से ···'

अम्मा ने कहा—'इस ननद से क्या बात कर रही है। यह तो चार अक्षर क्या पढ़ गयी, इसका तो दिमाग···'

बहू बोली—'अम्मा जी ! हमारी ननद समझदार है। पढ़ी-लिखी होना क्या बुरा है। इसीसे तो आदमी अपनी भलाई-बुराई की बात सोचता है।'

अम्मा ने कहा—'मैं ऐसा नहीं समझती। पढ़ा-लिखा आदमी अपने रास्ते से जल्दी भटकता है। वह ऊँचाई की ओर देखता है।' वह बोली—'मैं अभी श्रीधर की माँ के पास गयी थी। माफी भी माँग आयी कि मैं देर से उधर नहीं जा सकी।'

भाभी बोली—'वे अच्छी तो हैं। अब इधर नहीं आतीं।'

माँ ने कहा—'गाँव में श्रीधर के कुछ दुश्मन बन गये हैं। जमींदार ने बनाये हैं। इसलिये उसे ख्याल था कि हम भी···'

भाभी बोली—'वाह-वाह ! हमें क्या मतलब !'

माँ ने कहा—'यही तो ! अब मैं कह आयी हूँ। इस रेणु के पिता ने भी अभी कहा कि श्रीधर की माँ को इस घर आना चाहिये।'

भाभी बोली—'और श्रीधर बाबू। वे कब आ रहे हैं, इस गाँव में !'

माँ ने कहा—'हाँ, यह तो कहना भूल गयी मैं, श्रीधर इन्हीं दो-चार दिनों में गाँव आ जायगा। उसने माँ को जो पत्र लिखा तो उसी में कहा है कि उसकी माँ रेणुका को भी बता देगी कि श्रीधर जल्दी ही लौट रहा है, इन दो-चार दिन में ही···'

नौ

मानो एक ही जंगल में दो शेर पैदा हो गये थे। परन्तु अन्तर इतना था कि एक के दाँत और नाखून तेज थे और दूसरे के वे पैने दाँत और नाखून जन्म से ही नहीं निकले थे। इसलिये, यह शरीर रूप से शेर बन कर भी शेर नहीं था। फलस्वरूप, उससे किसी को गम भी नहीं था। परन्तु जगपाल का पिता ठाकुर कल्याणसिंह अब भी गुर्राता, और दाँत दिखाता और अपने तेज नाखूनों से उस समाज को भयग्रस्त करने का प्रयत्न करता था। किन्तु इसके विपरीत श्रीधर न तो शेर था और न किसी को आतुर बनाने का उसका स्वभाव था। फिर भी लोग उससे भयभीत थे। गाँव के कुछ लोग प्रायः इस बात को अनुभव करते कि यह श्रीधर कभी भी उन्हें नुकसान पहुँचा सकेगा। कदाचित् इस शंका का एक कारण यह था कि ठाकुर कल्याणसिंह के द्वारा जो प्रचार किया गया, उसका अर्थ ही यह था कि श्रीधर इस गाँव के लिये साँप है, यह किसी को भी डस सकता है।

किन्तु लोग देखते कि श्रीधर साँप नहीं था। उसके मुँह से किसी ने भी गाँव के जमींदार तथा अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कोई वाक्य नहीं सुना। जब उससे कहा जाता कि जमींदार तुम्हारी बुराई करता है, तो तब, वह मुस्कराता और बात को टाल जाता।

श्रीधर गाँव आ गया था और फिर वहाँ से चले जाने की तैयारी में था। एक दिन वह रेणु के घर भी पहुँच गया। किन्तु लगता यह था कि श्रीधर अतिशय थका था, निःशक्त बना था। उसके सिर के बाल बढ़े हुए थे। कदाचित् हफ्तों से उसने दाढ़ी भी नहीं बनायी थी।

पुत्र के उस रूप को देख, माँ के मन में क्या आया, यह तो वही जाने, परन्तु उसे देखकर अनेक व्यक्तियों ने कहा—'यह क्या रूप बनाया है, भाई ! क्या साधु बनना है । यह सुन्दर शरीर तुमने ऐसा बना दिया है ।'

लेकिन इतना सुनकर, श्रीधर क्या कहे ! वह कैसे बताये कि यह जब से गाँव से गया, तो एक स्थान पर नहीं टिका । उसे अवसर नहीं मिला ।

एक दिन जब श्रीधर कहीं से लौटकर घर पहुँचा, तो माँ ने कहा—'अरे श्रीधर, तू कैसा कुछ हो गया है रे ! जबसे बाहर से आया है, रेणु से एक बार भी नहीं मिला । और अब फिर बाहर जाने की बात करने लगा है । रेणु कई बार आयी और लौट गयी ।

श्रीधर ने बात सुन ली, पर मत नहीं दिया । वह अपने कमरे में चला गया ।

किन्तु माँ ने उसके पीछे जाकर फिर कहा—'अब क्या करने चला है ! हो आ न, तनिक देर को ठाकुर के घर !'

इतना सुनना था कि श्रीधर झल्ला गया । वह छूटते ही बोला—'माँ ठाकुर के घर मेरा क्या काम है ! एक दिन हो आया था । सभी से मिल आया था ।'

श्रीधर की बात सुन, माँ को कुछ अचरज हुआ । क्योंकि उसने समझा कि श्रीधर जब सुनेगा कि रेणु कई बार आ चुकी है, तो प्रसन्न होगा, परन्तु उसको जिस रूप में पाया, उससे माँ को जहाँ अच्छा नहीं लगा, आशा के अनुरूप भी नहीं । इसीसे उसने फिर कुछ नहीं कहा ।

किन्तु माँ को मौन देख, श्रीधर बोला—'माँ मेरे समक्ष काम की बातें हैं, मेरा मन और मस्तिष्क उन्हीं में लगा है ।'

वहाँ से जाते हुए माँ ने कहा—'तू जान, बेटा !'

उसी समय, द्वार पर पड़ौसी हरनाम आया । जब उसने आवाज दी, तो श्रीधर ने उसे पास बुला लिया । घर में जाते ही, हरनाम बोला—

'क्यों श्रीधर, गाँव में आये देर नहीं हुई कि फिर बाहर जाने लगे। ताई कहती थी कि तुम कल चले जाओगे।'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, हरनाम ! मुझे जाना है। काम है।

हरनाम ने कहा—'और क्या यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं। गाँव तुम्हारा नहीं। इसे तुमसे कोई आशा नहीं।'

सुना, तो श्रीधर मुस्करा दिया। बोला—'भैया गाँव तो अपना है। यह तो मेरा बसेरा है।'

हरनाम ने कहा—'यह गाँव भी तुमसे कुछ माँगता है। और सुना नहीं कि जमींदार···'

श्रीधर ने कहा—'हाँ मैंने सुन लिया कि ठाकुर मुझे गैर समझता है। दुश्मनी रखने लगा है।'

'यही तो !' हरनाम ने कहा—'तुम आये और चलने लगे, तो लोग समझेंगे कि श्रीधर डर कर भाग गया। तुम्हें बाहर कोई काम है, इसे भला कौन समझता है।'

श्रीधर फिर भी मुस्कराया। वह बोला—'भैया जिसे जो कुछ कहना है, वह तो कहेगा। वह क्या रुकेगा। पर मैं गाँव की इस दलबन्दी में नहीं पड़ूँगा। ऐसी गन्दी राजनीति से सम्बन्ध रखकर मैं क्या जीवित रहूँगा ?'

हरनाम बातें सुनकर क्षण भर मौन रह गया। वह जैसे श्रीधर के वास्तविक रूप को समझने का प्रयत्न करने लगा।

श्रीधर ने कहा—'गाँव मेरी पैतृक भूमि है, इस नाते मुझे ममत्व है। वैसे भला मेरा क्या है। माँ है तो यह घर भी खुला है।'

तभी हरनाम को अवसर मिला और उसने कहा—'ममत्व का जो केन्द्र-स्थल है, उसे तुम स्वयं छोड़ते जा रहे हो, श्रीधर बाबू ! तुम्हें सम्पदा मिल रही है और उसे ठुकरा रहे हो।'

श्रीधर ने एकाएक कहा—'क्या···?'

'रेणुबाई !' हरनाम बोला—'ठाकुर की लड़की को पाकर कोई

भी अपने को भाग्यवान् मान सकता है। परन्तु एक तुम हो कि···'

श्रीधर हँसा और बोला—'बस यही !' उसने कहा—'भाई हरनाम ! यह तो दृष्टि भेद की बात है। तुम जिसे सम्पदा समझते हो, मैं उसी को अपने लिये उपयुक्त नहीं समझता। यह भी हो सकता है कि मैं उस सम्पदा को पाने का अधिकारी अपने को नहीं देख पाता।'

सहज भाव से हरनाम ने हँसकर कहा—'यही तो विडम्बना है। तुममें और एक दुनियादार में यही अन्तर है। मैं सोच नहीं पाता कि तुम्हारा क्या आदर्श है···किस लक्ष्य पर आधारित है, तुम्हारा वह जीवन ! परन्तु यह समझ लो भाई, तुम्हारी जिस माँ ने अब तक इस घर को बनाये रखने की साधना की, परिश्रम किया, जब तुम्हीं उसे बन्द करने का प्रयत्न करोगे, माँ के समक्ष ही इस घर को गिरा दोगे, माँ की आशाओं पर पानी फेर दोगे, तो मरकर न माँ की आत्मा को शांति मिलेगी, न यावत् जीवन तुमको !'

हरनाम की बात सुनते हुए, श्रीधर गम्भीर बन गया। उसे जैसे सहज ही इस बात का आभास मिला कि हरनाम जो कुछ कह रहा है, माँ से प्राप्त हुई प्रेरणा के द्वारा कह रहा है। लेकिन जो भी, यह भी श्रीधर ने समझा कि यह हरनाम सुगमता से भारी बात कह चला है। जैसे समस्त दुनियाँ के समान इसका भी एक लक्ष्य है, विवाह करो, बच्चे पैदा करो। और उनके पोषण के लिये धन उपार्जित करो। अतएव, उसने धीर भाव से मुस्कराया और हरनाम की ओर देखकर कहा—'अच्छा, अच्छा, तुम्हारे उपदेश का भी अध्ययन करूँगा। तुम्हारी सीख मेरे लिये उपयुक्त बन सकी, तो आभार मानूंगा।'

हरनाम ने कहा—'नहीं भैया ! तुम्हें भी क्या उपदेश दिया जायगा। तुम ही विद्वान हो, दूसरों को उपदेश देते हो।'

श्रीधर बोला—'नहीं, हरनाम ! उपदेश कोई भी दे सकता है। कोई रास्ते से भटक जाये, तो उसे किसी ओर से दिशा का निर्देश मिल सकता है। इस जगत् में यही चलता है। लो और दो का व्यापार सर्वत्र

दिखायी देता है ।'

हरनाम ने कहा—'हाँ, यही तो ! भैया, तुम हमारे पड़ौसी हो, सखा हो । तुम्हारी उन्नति हो, तो यह देखना हमें भी पसन्द आता है ।' यह कहते हुए हरनाम उठ लिया । वह चल दिया । बाहर जाकर वह श्रीधर की माँ के पास रुका, परन्तु वह माँ से क्या कह सका, इतना श्रीधर नहीं सुन सका । वह अपनी जगह से नहीं उठा । वह देर तक जब अपनी जगह बैठा रहा, और अन्धेरा आ गया, तो तभी, माँ ने वहाँ पर चिराग चलाया । उसी समय वह माँ की ओर देखकर बोला—'माँ यह हरनाम आया था । अपनी बात कहता था । विवाह की बात पर वह भी जोर दे रहा था ।'

माँ ने इतनी बात सुनी, तो श्रीधर की ओर देखा । जैसे माँ ने पुत्र के मर्म को समझना चाहा ।

तभी श्रीधर बोला—'माँ, तुमसे तो मैंने पहिले भी कहा कि विवाह मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ है । तुम जिस दृष्टि से आज की दुनियाँ को देखती हो, पुरानेपन से उसका मिलान नहीं खाता । इसीसे मैं सोचता हूँ कि मुझे अभी विवाह की बात से दूर रहना चाहिये । परन्तु यदि तुम्हारी यह इच्छा हो तो, मुझे अपनी बात को रोक देना पड़ेगा । जो श्रीधर आज है, उसे मरना पड़ेगा । विवाह के बाद इस श्रीधर को पैसे उपार्जित करने की चिन्ता पड़ेगी, गति रुक जायेगी, जो कुछ आज मैंने जीवन में संजोया है, उसे भी छोड़ देना होगा । मार देना होगा ।'

माँ ने कहा—'न बेटा तू अपनी बात कर !'

श्रीधर खड़ा हो गया और माँ के पास जाकर उसके कन्धे पकड़ते हुआ बोला—'न, माँ ! मैं इस सन्ध्या बेला में—दिन और रात के मध्य में—खड़ा हुआ तुमसे निवेदन करता हूँ कि मुझे आज्ञा प्रदान करो कि मैं क्या करूँ; माँ, तुम्हारी आज्ञा मेरे लिये सर्वप्रथम है, शिरोधार्य है । तुम्हीं मेरा तीर्थ हो । तुमने मुझे जन्म दिया है...तुमने ही...'

तभी गहरे ममत्व को लिये माँ ने श्रीधर के सिर पर हाथ रखा

और कहा—'मेरे श्रीधर···'

'श्रीधर नीचे झुक गया और माँ के पैरों को पकड़कर बोला—'मेरी माँ···'

आलोड़ और गद्गद् होकर माँ ने श्रीधर को ऊपर उठा लिया और उसका सिर अपनी छाती से लगाकर कहा—'श्रीधर तेरी माँ समझती है कि तू क्या चाहता है। मुझे गर्व है, तुझ पर!'

श्रीधर ने कहा—'माँ, मैं अभी ठाकुर कल्याणसिंह के पास भी जाऊँगा। कहूँगा कि तुम यदि मुझे अपना शत्रु मानते हो, तो लो मैं सामने हूँ। अपनी इच्छा पूरी करो।'

माँ ने कहा—'बेटा, वह साँप है। काटना ही उसका काम है।'

श्रीधर ने कहा—'न, माँ, आदमी कोई साँप नहीं। परिस्थिति ही उसे ऐसा बना देती है। डाकू और खूनी भी आदमी हैं। उनकी छाती के नीचे जो ममता का दरिया ढाठें मारता है, तो क्या उसे कोई देख पाता है।'

माँ ने जैसे इतनी-सी बात को नहीं समझा। अतएव, उसने अपना मत नहीं दिया।

श्रीधर बोला—'माँ, तुम रोटी बना लो। मैं आता हूँ। यह तो समझती हो न, गाँव में अपने शत्रु बनाकर मैं किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता। मेरा यही ध्येय है। यह कहते हुए, श्रीधर घर से चल दिया। जिस समय वह ठाकुर कल्याणसिंह के घर की ओर जा रहा था, तो रास्ता रेणु के मकान के सामने से था। झुट-पुट अन्धेरा छा गया था। चौपाये घरों को लौट आये थे। किसान भी अपने कन्धे पर हल रखे गाँव की ओर लौट रहे थे। मन्दिर पर आरती हो रही थी और घण्टे-घड़ियाल बजने लगे थे। ऐसे ही समय, जब श्रीधर रेणु के मकान के सामने से निकला, तो उसने देखा कि रेणु अपने भाई के बच्चे को गोद में लिये द्वार पर खड़ी है। बच्चा हँस रहा है, तो वह भी हँस रही है।

वहाँ पहुँचते ही, श्रीधर की इच्छा आयी कि रुक जाये। वह रेणु से दो बात करने लगे। इतना तो कहे कि वह कई बार उसके घर गयी और वह नहीं मिला, इसका उसे खेद है। परन्तु उसने रुकना नहीं चाहा। क्योंकि उसे सन्देह था कि रेणु उससे बात करना चाहेगी। यह भी जानना चाहेगी कि वह कहाँ जा रहा है। निदान जब वह आगे बढ़ चला, तो तभी रेणु का भाई जगराम कन्धे पर लाठी रखे, सामने से आ गया। श्रीधर को देखते ही वह रुक गया। बोला—'इधर आये, तो चुपचाप ही—'

श्रीधर ने कहा—'भाई, मुझे जाना था।'

जगराम बोला—'इधर कहाँ ? क्या जमींदार के घर ?'

श्रीधर इन्कार नहीं कर सका। वह बोला—'हाँ, उसीके पास जाना था। उससे बात करना आवश्यक था।'

जगराम ने कहा—'मैं चलूँ।'

श्रीधर बोला—'नहीं, नहीं, तुम्हारा क्या उपयोग होगा। मुझे क्या लड़ना है। और तुम जिसे बलवान् समझते हो, उससे डरना चाहते हो, तो वह भी तो—'

जगराम बोला—'श्रीधर बाबू, जंगली आदमी यह सब नहीं देखता वह अपना स्वार्थ देखता है। अपनी प्रभु-सत्ता को ही सर्वश्रेष्ठ मानता है।'

श्रीधर ने बात सुनी, तो मुस्करा दिया। वह चल दिया। सीधा जमींदार के बैठकखाने पर पहुँच गया। देखा कि वहाँ जमींदार के अतिरिक्त उसका लड़का जगपाल था, अन्य आदमी थे। श्रीधर ने जाते ही, जमींदार को लक्ष्य किया और कहा—'चाचा, राम-राम।'

एकाएक श्रीधर को देख, जमींदार जैसे विस्मय में भर गया। उसने तुरन्त ही 'राम-राम' का उत्तर दिया और कहा—'आओ, आओ, श्रीधर बाबू !'

श्रीधर ने कहा—'यह 'बाबू' आपके मुँह से नहीं शोभा पाता है !

पुत्र को ऐसे नहीं कहा जाता। यह जगपाल यदि मुझे बाबू, कहे तो असंगत नहीं लगेगा। वैसे इसके मुँह से भी भाई, सुनना मुझे अधिक पसन्द आयेगा।'

जमींदार ने कहा—'हाँ, हाँ, तुम ठीक कहते हो, श्रीधर!'

श्रीधर ने तभी वहाँ पर उपस्थित सभी व्यक्तियों को लक्ष्य किया और कहा—'और चाचा मैं यह सुनने आया हूँ कि क्या यह सच है कि तुम मेरा अन्त चाहते हो—शायद पतन! तो मैं आ गया हूँ, तुम्हारे सामने। तुम अधिकार रखते हो, मारना चाहो तो मार सकते हो! मैं कोई शिकायत नहीं करूँगा।'

जमींदार ने कहा—'श्रीधर, लोगों की बातों पर न जाओ। लोग लड़ाना चाहते हैं।'

जगपाल बोला—'श्रीधर बाबू, सुनी बातें क्या सत्य होती हैं।'

श्रीधर ने कहा—'जो हो, मैं जल्दी लौट जाने वाला हूँ। मेरे प्रति कोई शिकायत हो, तो उसे मुँह के समक्ष सुन लेना अधिक पसन्द करता हूँ। मुझसे किसी का अहित हो, तो मैं इसे अपने जीवन का बड़ा पाप मानता हूँ।'

कदाचित् यह विस्मय की बात थी, कल्याणसिंह के लिये भी। तब वह उठा और श्रीधर के पास आकर उसे छाती से लगाता हुआ बोला—'श्रीधर तुम जगपाल के बड़े भाई हो। तुम सचमुच बड़े हो! निर्भय रहो, तुम इस चाचा के लड़के हो।'

श्रीधर ने कहा—'धन्यवाद, आपका। यह आशीष पाना मुझे आवश्यक था। इसी में मेरा और गाँव का भला था। मैं आपका सेवक हूँ।

और जब कुछ देर बाद श्रीधर वहाँ से चला, तो वह यह देखकर चकित बन गया कि रेणु का भाई जगराम लट्ठ बन्द कुछ आदमियों सहित, अन्धेरे में उस मकान से दूर खड़ा था। जिन्हें देखकर श्रीधर हँस दिया और उनके साथ ही लौट लिया।

दस

अन्ततः रेणु का पिता और उसका भाई जगराम उसके सामने झुक गये और उन्होंने फिलहाल उसके विवाह का चिन्तन करना स्थगित कर दिया। श्रीधर गाँव से जा चुका था। वह दूसरे प्रांत में जाकर बाढ़-पीड़ित समाज का सेवा-कार्य कर रहा था। वहीं से उसने रेणु और उसके पिता को पत्र लिखा था। पिता-पुत्री को लिखे उन दोनों पत्रोंमें, उसने मानव-समाज को जिस पीड़ा और मनोव्यथा का चित्रण किया था। वस्तुतः उस प्रकार का उल्लेख, इससे पूर्व, उन दोनों ने नहीं पढ़ा था। रेणु के पत्र में, उसका आवाहन किया गया था कि वह उस क्षेत्र में आयें और पीड़ितों की सेवा करे। श्रीधर ने उसके पिता से भी इसी प्रकार का अनुरोध किया था।

फलस्वरूप, वे दोनों पत्र, उस परिवार में चर्चा का विषय बन गये। रेणु की इच्छा थी कि वह उस क्षेत्र में जाये। वह भी श्रीधर के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करे। परन्तु माँ, पिता और भाई इस पक्ष में नहीं थे। सयानी लड़की को इस प्रकार दूर प्रान्त में भेजना वे असंगत मानते थे। इसका परिणाम यह हुआ की रेणु प्रायः उदास रहने लगी। माँ और भाभी जब उसकी वह स्थिति देखतीं, तो उसे नादान मानतीं, उसका तिरस्कार भी करतीं।

किन्तु जब एक दिन ठाकुर घर में लौटा, तो उसने पत्नी को पास बुलाकर कहा—'रेणु की माँ, श्रीधर जहाँ गया है, वहाँ सचमुच, बड़ा संहार हुआ है। हजारों गाँव पानी में डूब गये हैं। जाने कितने नर और नारी मर गये हैं। देश के नेता ने पुकार की है, माँग की है कि सेवक वहाँ जायें। स्त्रियाँ भी जायें, पुरुष भी जायें। वह बोला—

'आज मैंने जमींदार के यहाँ अखबार देखा। उसीमें श्रीधर का फोटो छपा था। उसके फोटो के नीचे लिखा था, जनता का सच्चा सेवक। उसी अखबार में मैंने कुछ बड़े घरों की औरतों के फोटो भी देखे कि जो...'

पत्नी ने कहा—'तुम्हारी बात क्या है···क्या कहना है ?'

ठाकुर बोला—'मैं कहता हूँ, रेणु जाना चाहती है, तो जाने दो। उस पुण्य की गंगा में गोता खाने दो।'

बात सुनी, तो पत्नी जैसे विस्फारित बन गयी। वह छूटते ही बोली—'अब जरूर तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। तुम पर बुढ़ापा····'

ठाकुर हँस दिया—'न, न, यह मेरी आत्मा की आवाज है, रेणु की माँ !'

पत्नी ने जैसे चिढ़कर कहा—'खाक है, तुम्हारी आत्मा की आवाज !'

तभी ठाकुर गम्भीर हो गया और बोला—'मेरे मन में तो यह भी बात है कि यह रेणु तुमने अपने पेट से पैदा ही श्रीधर के लिये की है। यह उसी की सम्पदा है।'

पत्नी बोली—'यह भी जरूरी नहीं। जहाँ संयोग होगा, लड़की वहीं जायेगी।'

उसी समय जगराम घर में आ गया। वह बोला—'पिताजी, जगपाल भी बाढ़-पीड़ित क्षेत्र में जा रहा है। श्रीधर ने जमींदार को पत्र लिखा था। यह भी सुना कि उसकी माँ···'

ठाकुर ने कहा—'अरे, और-तो-और, श्रीपाल बनिया भी जा रहा है। सुना, दो-चार औरतें भी जा रही हैं।'

इतनी बात सुनी, तो ठकुराइन उत्साहित बन गयी। वह बोली 'तो फिर रेणु भी जा सकती है। औरतें जाती हैं, तो उसका जाना भी शोभता है।'

प्रसन्न बन कर ठाकुर ने कहा—'ठीक, ठीक।'

जगराम बोला—'श्रीधर आजकल बहुत काम कर रहा है। सरकार तो अपना काम कर रही है, पर श्रीधर...'

ठकुराइन बोली—'अरे, मैं कहती हूँ कि यह श्रीधर सोना है! अभी वह क्या परखा गया है।'

ठाकुर ने कहा—'वाह! अब यह कहने लगी। और अभी थोड़ी देर पहले.. औरत की बात नहीं समझी जाती।'

ठकुराइन तुनक गयी—'और मर्दों की समझी जाती है।'

ठाकुर ने कहा—'हाँ, हाँ, क्यों नहीं! देख लो श्रीधर की बात! गाँव से दूर जाकर भी सम्मान पा रहा है।'

ठकुराइन ने ताना दिया—'और तुमने क्या किया...यह जीवन व्यर्थ ही तो गँवा दिया, तुमने!'

ठाकुर ने कहा—'भाग्यवान्, तू न आती, तो मैं भी कुछ करता! काम का आदमी बनता। कहते तो हैं लोग, औरत क्या आती है, आदमी खूंटे से बँध जाता है।'

उसी समय, जगराम हँसता हुआ दूसरी ओर चला गया। किन्तु पीछे बैठी रह गयी ठकुराइन ने कहा—'अब बात करते हो, पर याद करो न वे दिन कि जब...हाँ, दाई से भी पेट छुपाते हो। जब ब्याह नहीं हुआ था, तो रात-दिन...'

ठाकुर हँस दिया और बोला—'सब औरतें यही कहती हैं, अपने आदमी पर दोष थोपती हैं। और यह नहीं सोचतीं कि अविवाहित लड़की भी रात-दिन पुरुष की कल्पना करती हैं...अपरिचित को खोज लेना चाहती हैं।'

उस समय ठकुराइन जैसे लजा गयी। किन्तु तुरन्त ही बोली—'झूठ! बात तुम्हारी है—आदमी की—औरत की नहीं!'

तभी जगराम फिर लौट आया और बोला—'तो पिताजी रेणु को भेज दो।'

ठाकुर ने कहा—'भैया यह अपनी माँ से कहो। अधिकार इसका है !'

ठकुराइन बोली—'नहीं, नहीं, यह मेरा काम नहीं, तुम्हारा है। बाप सोचे, भैया सोचे !'

जगराम बोला—'माँ, बात सीधी है। रेणु भी जाना चाहती है। उसकी भाभी कह रही है। और सेवा का काम करना भला क्या बुरा है। वहाँ तो काम होगा, आराम नहीं।'

ठाकुर ने कहा—'लड़की की आँखें बदलेंगी, दिमाग बदलेगा।

जगराम बोला—'माँ, युग में साथ चलना अशुभ नहीं रहेगा।'

ठकुराइन ने कहा—'तो ठीक है भेज देना।'

जगराम वहाँ से चला गया। ठाकुर ने कहा—'रेणु की माँ, उस दिन जब मैं शहर गया, तो देखकर हैरत हुई कि मजिस्ट्रेट औरत थी। वह दोनों ओर के वकीलों से जिरह कर रही थी। मैं तो उसकी ओर देखता ही रह गया।' वह बोला—'अब औरत बच्चा पैदा करने की मशीन नहीं रह गयी है, सभी काम करती है। आदमी के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर चलती है।'

ठकुराइन बोली—'यह तो ठीक है। रेणु भी अब यही चाहती है।' उसने कहा—'है तो मेरी लड़की, पर मुझे तो कभी-कभी अपने से भी बड़ी दिखायी देती है। मुझको और अपनी भाभी को जाने कहाँ-कहाँ की बातें बताती है।'

ठाकुर ने हँसकर कहा—'अरी तू अपनी बात कहती है। मैं कहता हूँ कि रेणु अब इस घर की गुरु बन चुकी है। मुझसे भी जाने किस-किस की बातें करती है। किस-किस देश के किस्से और किस-किस महापुरुष के जीवन-वृतान्त बताती है।'

ठकुराइन ने साँस भरी और बोली—'सच तो यह है कि, अब रेणु पर हमारा अधिकार नहीं है। यह श्रीधर की है उसीने मिट्टी की डली सोने की बना दी है। जैसे उस श्रीधर ने अपनी समस्त विद्या इस

रेणु के दिमाग और दिल में उँड़ेल दी है ।'

ठाकुर ने कहा —'रेणु गम्भीर बन चुकी है । हँसती कम और बात भी कम करती है ।'

ठकुराइन ने कहा—'कभी-कभी तो रेणु मुझे और अपनी भाभी को झिड़क देती है । वह जब पास आती होती है, तो उसकी भाभी क्या बे-समझे ही कुछ कह पाती है ।'

इतनी बात सुनी, तो ठाकुर जैसे गद्गद् बन गया । वह बोला— 'हाँ, ठकुराइन ! ठीक तो कहते हैं लोग कि शिक्षा आदमी को आदमी बनाती है । शहर में और गाँव में यही तो भेद है । शिक्षा से ही बुद्धि का विकास होता है । यह संसार···'

ठकुराइन ने कहा—'रेणु कहती थी कि माँ यह संसार बुद्धिवादियों ने बनाया है । उन्होंने भगवान का रूप भी सँवार दिया है ।'

ठाकुर ने सिर हिलाकर कहा—हाँ, हाँ, यही बात । रेणु कहाँ है ?'

ठकुराइन बोली—अपने कमरे में होगी । पढ़ रही होगी ।'

ठाकुर ने कहा—रेणु सयानी बनी है, तो घर भी बदल गया है । उसका अपना कमरा तो जैसे किसी शहरी का है । उसे देखकर क्या यह कहा जायेगा कि यह किसी गाँव की लड़की का है ।'

उसी समय घर के चौक में से रेणु की आवाज आयी । वह भाई के बच्चे को बुला रही थी । उसे डाँट रही थी । आवाज सुनी तो ठाकुर ने पुकारा—'अरे रेणुका !'

रेणु ने कहा—'जी, पिताजी !' और उसके बाद ही वहाँ आ गयी ।'

ठाकुर ने कहा—'तो अब तू भी देश-भक्त का काम करने जायेगी ।'

रेणु ने कहा—'पिताजी यह तो सभी का काम है, आपका भी !'

ठाकुर ने कहा—'बेटी, मैं तो बूढ़ा हो चला ।'

रेणु ने कहा—'नहीं, नहीं, आप अभी बूढ़े कहाँ हैं ? बस, इस घर

में ही समस्त दुनियाँ का रूप देखते हैं ।'

तभी ठकुराइन ने कहा—'अरी सभी देशभक्त बन जायें, तो घर का काम कौन करेगा । श्रीधर जैसा भी क्या सबसे बना जायेगा । अपने घर को बरबाद करना किसी को पसन्द नहीं आयेगा ।'

इतनी बात सुनी, तो रेणु मुस्करा दी । ठाकुर हँस दिया ।

उसी समय ठकुराइन ने फिर कहा—'हाँ ठीक कहती हूँ । तू भी अब उपदेश देना सीख गयी है । पढ़े-लिखे आदमी में यही तो दोष है कि बात अधिक करने लगता है । हवा में किले बनाता है और यह नहीं सोचता कि इस जिन्दगी को चलाने के लिये, आदमी को भी पत्थर बनना पड़ता है । इतने पर भी पेट नहीं भरता । गुजारा नहीं होता ।'

रेणु ने देखा कि माँ ने अपनी बात कही, तो उसके मन का रोष भी मुँह पर छलक आया । उसका चेहरा भारी और गम्भीर बन गया ।

और ठकुराइन ने फिर कहा—'लोग शहरों की बात करते हैं, पर गाँव के लोग रात-दिन मरकर अनाज के दाने न पैदा करें, तो वे शहर वाले दो दिन में ही तारे गिनने लगेंगे । उनका बाबूपन एक दिन में हवा हो जायेगा···'

रेणु बोली—'माँ, यह तो शहर वाले भी कहते हैं कि गाँव का महत्व है । वे तो स्वयं इस काश्तकारी को करने लगे हैं । वे इन किसानों से अधिक अनाज पैदा करते हैं ।'

ठाकुर नें कहा—'वे क्यों न करेंगे, बेटी ! उनके पास पैसा है ना, वे अब जमीनों में टैक्टर चलाते हैं । वे किसान के काम में भी मशीन का का उपयोग करते हैं ।'

ठकुराइन ने कहा—'खाक पड़े, इन मशीनों पर ! आदमी भूखे मरने लगे हैं ।'

ठाकुर ने कहा—'अब यही होगा । गाँव के आदमी शहरों की

तरफ भाग रहे हैं।'

रेणु बोली—'पिता जी, शहरों में पैसा है। धन्धा है। बोलो, यहाँ क्या है।'

ठाकुर ने साँस भरी और कहा—'न, बेटी! गुजारा यहाँ भी होता था। आदमी हाथ से काम करता था।'

ठकुराइन ने कहा—'मशीन चल पड़ी है, तो आदमी बेकार हो गया है। उस दिन कुट्टी काटने में जस्मत के लड़के का मशीन में हाथ आ गया···हाथ कट गया···।'

ठाकुर ने कहा—और वह मेघराज, जरा-सी देर में कोल्हू की मशीन ने पकड़ लिया···टुकड़े-टुकड़े कर दिया बेचारे को!'

ठकुराइन बोली—'अजी खाक पड़े इन मशीनों पर!'

रेणु ने हँसकर कहा—'माँ आज का संसार इन मशीनों पर टिका है। जो देश कल भूखे थे, जंगली थे, वे आज सभ्यता के आचार्य बने हैं। धन और शक्ति से समर्थ हो गये हैं, वह रूस···अमेरिका···।'

ठकुराइन ने तेज स्वर में कहा—'अरे रहने दे, उनकी बातें। वे सभ्य हैं। मैं कहती हूँ वे भी डाकू हैं, लुटेरे हैं, खूनी हैं। यही उनकी सभ्यता है कि दिन-रात अपने कारखानों में इंसान के विनाश के लिये शस्त्र तैयार करते हैं···वे बम···बन्दूक···राम···राम! नाश हो जाये, ऐसी सभ्यता का!

रेणु हँस रही थी। उसका पिता भी हँस रहा था। ठाकुर ने कहा—'हाँ बेटी! तेरी माँ ठीक कहती है। आज इन्सान नहीं रहा··· हैवान बन गया···सोये हुये आदमी का दिल और दिमाग तंग और सुस्त हो गया···।'

ठकुराइन बोली—आज किसी पर भरोसा नहीं किया जा सकता। उस दिन रामपत के बैल खोल लिये गये···वह जगिया की भैंस, बेचारे सिर पीट कर रह गये!'

ठाकुर ने कहा—'काम गाँव के आदमी का ही था।'

ठकुराइन बोली—'उस दिन हरिया शहर से लौटा था, तो बता रहा था कि गुण्डों ने एक औरत जबरबस्ती पकड़ ली और मोटर में बैठा ली। वह शोर मचाती रही, जनता देखती रही···पुलिस भी···पर मोटर तो भाग गयी···वह औरत उन गुण्डों के पेट में समा गयी···'

ठाकुर ने साँस भरी और कहा—'आज यही हो रहा है। पाप बढ़ रहा है। आदमी और औरत का समाज नंगा हो रहा है।'

उसी समय जगराम गाँव की एक औरत और आदमी के साथ शहर से आया और बोला—'रेणु, तू तैयारी कर लेना। कल जायेंगे लोग! उनमें ये दोनों भी···।'

ठाकुर ने कहा—'बेटी, अच्छा ये भी! वाह-वाह! अरी, सकिया तू वहाँ क्या करेगी?'

सकिया चालीस वर्ष के लगभग की वह नारी थी कि जिसका सुहाग विवाह से कुछ समय बाद ही छिन गया था। लोग उसके प्रति आदर-भाव रखते थे। भक्तिन समझते थे। ठाकुर की बात सुनी, तो सकिया ने कहा—'भैया, मैं भी तर जाऊँगी, इस भवसागर से! दरिया की जो लहरें निरपराध आदमियों को ग्रस रही हैं, तो मैं एक अभागिन—'

ठकुराइन ने बीच में ही कहा—'माँ जी तुम अभागिनी नहीं हो। तपस्विनी हो।'

सकिया बोली—'न, बहू! मैंने पिछले जन्म में बड़े पाप किये होंगे। तभी तो यह दिन देखने पड़े हैं।'

ठाकुर ने साँस भरी और कहा—'सचमुच! सकिया ने बड़ा कष्ट उठाया है। इस जिन्दगी को किस-किस कर काटा है।'

जगराम बोला—'लेकिन पिताजी, ये यादराम तो अभी कामकाजी आदमी है। घर के लड़के और बहुयें रोकती हैं, तो तब भी···'

यादराम ने कहा—'अरे, भैया! इस माया-ममता का भी कोई ठौर-ठिकाना है। न, बाबा! अगम समुद्र है। जिसने इसमें गोता खाया, तो वह क्या फिर ऊपर आता है!'

जगराम ने कहा—'तो साधु बन जाओ।'

यादराम बोला—'साधु बनना ही क्या ठीक है ! पेट उस अवस्था में भी खाने को माँगता है। दूसरों का आँकना क्या अच्छा है।'

ठाकुर ने कहा—'ठीक है, यादराम जी ! तुम पुरुष-प्रतापी हो। घर का काम भी ठीक चल रहा है।'

सकिया ने कहा—'ठाकुर, इस गाँव की आत्मा को उसने जगा दिया कि जो एक दिन हमारी गोद में खेला था। वह श्रीधर ही, दूर बैठा हम सब का आवाहन कर रहा है।'

ठाकुर ने कहा—'बेशक ! श्रीधर की आत्मा में भगवान् बोलता है।'

यादराम बोला—'पास के कस्बे से भी बहुत से लोग जा रहे हैं। पैसा भी ले जा रहे हैं।'

जगराम ने कहा—' जमीदार ने एक हजार रुपया दिया है। उसका लड़का नहीं जा रहा है। माँ भी नहीं।'

यादराम ने कहा—'वह तो बात थी, झूठी उड़ी थी। भला हराम का खाने वाला क्या सेवा का काम कर सकता—न. राम का नाम लो !'

उस समय ठाकुर गम्भीर था, वह सिर झुकाये हुये था। जब याद-राम ने बात कही, तो वह बोला—'मेरी रेणु जा रही है तो कुछ रुपया भी ले जायगी। उस श्रीधर की झोली में डाल देगी, पाँच सौ रुपये इस घर की भी भेंट होगी।'

सकिया ने कहा—'तुम्हारी लड़की जा रही है, यही क्या कम है। सयानी लड़की, इस यौवन की दोपहरी में, पुण्य का काम करने चली है, तुम्हें शाबाशी है।'

ठाकुर ने कहा—'लड़की की इच्छा है। श्रीधर का भी बुलावा है।

'हाँ, हाँ, यही तो बड़ा काम है, भैया !' सकिया ने कहा।

ठकुराइन ने कहा—'लड़की का ध्यान रखना। अपने से दूर न होने देना।' और तभी उसने रेणु की ओर देखकर कहा—'बेटी, कपड़े बाँध लेना।'

रेणु ने कहा—'सब तैयार है माँ !'

माँ ने कहा—'परदेश है, दूर जगह है, मुझे अब भी डर लगता है।'

यादराम ने कहा—'ठकुराइन, भगवान् सभी जगह निवास रखता है।' वह खड़ा हो गया।

बाढ़-पीड़ित क्षेत्र में आकर श्रीधर को जो सर्व-प्रथम अनुभव हुआ, वह यह कि आदमी जो कुछ भी करना चाहता है, उसका जैसे बदला माँगता है। उस क्षेत्र के लिए निश्चय ही, समूचे देश से सहायता मिल रही थी। परन्तु जो व्यक्ति सेवा काम में लगे थे, वे स्वार्थ-रहित नहीं थे, वे किसी अभिलाषा और महत्वकांक्षा से भरे थे। फलस्वरूप उस समाज की वह घिनौनी अमानवीय अभिलाषा पाकर श्रीधर अपने आप में कुण्ठित था, परेशान था। मानों वहाँ भी लोगों में प्रतिस्पर्धा थी, अपने को प्रचारित करने की महत्वाकांक्षा। इस प्रकार, श्रीधर जहाँ बाढ़-पीढ़ितों की सहायता के लिये चिंतित था, वहाँ वह इस बात के लिये भी चेष्टित था कि उस स्थल पर आये हुए विविध सेवक-दलों और संस्थाओं के व्यक्तियों में प्रतिस्पर्धा के भाव का अधिक विकास न हो, वह विष जो उस समूह के अन्तराल में भरा था, बाहर न आये। वह कोढ़ की तरह फूटे नहीं। उस स्थान पर सड़न न फैलाये।

और बाढ़ की अवस्था दिन-दिन तीव्र होती जा रही थी। पहाड़ों पर अधिक वर्षा होने के कारण प्रायः सभी दरिया चढ़ आये थे। वे कहीं-कहीं आपस में मिल गये थे, मानों उन सभी ने एकसूत्र होकर मनुष्य का संहार करना सोच लिया था। जैसे युग-युग का संचित हुआ उन नदियों के हृदय का रोष उस समय सम्मिलित रूप से फूट गया था। मनुष्य जाति का अन्त करने के लिये उस जल-सागर ने अपना निश्चय प्रगट कर दिया था।

स्थिति यह थी कि गाँव और छोटे कस्बे जो बाढ़ ग्रस्त हो चुके थे, वहाँ के समाज और पशुओं के भरण-पोषण की समस्या तो थी ही, उनमें बाढ़ के कारण जो अनेक रोग फूट आये थे, तो उनके मन की

चिंता भी उस क्षेत्र में पहुँचे सेवकों के समक्ष आ गयी थी। पीड़ितों के लिये जो सहायता प्रदान की जा रही थी, सेवकों का एक वर्ग उसीकी चोरी कर रहा था। रोटी, कपड़ा, अनाज और पैसा जो कुछ भी प्राप्त होता, लोग उसी का हरण कर लेना चाहते थे। यह एक विषम समस्या थी। मानों देश का जहर उस क्षेत्र में भी फैल गया था। अवस्था यहाँ तक बनी कि पीड़ित ही पीड़ित को ठग रहा था।

रेणु और गाँव के अन्य लोग वहाँ पहुँच गये थे। रेणु को बीमार और अनाथ बच्चों की देख-भाल का काम सौंपा गया था। श्रीधर शिविर में कम रहता। वह कभी वहाँ रहता, कभी दूर चला जाता। किन्तु कभी-कभी वह रेणु को साथ लेकर भी पीड़ित गाँव-वासियों के पास पहुँचता।

एक बार जब श्रीधर कुछ गाँवों की ओर चला, तो रेणु भी उसके साथ थी। कुछ और सहायक भी थे। एक गाँव में जब श्रीधर पहुँचा, तो यहाँ से बाढ़ का पानी उतर चुका था। लोग घरों में लौटने लगे थे। किन्तु बाढ़ का पानी आ जाने से गाँव की अवस्था खराब थी। सील भरे घरों से बदबू उठ रही थी। कुछ घरों में लाशें भी सड़ रही थीं। उसी समय श्रीधर को समाचार मिला कि एक घर में आदमी पड़ा है, वह कराह रहा है, उसे साँप ने काट खाया है। इतना सुना, तो श्रीधर साथियों सहित वहाँ पहुँच गया। उसने जाकर देखा, तो सच, वह आदमी नीला पड़ गया था। साँप का जहर उसके समस्त शरीर पर प्रभाव डाल चुका था। तभी श्रीधर के साथ आये एक आदमी ने कहा—'अरे, तुम···महेश्वर···'

सुना, तो श्रीधर ने उस ओर देखा! जानना चाहा।

साथी बोला—'राम-राम! अपने घर और समाज से सेवक बन कर चला था कि यहाँ···'

श्रीधर ने कहा—'क्या है···हाँ···।'

उससे कहा गया—'बाबू, यह स्वयंसेवक है। कई दिन से लापता

है। जरूर, यह इस घर में चोरी करने आया होगा'''यह'''।'

श्रीधर का स्वर रुक गया ! उससे एकाएक बोला नहीं गया।

किन्तु अपने प्राणों की डोर को टूटती पाकर, जैसे बरबस, उसे पकड़ते हुए महेश्वर बोला—'श्रीधर जी, मैं अपराधी हूँ ' मैं चोर'''।'

इतना सुना, तो रेणु आगे बढ़ आयी और उस महेश्वर की ओर झुककर बोली—'क्या सच तुम चोरी करने आये थे ? तुम'''!'

गाँव के चौधरी ने कहा—'पंडित जी, यह घर इस गाँव के मालदार आदमी का है। बाढ़ में लाला के दो बच्चे मर गये। पत्नी सहित अभी लाला भी नहीं लौटा है। वह शायद दूर चला गया है।'

श्रीधर ने कहा—'उस लाला को आना चाहिये। घर अकेला है, शून्य है।'

चौधरी बोला—'बाबू, लाला को क्या पता कि लोग उसकी विपत्ति का भी लाभ उठायेंगे ! रक्षक से भक्षक'''।'

किन्तु उसी समय महेश्वर चीखा, चिल्लाया—'बाबू, आप इस मकान से निकल जायें। इस घर में जहरीला साँप है। एक नहीं, कई हैं। मैं'''चोरी ना...।'

रेणु ने कहा—'इसे पीड़ा है ! डाक्टर'''।'

श्रीधर बोला—'यहाँ डाक्टर नहीं ! अब इसकी रक्षा भी नहीं।'

चौधरी ने कहा—'बाबू बाढ़ के कारण साँप भी आ गये हैं। वे सभी जहरीले हैं। घर क्या पेड़ों पर भी चढ़ गये हैं।'

किन्तु उस समय महेश्वर की स्थिति खराब थी। तड़पन थी। ऐंठन सी बार-बार उसके शरीर में उठती थी। उसी समय एकाएक उसमें जोर की पीड़ा पैदा हुई और उसके साथ ही, उसकी गर्दन, टूटने के समान एक ओर को झुक गयी।

श्रीधर ने जोर से पुकारा—महेश्वर'''भाई'''।'

एक साथी—'भाई क्या, पापी है, नराधम !'

किन्तु तुरन्त ही, श्रीधर ने पीड़ित बनकर कहा—'नहीं, नहीं,

अब महेश्वर नहीं रहा। उसका पाप भी उसके साथ चला गया। इस शरीर का सम्मान करना चाहिये।'

चौधरी ने कहा—'बाबू इसके कपड़ों की तलाशी ले लो'''कहीं'''।'

श्रीधर ने कहा—'हाँ!'

एक आदमी आगे बढ़ा और उसने महेश्वर के कपड़ों को हटाया तभी देखा कि उसकी कमर में एक कपड़ा बँधा था। उसे खोला, तो देखा, दस और पाँच के नोट पूरे दस हजार!

उसी समय आवाज उठी—'यह जाने कहाँ-कहाँ गया होगा। कितने घरों में घुसा होगा। लोग पीड़ित बनकर बाहर भागे, तो इसने लोगों के घरों को खोजना आरम्भ किया होगा।'

उस समय श्रीधर मौन था, गम्भीर बना था। रेणु भी जैसे जड़, बन गयी थी, पत्थर।

श्रीधर ने कहा—'अर्थी बनाओ और महेश्वर को दरिया में बहा दो।' उसने रुपये अपने एक साथी को सौंप दिये और वहाँ से लौट चला। वह उस दिन अन्य कई गाँवों में जाने वाला था, परन्तु उसका उत्साह नष्ट हो गया। वह अपने शिविर की तरफ चल दिया। रास्ते में नाव से दरिया पार करना था। जब वह नाव में बैठकर दरिया के मध्य में था, तो तभी, उसने साँस भरी और पास बैठी हुई रेणु की ओर देखा।

रेणु ने कहा—'कितना सुन्दर और भला आदमी लगता था, वह महेश्वर! उसकी माँ ने जाने कितने दुलार और प्यार के साथ उसका पालन-पोषण किया होगा। बाप ने भी अपने लड़के को देख, कितने अरमानों को सँजो कर रखा होगा।'

श्रीधर बोला—'हाँ, ऐसा ही किया होगा।'

किन्तु रेणु ने फिर तेज स्वर में कहा—'किन्तु ऐसी जिन्दगी का अर्थ क्या कि जहाँ विष हो, सड़ाँद हो।'

इतना सुना, तो श्रीधर विषाक्त भाव से मुस्करा दिया। उसी

अवस्था में वह बोला—'रेणु कुमारी, इस इन्सान को समझना क्या आसान है। आदमी ही आदमी के नाश का पथ प्रशस्त करता है। तुमने यह एक महेश्वर देखा, पर इस धरती पर तो कमी नहीं है ऐसे महेश्वरों की जिनका ध्येय ही यह है कि दूसरे का नाश करो, अपना उद्धार करो। तुमने जानवर को जानवर खाता देखा होगा, उसका खून भी पीता पाया होगा, पर लोग सुगमता से देख सकते हैं, कि आदमी ही आदमी का खून पीता है···उसे खाकर अपने पेट की क्षुधा शान्त करता है······।'

एकाएक रेणु ने कहा—'ओह ! सचमुच !'

श्रीधर बोला—'इस क्षेत्र में आकर मैंने यही देखा है। आदमी पीड़ित बना, बाढ़ के पानी से ग्रसित हुआ तो, लोगों ने अपनी कलुषित मनोवृति का परिचय देना भी आरम्भ कर दिया। बहुत-से लोगों ने अपनी शत्रुता भी इसी समय व्यक्त की। एक गाँव इसलिये डूब गया कि वहाँ के जमींदार को यह अच्छा नहीं लगा कि गाँव के छोटे आदमी सरकार द्वारा बधाई के पात्र बनें। वे सरकार से इनाम पायें। क्योंकि उन्होंने बन्ध लगाकर पानी से गाँव की रक्षा की थी। सचमुच, तुमने ऐसा उदाहरण नहीं सुना होगा। चतुर जमींदार ने अपना परिवार गाँव से बाहर भेज दिया। उसने अवसर पाकर एक रात में उस बाँध को तुड़वा दिया। फलस्वरूप गाँव डूब गया। अन्य प्राण चले गये।'

रेणु ने कहा—'राम-राम ! इतना क्रूर था वह जमींदार !'

श्रीधर ने कहा—'किन्तु उसकी भी कथा सुनो। जब उसका परिवार नाव में बैठकर नदी पार कर रहा था, तो तभी, बीच धार में नाव उलट गयी। उसका परिवार डूब गया। एक भी प्राणी नहीं बचा।'

रेणु ने साँस भरी और कहा—'भगवान् न्याय करता है।'

श्रीधर ने कहा—'नहीं, नहीं ! ऐसे तो भगवान् अन्याय करता है। आदमी ही आदमी के लिये ऐसा बने, यही क्या अच्छा है। यह बर्बरता और अमानुषिकता पाकर क्या इन्सान दया और धर्म का उपासक बन

सका है और आदमी सहानुभूति चाहता है, अनुभूति की माँग करता है। इसी पर यह संसार का कुटुम्ब जिन्दा है—जीवित है !'

रेणु ने स्वर पर जोर देकर कहा—'श्रीधर जी ऐसा नहीं निभता। इस धरती पर नहीं ।'

श्रीधर ने कहा—'नहीं है ।' वह बोला—'रेणुबाई, इस धरती पर सभी कुछ है। अनुभूति है, प्यार है । तुम जिस हेतु यहाँ आ सकी हो, भला वह सब क्या है ?'

उसी समय किनारा आ गया । सब उतर चले । रेणु जिस शिविर में ठहरी हुई थी, उस समय श्रीधर उधर ही चल दिया । शिविर के अन्दर जाकर वह रेणु की चारपाई पर पड़ गया । वह थक गया था । सुबह से कुछ खाया भी नहीं था । परन्तु उस समय इतना उसका शरीर नहीं थका था, जितना कि मन । अभी पीछे वह गाँव में जो कुछ देख आया, वह जैसे उसके लिये अप्रत्याशित था, नितान्त अकल्पित । इसका परिणाम यह हुआ कि श्रीधर पड़ते ही कुछ ही क्षणों में सो गया । उस अवस्था में श्रीधर देर तक सोता रहा । जब उसकी आँख खुलीं, तो उसने देखा कि रेणु का गरम चादरा उसके ऊपर पड़ा है । रेणु वहीं चारपाई के पास धरती पर चटाई बिछाये बैठी है । उस समय वह घर के लिये पत्र लिख रही है ।

जागकर श्रीधर ने कहा—'ओह, मैं बहुत सोया । जगा देना था ।'

रेणु ने कहा—'नहीं, नहीं, तुम्हें सोना था । आराम करना था ।'

श्रीधर उठकर बैठ गया और बोला—'अजीब बात थी कि वह महेश्वर मुझे स्वप्न में दिखाई दिया । वह रो रहा था, गिड़गिड़ा रहा था । अपने दोष के लिये क्षमा प्रार्थी बना था ।'

रेणु ने कहा—'यह स्वाभाविक था ।'

श्रीधर ने तभी कहा—'थक जाता हूँ । यहाँ आकर तो परेशान हो गया हूँ ।'

रेणु ने कहा—'बहुत भार ले लिया है अपने सिर पर ।'

श्रीधर ने हँसकर कहा—'पर तुम आ गयी हो, तो सहारा मिलता है। लगता है कि कोई अपना आ गया है, विश्वासी साथी मिल गया है। सच, तुमने यहाँ आकर बहुत काम दिया है। उस दिन प्रान्त का गवर्नर आया था तो तुम्हारी प्रशंसा कर रहा था।'

बलात् रेणु ने कहा—'लेकिन मुझे उससे क्या लेना है। मैं तुम्हारे बुलाने पर आयी हूँ।'

श्रीधर ने कहा—'तुम गाँव जाओगी, तो घर वाले कहेंगे कि श्रीधर ने बुलाकर लड़की का रंग-रूप भी बदल दिया, गोरी से काली बना दिया, हमारी रेणु को!'

रेणु ने हँसकर कहा—'ऊपर का रंग ही तो बदला है, मन का रंग तो नहीं।'

श्रीधर ने कहा—'मैंने यहाँ समझा है कि तुम्हारे मन का रंग नहीं बदलेगा।'

रेणु ने इतना सुना और खिलखिलाकर हँस दिया।

श्रीधर बोला—'अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखो। वैसे तुम स्वतन्त्र हो, जब चाहे लौट सकती हो। जब मन ऊबे, तो चली जाना।'

रेणु ने कहा—'अब मैं अकेली नहीं लौटूंगी! तुम्हारी माँ को दिया वचन भी पूरा करूँगी। मैं तुम्हें साथ लेकर जाऊँगी।'

सुना, तो श्रीधर स्वयं हँस दिया। वह वहाँ से उठ चला किन्तु तभी पीछे से रेणु ने टंकोर कर कहा—'अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखो। शरीर-धर्म की भी रक्षा करो।'

श्रीधर रुक गया और बोला—'वह मेरे लिये कठिन है, रेणुबाई! देखती तो हो कि मेरा काम अधिक है। मेरी इच्छा है कि यहाँ से छुट्टी पाऊँ तो किसी एकान्त में जाकर बैठूं। कुछ दिन शांति से रहूँ।'

रेणु ने कहा—'यह तुम्हारे लिये कठिन है। और इस जीवन में शांति कहाँ है?'

श्रीधर ने इतना सुना और वहाँ से चला गया।

किन्तु उसके पीछे रह गयी रेणु अपने मन में उठ आयी बात को जैसे अपूर्व अनुराग भरे हृदय से लेने लगी कि यह श्रीधर सचमुच ही अकेला है, निराधार है, साथी हीन है। और वह उसकी साथी बनना चाहकर भी नहीं बन पाती है। पास रहकर भी जैसे दूर है। वे दोनों दो शरीर बन कर भी, एक ही आत्मा के स्वरूप बनना चाहते है। पर बन नहीं पाते। उस रेणु के दुर्बल हाथ इस श्रीधर को नही पकड़ पाते···नहीं ·'

उसी समय, एक औरत आयी और बोली—'बीबीजी, दो बच्चे आये हैं। सुना है कि उनके माँ-बाप···'

रेणु ने कहा — माँ-बाप नहीं हैं, उनके ! राम-राम !' वह बोली— 'यह करुण दृश्य इस शिविर में ही देखने को मिला है। बड़ी कष्टदायक है यह कहानी !'

आगन्तुका ने कहा—'बहिन जी इस संसार में यही है। जो उन बच्चों को लाया है, वह कहता है कि इन बच्चों के माँ-बापों ने बड़े प्रयत्न किये थे, बच्चा प्राप्त करने के ! और जब प्राप्त हुये तो दो ! एक ही साथ !'

रेणु ने कहा—'वह भी अभागे ··भाग्यहीन···' वह उठ चली, उस नारी के साथ उधर गयी कि जहाँ वे बच्चे आये हुये थे। समीप जाकर रेणु ने देखा कि वे दोनों बच्चे रो रहे थे। बड़े सुकुमार, बड़े कोमल ! जाते ही रेणु ने एक बच्चे को गोद में ले लिया और उसे पुचकारा— 'मेरा लल्ला राजा है···मेरा मुनुआ···'

उसी समय श्रीधर वहाँ आया और बोला—'रेणुबाई, कल ही ये सब बच्चे शहर चले जायेंगे। सरकार से पत्र आ गया है।'

रेणु ने उस बच्चे को दिखाकर कहा—इसे देखो, तुम्हारी ओर देख रहा है। अभी रो रहा था। मैंने गोद में लिया, तो चुप हो गया।'

श्रीधर ने कहा—'भूखा होगा। तुम्हें ही अपनी माँ समझ बैठा।

किन्तु उस समय रेणु ने अपना मत नहीं दिया, उससे दिया नहीं गया।

बारह

ठाकुर कल्याणसिंह तो गाँव का जमींदार था और धनिक था, निश्चय ही, इस बात को नहीं भूल सका कि इसके समक्ष श्रीधर अधिकाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा था। श्रीधर उसके पास आया और जिस चतुराई के साथ अपनी बात कहकर, लौट गया, वह सब मानो उस ठाकुर की दृष्टि में एक नाटकीय प्रहसन था। परन्तु ठाकुर ने भी उस बात को टला दिया। वह अपने दिल में चुभते हुये काँटे को जिस तरह तोड़ना चाहता था, उसका ढंग यह नहीं था कि श्रीधर उसके घर जाये और वह वहीं पर कोई नया विवाद खड़ा कर दे। वस्तुस्थिति यह भी थी कि ठाकुर स्वयं अब कोई नयी बात उठाने के लिये तैयार नहीं था। परन्तु उसका पुत्र जगपालसिंह निश्चय ही, श्रीधर को अपना शत्रु मानता, वह उसका पतन देखना पसन्द करता था। लेकिन पिता के समान लड़का भी दूरदर्शी था और उसने जब देखा कि पास के कस्बे के और गाँव के कुछ लोग बाढ़-पीड़ितों के लिये सहायता दे रहे हैं, तो ठाकुर ने भी एक हजार रुपया दे दिया। लेकिन जब उस पिता ने यह सुना कि नए ठाकुर ने रुपया भी दिया और अपनी पुत्री को भी सेवा कार्य के हेतु भेज दिया, तो तब, जैसे उस ठाकुर को, उसके पुत्र को रेणु और श्रीधर के प्रति विरोधी प्रचार करने का और अधिक अवसर मिल गया।

उस दिन रिम-झिम फुहारें पड़ रही थीं। किसान प्रायः सभी बेकार थे। गाँव में थे। जमीदार की बैठक पर बैठे हुये किसान हुक्का पी रहे थे। विविध प्रकार की वार्ता चल रही थी।

उसी समय एक व्यक्ति ने श्रीधर की बात उठायी और कहा—'सुना है, पीड़ितों के लिये श्रीधर बहुत काम कर रहा है।'

इतना सुनना था कि जमींदार ने मुंह विचका दिया। जैसे उसने उस बात को, उपेक्षा के साथ टाल देना पसन्द किया।

किन्तु उसी समय एक दूसरे व्यक्ति ने कहा—'भाई, आम-के आम गुठलियों के दाम...हो, समझे न, लीडरी भी हाथ लगी और पैसा भी...

बात कही गयी कि जमींदार के साथ कइयों ने जोर ठहाका का मार दिया।

किन्तु पहिले किसान ने कहा—'तुम्हारा मतलब है कि...'

दूसरा बोला—'मेरा मतलब है कि श्रीधर भी ठाकुर का बेटा है। जिस तरह आज हम पैसे के पीछे दौड़ते हैं, एक-दूसरे का सिर फोड़ते हैं, तो वह श्रीधर भी...हाँ, कह देता हूँ, श्रीधर भोला नहीं है। वह जितना ऊपर से सीधा लगता है, तो अन्दर से उतना ही...'

जमींदार ने कहा—'बेशक !' वह बोला—'बल्कि मेरा तो कहना है कि श्रीधर तुमसे अधिक चालाक है। अंग्रेजी पढ़ा है। शहरों में रहा है।'

लेकिन उसी समय वहाँ पर बैठे वयस्क ठाकुर सुखवीर ने कहा—'पर यह तो बताओ, इस कल्याणसिंह की मति कैसे मारी गयी। क्या इसने भी अपनी हया-शर्म धोकर पीली...कम्बख्त ने जवान लड़की...'

जमींदार ने कहा—'भाई सुखवीरसिंह, कल्याणसिंह अभी इस गाँव में नया है। कुछ वर्ष से आया है। उसे अभी पता नहीं चला कि इस गाँव के ठाकुरों का क्या रवैया रहा है। इन्होंने जिस थाली में खाया, तो उसी में छेद किया है...समझे न, साँप को जो दूध पिलाता है, तो साँप उसी के फन मारता है। यह श्रीधर भी एक दिन ऐसा डंक मारेगा कि ठाकुर पानी भी न माँग सकेगा। अन्धेरे में बैठकर रोयेगा।'

पास बैठे उसके लड़के जगपाल ने कहा—'पिताजी वह नहीं रोयेगा,

समझते तो हो कि ठाकुर खुद ही श्रीधर के साथ अपनी लड़की को ब्याह देना चाहता है। श्रीधर ही उस लड़की रेणु को पढ़ाता है, किताबें लाकर देता है।'

सामने बैठे सुखवीर ने कहा—'राम-राम! घोर कलियुग का चरण आ गया। ऐसा भी क्या कि जाति और धर्म का दस्तूर भी भुला दिया गया। अरे, ब्याह करना है, तो कर; कौन रोकता है। पर जवान लड़की को इतनी दूर भेज दिया, तो समझो, ठाकुर की बुद्धि का दिवाला निकल गया।'

जगपाल ने कहा—'ताऊजी, फिर सेवा का भाव कैसे आयेगा?'

ताऊ रोष में भर गया। वह बोला—'यह सेवा नहीं, पाप है। बाप ही अपनी लड़की को पाप के रास्ते पर ढकेलता है।' सुखवीर ने कहा—'और ठाकुर साहब तुमने भी उस बाप से नहीं कहा। रोकना तो था। उसे इतनी बेशर्मी का जामा पहनना क्या अच्छा था।'

जमींदार उस समय अपनी मूंछे मरोड़ रहा था। जैसे वह अपने आप में समझ रहा था कि तीर निशाने पर लग रहा है। उसे स्वयं ही आगे बढ़ने के लिये रास्ता मिल रहा है अतएव, वह बोला—भाई, मैं क्या कहूँ, जब कोई सुनता नहीं, तो मेरा कहना बेकार है। देखते तो हो कि गाँव का रंग-ढंग बदल रहा है।'

सुखवीर ने कहा—'आज कोई नहीं सुनता। छोटी कौमों का तो जैसे आसमान में दिमाग चढ़ा है।'

जमींदार बोला—'जब बड़ी कौमें गुमराह होंगी, आपस में लड़ेंगी तो छोटी कौमों का ढंग भी बदल जायगा। आज यही हो रहा है।'

एक बोला—'मेरा तो कहना है कि ऐसे आदमियों का बहिष्कार कर दिया जाय! समाज में न बैठाया जाय। उनका हुक्का-पानी भी बन्द कर दिया जाय।'

जमींदार कड़वे भाव से मुस्कराया और बोला—'अब ऐसा नहीं चलेगा। हाथी के दाँत जब बाहर आ जाते हैं, तो फिर क्या उन्हें अन्दर

किया जा सकेगा—नहीं !'

मुखबीर बोला—'हमारी कमजोरी है।'

जस्मत नाम के ठाकुर ने कहा—'जमींदार की कमजोरी।'

बात सुनी, तो जमींदार कुछ लाल बन गया। वह बोला—'मेरी यही कमजोरी न कि मैं अब अपनी आबरू को रखना चाहता हूँ। मैं भी जीना चाहता हूँ।'

सुखबीर बोला—'ठाकुर, तुम पुरखों की लीक भूल रहे हो !

ठाकुर ने कहा—'मैं भी समय देखता हूँ। लाचार हूँ, आज मैं तुम्हारे खिलाफ बात कहूँ, तो कल क्या तुम्हें यहाँ देख सकूँगा ?'

जगपाल ने कहा—अब इस गाँव का ढंग बदल रहा है। हमारी जाति में फूट पड़ रही है।'

देर से मौन बैठे हुए एक युवा किसान ने कहा—'यह क्यों है ? ऐसा कारण क्या है ?'

जमींदार ने कहा—'हमारा जंगलीपन मूर्खता···।'

किन्तु उस युवक ने कहा—'नहीं, ठाकुर ! इसका कारण गरीबी है। हमारा शोषण। कहने को हम एक जाति के हैं, भाई-भाई हैं, पर बताओ तो, हगमें आत्मीयता कहाँ है !'

बात सुनते हुए, उस युवक को जमींदार ने घूरा। जैसे वह नितांत असंगत और अव्यवहारिक बात कहता था। किन्तु अपनी बात कहते हुये उस युवक का मुँह जिस तरह लाल हो गया, उसी को लक्ष्य कर, पास बैठे एक अन्य किसान ने कहा—'अरे सुरजीत, तो तुझे गुस्सा कैसे आ गया।

सुरजीत ने कहा—'बात चल रही थी, उभार खा गया गुस्सा भी···'

जमींदार ने कहा—'यह सुरजीत अभी जवान है। वास्तविकता से भी दूर है।'

इतना सुनते ही, सुरजीत तुरन्त बोला—'ठाकुर, इससे अलग वास्त-

विकता क्या है, मैं नहीं समझता ! आदमी तो पहिले रोटी देखता है । कर्म और त्याग तो पीछे आता है ।'

एक ने कहा—'बात तो ठीक कहता है ।'

किन्तु जमींदार ने कहा—'यह रोटी खाने की बात तो सभी के लिये है, जानवर के लिये भी ।'

सुरजीत ने कहा—'तो आदमी भी पहिले जानवर है, रोटी माँगता है, धर्म । अधर्म पीछे है ।'

इतना सुना कि ठाकुर जोर से हँस दिया । तदनन्तर ही उसने कहा—'बड़ा दार्शनिक बना है रे !

सुरजीत ने कहा—'नहीं वास्तविक ! वह बोला—'जब आदमी की रोटी छिनती है, तो रोता है । चीखता है । पुकार करता है ।'

लेकिन वह कौन छीनता है ?' जगपाल ने कहा ।

बरवस ही, सुरजीत ने कह दिया—तुम और कौन ? यह जमींदारी जो आज तुम्हारे पास है, क्या यों ही आ गयी ? बोलो, कितने में खरीदी गयी !'

एकाएक जगपाल ने तेज स्वर में कहा—'सुरजीत !'

सुरजीत खड़ा हो गया और बोला—'मैं तुम्हारी हाँ, में हाँ नहीं मिला सकता । मैंने समझ लिया है कि यहाँ बैठकर लोग भली बात नहीं करते, दूसरों की भलाई-बुराई की बातें करते हैं । यह कहते हुये वह तेज चाल से उस बैठक के बाहर हो गया ।

तभी जमींदार ने साँस भरी और कहा—'यह हाल है ! भलाई की बात करो, तो बुरी लगती है !

जगपाल बोला—'पिताजी ऐसे लोगों का अब पेट भर गया है । दो रोटी मिलने लगी हैं ।'

जमींदार ने कहा—'हाँ, यही तो ! इस सुरजीत का बाप गिड़-गिड़ाया माई-बाप करता था । जब जमींदारा समाप्त हुआ, तो मेरी जमींन का मालिक बन बैठा । आज मुकद्दमा कर दूँ, तो बच्चू को मालूम

पड़ जायगा ।'

जगपाल ने कहा—'मैं देखूँगा । समझूँगा ।'

जमींदार बोला—'नहीं, नहीं, अन्धा बना है, तो स्वयं ठोकर खायेगा ।'

जगपाल ने कहा—'पिताजी, इस गाँव में अब दो दल बन गये हैं । औरतों के समान वे आदमी भी, एक दूसरे की बुराई करते हैं । बुरा चाहते हैं । इन्हें जलन है कि हम क्यों अच्छा खाते हैं, पहनते हैं । यह इन्हें नहीं मालूम कि जिस जमींन पर हम खड़े हैं, उसके लिए पुरखों ने अपना खून दिया है···जानें कुरबान की हैं ।'

एक किसान ने सिर हिलाया और कहा—'बेशक ! बेशक !'

जगपाल के मन का रोष ऊपर आ गया था । उसने कहा—'और आज इन लोगों को हमारा खाना भी बुरा लगता है । जब मुसीबत पड़ती है, तो इस ओर भागते हैं, खुशामदें करते हैं ।'

जमींदार ने कहा—'अधिक न बोलो, बेटा ! दीवार के भी कान होते हैं । जब एक सुरजीत मुँह पर कहकर चला गया, तो क्या इन बैठे हुओं में से···'

सुखवीर ने कहा—'ठाकुर तुम पाँचों उँगलियों को एक समान देखते हो ।'

ठाकुर ने कहा—'भाई, मैं भी अपनी इज्जत बचाता हूँ ।'

सुखवीर मुस्कराया—'ठाकुर, साँप काटना छोड़ दे, तो छोड़ दे; पर वह फुफकारना भी छोड़ देगा तो लोग क्या, बच्चे भी पत्थर मारेंगे । उसका जीना हराम कर देंगे ।'

जमींदार ने कहा—'वह मैं समझता हूँ ।'

एक और बोला—'लगता है कि शेर बूढ़ा हो गया । मर गया । अपना स्वभाव भूल गया ।'

ठाकुर मुस्कराया—'शायद ऐसा ही हो ।'

सुखवीर ने कहा—'बात कहाँ से चली थी और कहाँ रुक गयी । बात श्रीधर की थी, उस नेताजी की···'

एक हँसा—'अब नेता महाराज जल्दी आ जायेंगे।'

जमींदार ने कहा—'कोई कहता था ?'

'हाँ श्रीधर की माँ मिली थी। कह रही थी।'

सुखवीर बोला—'श्रीधर की माँ भी खूब है, अजीब औरत है।'

जगपाल ने कहा—'साँप की मावसी है। बड़ी मीठी है। जब मिलो तो तभी कहेगी कि श्रीधर उसका कहा नहीं मानता। पर जब आता है, तो उसके आगे-पीछे फिरती है। यह बताऊँ तुम्हें, नये ठाकुर की बहू से पहिली दोस्ती श्रीधर की माँ की हुई। उसीने उस औरत के दिमाग में बात भरी कि मेरा श्रीधर हजारों में एक है···हीरा, माणिक या युवराज···'

'ही-ही-ही-ही हो-हो-हो-ही !' उस स्थान पर जोर का ठहाका लगा और उसीके बीच में जमींदार ने कहा—'औरत होशियार है। रहस्य-मयी है !'

सुखवीर ने कहा—'आप उसके पेट का मरम नहीं पा सकते। यह भी नहीं जान सकते कि उसके पास कुछ पैसा है या नहीं।'

एक ने कहा—'वह भूखी है, भिखारिन है।'

सुखवीर बोला—'बिलकुल नहीं, श्रीधर की माँ के पास पैसा है। वह उसे छिपाती है। जानती है कि यह गाँव है, अकेली है।'

आतुर बनकर जमींदार ने कहा—'तो क्या यही तय रहा कि श्रीधर और ठाकुर की लड़की···'

जगपाल ने कहा—'हाँ पिताजी ! अभी तक यही।'

'यह सम्बन्ध रुकना चाहिये। प्रयत्न करना चाहिये !' जमींदार ने कहा।

जस्मत बोला—'पर अभी तो श्रीधर ही तैयार नहीं। पिछली बार जब आया तो मैंने कहा था कि तुम विवाह नहीं करोगे ? तो बोला, 'यह नई बात नहीं, पुरानी है।' मैंने कहा—'लोग पुरानी बात भी तो करते हैं।'

उसने कहा—'मेरी ऐसी मान्यता नहीं।'

जमींदार ने कहा—'ऐसे विरागी और साधु मैंने बहुत देखे हैं। उनका अन्त भी देखा है। तुम देखना कि एक दिन…'

उसी समय जगराम हाथ में लाठी लिये वहाँ आया। उसने जाते ही कहा—'क्यों ठाकुर; यहाँ आदमियों के बैठने का मतलब यह है कि दूसरों की बहू-बेटियों पर चर्चा करें।'

जमींदार जैसे चकित बन गया। वह बोला—'अरे, जगराम भाई…'

जगराम ने कहा—'देखिये, आप बुजुर्ग हैं। गाँव के जमींदार हैं। लेकिन मुझे यह कहते अच्छा नहीं लगता कि आप…'

जगपाल ने कहा—'भैया, यह बात झूठी है। बात चली थी कि ठाकुर की लड़की रेणुबाई भी सेवा-क्षेत्र में गयी है। उस सुरजीत ने कहा होगा। वह ही यहाँ से उठकर गया है। वह जो कुछ यहाँ कह गया, वही कल को तुमसे भी कहने वाला है। उसे यह अच्छा नहीं लगता कि क्यों दूसरा पेट भरकर रोटी खा रहा है। पर तुम अच्छी तरह समझते हो, कि इस गाँव की जमीन खरीदने के लिये जो रुपया तुमने लगाया, वह कहीं से पड़ा नहीं मिल गया। उसके लिये प्रयत्न किया गया…खून-पसीना एक…'

सुखवीर बोला—'हाँ, ठाकुर! बस यही बात थी। सुरजीत अच्छा आदमी नहीं है। वह भी उन लोगों में से एक है कि जो गाँव में पार्टीबाजी पैदा करना चाहते हैं।'

जगराम बोला—'ठाकुर, हमें इससे क्या मतलब! जब हम दूसरों का जिकर नहीं करते, तो फिर हमारा नाम क्यों लिया जाता है। यह बुरा है। बस. मुझे यही कहना है।' और वह तभी उल्टे पैरों लौट गया।

किन्तु जगराम के जाते ही, जमींदार ने कहा—'ये ठाकुर भी मजागों में है। लाठी लेकर आते हैं। यह नहीं जानते कि यह…'।

जगपाल ने कहा—'मैं इसका भी इलाज करूँगा। ये दोनों बाप-बेटे

भी मूड़ पकड़ कर न रोये, तो मेरा नाम जगपाल से कुछ और रख देना…'

जमींदार ने लड़के को घूरा और कहा—'चुप, रे ! अधिक बोलता है। काम की बात कम करता है। और यह नहीं जानता कि बन्दूक की गोली इतना काम नहीं करती, जितनी कि बात।

जगपाल ने बात सुनी, तो उसने सिर झुका दिया। उसने फिर अपना मत नहीं दिया।

तेरह

रेणु को देर से इस बात का पता था कि उसके एक समीपवर्ती सम्बन्धी उस प्रान्त में सरकार के एक विशिष्ट अधिकारी थे। एक बार जब श्रीधर अपने शिविर से दूर एक बाढ़-पीड़ित गाँव में गया था, तो तभी नगर से सरकार के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का वहाँ आगमन हुआ, श्रीधर की अनुपस्थिति में उनके स्वागत का भार रेणु को सहन करना पड़ा। उसे बताया गया कि प्रान्त के एक डिप्टी मिनिस्टर आ रहे हैं। लेकिन विशिष्ट अधिकारी जब वहाँ आया, रेणु ने आगे बढ़कर स्वागत किया, तो तभी, उस डिप्टी मिनिस्टर ने एकाएक कहा—रेणु···'

बलात् रेणु के मुँह से भी निकला—'कान्त···'

रेणु द्वारा कान्त के गले में माला पड़ गयी। वह बैठ गया। तभी उसने रेणु से कहा—'मुझे आश्चर्य है कि तुम यहाँ हो, इस प्रकार हो! इस प्रान्त में सर्वत्र तुम्हारी चर्चा है।'

रेणु ने बात सुनी और सिर झुका दिया। उससे एकाएक बोला नहीं गया।

कान्त ने कहा—'मुझे यहाँ आज से पूर्व ही आना था। परन्तु अवसर नहीं मिल रहा था। वह श्रीधर बाबू···'

रेणु ने कहा—'वे एक गाँव की सहायतार्थ गये हैं।'

कान्त ने कहा—'परन्तु उन्हें पता तो होगा कि मैं आ रहा हूँ। उन्हें मिलना था। मुझे यहाँ का विस्तृत ब्यौरा देना था। और तभी वह रेणु की ओर देखकर बोला—'और तुम, ओह, बहुत बदल गयी हो! अब तुम!···'

रेणु ने कहा—'और आप भी तो···'

कान्त ने कहा—'बहुत दिन हो गये कि तुम्हारे घर गया था। तब

तुम भी छोटी थीं। हम दोनों खेलते थे। उस दरिया की रेत में बालू के घोंसले बनाते थे।'

उसी समय उत्सुक बनकर रेणु ने पूछा—'भाभी···?'

अरे, अभी मैंने विवाह नहीं किया, रेणुबाई! कालेज से निकला तो देश से बाहर चला गया। वहाँ पढ़ता रहा। और देश में आया तो जन-आन्दोलन में लग गया।'

रेणु ने कहा—'बधाई आपको!'

कान्त ने कहा—'नहीं, नहीं, बधाई तुमको देनी है। तुमने इस क्षेत्र में आकर बहुत काम किया है। मैंने सुना है।'

रेणु ने कहा—'यह परिश्रम श्रीधर बाबू का है। उन्होंने ही मुझे उद्‌बोधन प्रदान किया है।'

कान्त ने कहा—'श्रीधर भी हमारे प्रान्त के हैं। सजग व्यक्ति हैं।'

'वे कर्मठ हैं, कर्म करना ही अपना ध्येय मानते हैं।'

उसी समय कान्त ने शिविर की सभी व्यवस्था को देखा। उसका आगमन हुआ, तो वहाँ पुलिस और कार्य-कर्ताओं का एक बड़ा दल आकर एकत्र हो गया था। कान्त जिधर जाता, तो उधर ही लोगों की दृष्टि जाती थी। मानो वह देवता था, समाज और देश का सूत्रधार। अनेक व्यवस्थाओं को देख, जब कान्त लौटने के लिये प्रस्तुत हुआ, तो उसने रेणु को लक्ष्य किया और कहा—'हम देर के बाद एक-दूसरे के समक्ष आये हैं, अतएव, अब आगे हमें मिलना ही होगा। मेरा निमंत्रण है कि तुम नगर में आओ।'

रेणु ने कहा—'देखिये···'

कान्त ने कहा—'नहीं, नहीं इतना तुम्हें करना होगा, रेणुबाई! मैं अपनी गाड़ी भेज दूँगा। इसी सप्ताह।'

मानो आतुर बनकर रेणु ने कहा—'लेकिन, मेरा यह काम···यह भार···'

'ओह, यह तो चलेगा, रेणुबाई श्रीधर समझदार कार्यकर्ता है।'

रेणु ने कहा—'उनके ऊपर बहुत बड़ा भार है।'

'हाँ, हाँ, मैं समझता हूँ। इसलिये सरकारी क्षेत्र में उनकी चर्चा है, मैं पहुँचूँगा तो माताजी से कहूँगा।'

रेणु ने कहा—'उन्हें मेरा प्रणाम कहियेगा।'

'जरूर, जरूर ! परन्तु तुम्हें मेरी बात की भी रक्षा करनी होगी। नगर में आना होगा।'

रेणु ने सुना और सहज से मुस्करा दिया।

जब कान्त गाड़ी में बैठ गया तो उसने रेणु को सम्बोधित किया और कहा—'श्रीधर बाबू को मिलना था। मैं आ रहा हूँ, इसका उन्हें पता था।'

रेणु बोली—'परन्तु उनका स्वभाव ही और है। वे···'

कान्त ने कहा—'यह गलत है, रेणुबाई। नितान्त अव्यवहार्य-सरकार इस शिविर को रुपया और सामान दे रही है। उसका ठीक उपयोग हो, यह भी सरकार चाहती है। मैंने सुना है कि यहाँ अव्यवस्था है। असेम्बली में लोगों ने सवाल उठाया है। इसीलिये श्रीधर जी से बात करना आवश्यक था।'

रेणु ने कहा—'श्रीधरजी नियन्त्रक नहीं, सेवक हैं। उनकी सहायता का लोग दुरुपयोग करते हैं।'

कान्त ने कहा—'परन्तु जो इस कैम्प का मुखिया है, उत्तरदायित्व उसका है। जनता उसीसे पूछती है।' यह कहते हुए उसने ड्राइवर को गाड़ी चलाने का आदेश दिया। वह तभी रेणु की ओर देखकर मुस्कराया और बोला—'परन्तु मुझे यहाँ आकर यह लाभ अधिक हुआ कि तुम···हाँ, मैं बचपन की साथिन बनी रेणुबाई को देख सका।'

रेणु ने कहा—'यह लाभ मुझे भी हुआ।'

गाड़ी चल पड़ी। रेणु ने हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए कान्त को विदा कर दिया।

वह अपने शिविर में पहुँच गयी। चारपाई पर गिर पड़ी। क्योंकि

जब से कांत आया, तो वह आराम से नहीं बैठ सकी थी ! उसके साथ ही, उस विशाल क्षेत्र में घूमी थी। उसे सभी स्थान दिखा रही थी। तभी चारपाई पर पड़े हुए, एकाएक रेणु के सामने वह बचपन का कान्त आ गया, जो बड़ा ही नटखट, लड़ाकू, पक्का खिलाड़ी। गाँव के पास बहती नदी की रेती में दोनों खेलते थे और रेत में घर बनाते थे। फिर आपस में लड़ पड़ते थे।

उस अवस्था में ही, उसने कहा—अब इतना बड़ा आदमी बन गया, यह कान्त डिप्टी मिनिस्टर हो गया। कल को मिनिस्टर बन जायगा। यहाँ आया तो लोग उसीके पीछे डोलते रहे। जैसे उसे देवता या देश का सम्माननीय व्यक्ति मानते रहे। उसने अपने आप कहा—कान्त बात करता था, तो सलीके से ! जैसे मुँह से फूल झरते हों। बात-बात में हँसता था, मुस्कराता था। वह बोली, कान्त अब बड़ा आदमी बन गया है। कितनी शानदार मोटर थी। उसका अर्दली भी कितनी बढ़िया पोशाक पहिने हुए था। वैसे सभी कुछ अजीब था। अनोखा था।

रेणु ने करवट बदली और आँख खोलकर कहा—और अब यही कान्त मुझे नगर में बुलाता है अपनी मोटर भेज देगा। भला क्यों··· हाँ···

उसी समय तम्बू के द्वार पर एकाएक श्रीधर आ खड़ा हुआ। वह थका था। प्रातः से भूखा था, क्लान्त बना था। तम्बू के दरवाजे पर खड़े होकर ही, उसने पुकारा—रेणु बाई।'

रेणु उठ खड़ी हुई और बहुत आतुर स्वर में बोली—'आप की मरजी···

श्रीधर उस नये स्वर और सम्बोधन के 'आप की मरजी' को सुन, तनिक मुस्कराया। वह कुछ आगे बढ़ कर बोला—'अजीब बात थी कि प्रान्त का डिप्टी मिनिस्टर आया और मैं बाहर चला गया। क्या कहता था ? कान्त था !"

रेणु ने कहा—'हाँ, कान्त !'

श्रीधर ने कहा—'अच्छा युवक है। मिनिस्टरों और डिप्टी मिनिस्टरों में यह कान्त ही कम आयु का है। कर्मण्य है। बड़ी शीघ्रता से, अल्प समय में तरक्की कर सका है।'

रेणु बोली—'परन्तु आपको भी रहना था।'

श्रीधर बोला—'हाँ मुझे भी रहना था। पर मेरा तो इससे भी जरूरी काम था।' उसने कहा—'रेणुदेवी, जिस गाँव में मैं गया, वहाँ बीमारी फैल गयी है। आज जब वहाँ पहुँचा तो कई मौतें हो गयी थीं। तुम चलतीं तो देखतीं कि वहाँ की कैसी दुर्व्यवस्था है! जीवन की सड़ांद में पड़ा मानव किस तरह कराह रहा है। तड़फ रहा है।'

रेणु ने साँस भरी और कहा—'यहाँ तो यही सर्वत्र दीखता है। यहाँ क्या आदमी हँसता मिलता है।'

अपने स्वर पर जोर देकर श्रीधर ने कहा—'आदमी कैसे हँसे! परिस्थितियाँ रोने को विवश करती हैं। वेदना जब आत्मा में ऐंठन पैदा करती है, तो बरबस इस इन्सान के मुँह से चीख निकलती है।'

तभी रेणु ने कहा—'और पता है तुम्हें, कान्त हमारा निकट का सम्बन्धी है। बचपन में हमारे गाँव जा चुका है। मेरे साथ खेला है।'

श्रीधर ने माथे में बल डाले और कुछ याद करने के ढंग से कहा—'हाँ एक बार तुमने उल्लेख किया था। तो क्या यह वही कान्त ··'

उत्साह भाव में रेणु ने कहा—'हाँ यह वही है। आया तो उसने मुझे पहिले पहचाना तब मैंने भी उसे पहचान लिया।'

प्रसन्न भाव में श्रीधर बोला—'तो खूब! तुम्हारा एक सम्बन्धी डिप्टी मिनिस्टर है, यह सुनना, प्रसन्नता की बात है।'

रेणु ने कहा—'उसने मुझे बुलाया है। अपनी गाड़ी भेजने को कह गया है!'

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं! सम्बन्धियों के पास जाना क्या बुरा है। लोग गैरों से मिलते हैं, तो अपनों से दूर रहा जाता है?'

व्यस्त भाव में रेणु ने कहा—'परन्तु मेरा काम···यहाँ का काम···'

'ओह, तुम जाओगी, तो क्या काम रुका रहेगा। यह तो चलेगा। मैं न रहूँ, तो तब भी चलेगा।' वह बोला—'रेणुबाई, संसार का क्रम सदा ही अवाध्य होकर चलता है। कोई काम नहीं रुकता। एक जाता है, तो उसका अभाव दूर हो जाता है।'

रेणु ने कहा—'भाग्य की बात है कि कान्त···'

श्रीधर ने उसकी बात का मर्म समझ लिया, अतएव वह तुरन्त ही बीच में बात रोककर बोला—'रेणुबाई इस संसार में सभी कुछ देखा जा सकता है। जब हवा चलती है, तो उसके सहारे आदमी पल मारते में कहीं से कहीं पहुँच जाता है।'

रेणु ने कहा—'फिर साधना क्या है, आदमी का कर्म!'

श्रीधर ने कहा—'वह भी है। उसका महत्व है। यदि कहूँ तो उसी में स्थायित्व है। हवा के सहारे ऊपर जाने वाला तो, रुख बदलते ही, नीचे गिर पड़ता है। फिर सभी कुछ समाप्त हो जाता है। एक शब्द में कहूँ, तो उसका पतन हो जाता है। क्योंकि उसके पास अपना कुछ नहीं। निरालम्ब बनकर, भला वह कब तक जीवित रहता है!' यह कहते हुए, श्रीधर ने साँस भरी और कहा—'अब भूख तेज लगी है। आँतें पीड़ा पा रही हैं।'

जैसे चौंककर रेणु ने कहा—'खाया नहीं······अभी तक नहीं।'

श्रीधर ने कहा—'आज कुछ नहीं मिला। एक गाँव में गया, तो फिर अन्यत्र भी जाना पड़ गया।'

रेणु ने कहा—'ओह, सुबह गये थे कि अब सन्ध्या का छः बज गया है।'

श्रीधर रूखे भाव से मुस्करा दिया और बोला—'इस रास्ते पर चलकर यही प्राप्त होता है। यही पुरस्कार मिलता है!'

रेणु ने कहा—'आप बैठें, मैं भोजन लाती हूँ।'

तभी श्रीधर ने कहा—यह 'आप' आज मैं क्या सुन रहा हूँ। अच्छा

मैं समझा कान्त आया, तो उसे कहना पड़ा होगा। वह कितनी देर रहा। कुछ कह गया। मैंने सुना है कि असेम्बली में यहाँ की अव्यस्था पर सवाल उठा था।'

रेणु ने कहा—'हाँ कान्त कहता था।'

श्रीधर बोला—'असेम्बली में सवाल मैंने उठवाया था। इसका कारण था।' उसने कहा—'इन बाढ़-पीड़ितों के नाम पर सरकार जो रुपया खर्च कर रही है और ठेकेदारों के द्वारा सामान भिजवाया जा रहा है, तो वे ठेकेदार और व्यापारी स्वयं खाते हैं और सरकार के अधिकारियों को खिलाते हैं। मैं अनुभव करता हूँ कि यहाँ जो आता रहा है, वह सड़े अनाज का है। कपड़ा भी वह आ रहा है, जो बेकार पड़ा था।'

रेणु ने कहा—'अजीब समस्या है! लोग यहाँ भी व्यवसाय और मुनाफे की बात करते हैं।'

तभी श्रीधर ने विषम बनकर कहा—'इस देश के व्यवसायी मरे हुए इन्सान का माँस भी बेच सकते हैं। सुना नहीं, इस देश में गाय को अपनी माता मानते हैं, पूजते हैं, पर ऐसे ही समुदाय ने युद्ध के समय गऊ के माँस से करोड़ों रुपया उपार्जित किया था। वह माँस विदेशों को भेजा था। इस देश का गऊ-धन उन्होंने छुरी की तेज धार के नीचे कटवा दिया था।'

रेणु बोली—'राम-राम!'

श्रीधर ने कहा—'मेरा मत है कि इस देश का आदमी कभी भी अपने कर्म के प्रति जागरूक नहीं रहा। यहाँ का आध्यात्मवाद सदा ही लोगों की वाणी पर और पुस्तकों में बन्द रहा। व्यावहारिक मान्यता का पद उसे कभी नहीं प्राप्त हुआ।'

रेणु ने कहा—'ऐसा ही सर्वत्र हुआ।'

श्रीधर ने कहा—निःसन्देह! धर्म और जाति के नाम पर इस देश का समाज, प्रत्येक देश का समाज जन साधारण को कटवाता रहा''

उसका गोश्त···उसका रुधिर···'

उसी समय रेणु ने एक आदमी को श्रीधर के लिये भोजन लाने का आदेश दिया। उसने श्रीधर से कहा—'आप आराम करें।'

श्रीधर मुस्करा दिया—'आराम मेरे भाग्य में नहीं है, रेणुबाई! ऐसे तो मेरा जीवन भी अधिक नहीं है। ऐसी मेरी चाह भी नहीं!'

रेणु ने कहा—'क्यों, क्यों! क्या मरण अच्छा है!'

उदास भाव में श्रीधर ने कहा—'मरना न भी अच्छा हो पर जीवन भी कोई हितकर नहीं! वैसे ऐसे समाज में रहना क्या अच्छा है···चोर, डाकू, लुटेरे···। वह बोला—'इसीसे कहता हूँ, तुम यहाँ अधिक न रहना। कान्त ने बुलाया है, तो चली जाना। जाओगी, तो देखना कि उसका कैसा ठाठ-बाट हैं···कितना शानदार बँगला···हाँ, लोग पिछले राजाओं को कोसते हैं, उन्हें क्रूर और दम्भी बताते हैं, पर ये आज के नेता कि जो जनता का विश्वास और वोट पाकर, सरकार की कुर्सियों पर जाकर बैठते हैं, किसी राजा, महाराजा से कम नहीं, ये भी पूरे नवाब-जादे बनकर ऐश्वर्य और विलास का जीवन व्यतीत करते हैं·'

रेणु ने कहा—'यह बुरा है। अत्याचार है। जनता के साथ विश्वासघात!'

उदास स्वर में श्रीधर ने कहा—'जो हो, पर आज यही है। कल क्या हो, इसे कौन जानता है।'

चौदह

लेकिन उस श्रीधर के समान, रामनगर गाँव के लोग जीवन के प्रति इस प्रकार नहीं सोचते थे। वह छोटा-सा समाज, मानो अपनी सीमा के पार, सदा ही यह जानने के लिये उत्सुक रहा, कि आखिर वह क्या है···क्यों है! मानो जीवन-निर्वाह के साथ, इतना सोचना भी उस समाज का स्वभाव बन गया था। कहा जा सकता था कि वह गँवार और मूर्खों का समाज था। परन्तु समय के परिवर्तित रूप के साथ, वह गाँव भी बदल रहा था। लोग जहाँ आर्थिक दासता के शिकार थे, वहाँ उस आर्थिक विकास के प्रति पहिले से अधिक चेष्टित भी बन गये थे। समाज में पढ़े-लिखे लड़के अधिक हो गये थे। लड़कियाँ भी पढ़ने लगी थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि समूचे देश के समान उस गाँव के समाज की दृष्टि भी बदल गयी थी। अभिरुचि में परिवर्तन आ गया था। जमींदार ने जब अपनी धरती में ट्रैक्टर चलाना आरम्भ किया, तो वह दूसरों की जमीन में भी चलने लगा था। किसी समय गाँव की स्त्रियाँ के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर खेत में काम करतीं, गोबर पाथतीं, चक्की चलातीं, पर अब वह काम प्रायः समाप्त हो गया था। घर की चक्की का काम बाहर की पनचक्की ने ले लिया था। चर्खा कातना बन्द हो गया। इस प्रकार पुरुष भी, खेत के लिये कुयें से पानी नहीं निकालता, हरट चलाने लगा। सरकार के कुयें से पानी लेने लगा। जानवरों के लिये चारा काटना भी बन्द हो गया। वह काम कुट्टी की मशीन ने ले लिया।

यों गाँव का किसान अब पहिले की तरह व्यस्त नहीं रहता। नारी समाज भी नहीं। जिसका परिणाम यह हुआ कि आदमी जब बेकार

रहता तो परस्पर पड़ौसी के प्रति बात करता। उसके दोष निकालता। यही स्त्री-समाज का हाल था।

रेणु को गाँव से गये, लगभग दो मास हो गये थे। जो अन्य व्यक्ति नामनगर से गये थे, वे लौट चुके थे। इसका परिणाम यह हुआ कि गाँव का वह पुरुष-समाज और स्त्री-समाज, अनायास ही रेणु के चरित्र की आलोचना करता। जिसके प्रसंग में श्रीधर का भी नाम आता और रेणु के माता-पिता का भी उल्लेख किया जाता। यह चर्चा जब अधिक चली तो वह दो-चार आदमियों के मध्य की बात नहीं रह गयी। यह चर्चा खेत पर चलती, चलते कुयें पर चलती, गाँव की चौपाल में और जमींदार की बैठक में चलती। जिसका फल यह हुआ कि बात रेणु की माँ के कानों में पड़ी और पिता तथा भाई को भी सुनाई दी। किन्तु वे सब इस विषय में अलग-अलग ढंग से सोचते, वे लोगों को मूर्ख और ईर्षालु मानते। क्योंकि बाढ़-पीड़ित क्षेत्र से जो समाचार आ रहे थे, अखबारों में निकलते थे तो उस घर के सभी प्राणी यह देखकर प्रसन्न थे कि उनकी लड़की का फोटो अखबार में छपता है, सरकार के अधिकारियों द्वारा प्रशंसात्मक ढंग से उस रेणु का उल्लेख किया जाता है।

किन्तु एक दिन जब एक घर पर कोई उत्सव था, तो ठकुरानी और उसकी बहू भी वहाँ गयी थी। वह औरतों का समाज था, जहाँ अधिक विषयों पर वार्तालाप चलना स्वाभाविक था। उसी समय एक नारी ने ठकुरानी को सम्बोधित किया और कहा—'रेणु अभी नहीं आयी। कब आयेगी ? उसका ब्याह···?'

तो उसी समय जैसे अवसर पाकर एक वयस्का नारी ने ताने के के स्वर में कहा—'अरी, हो जायेगा ब्याह ! जल्दी क्या है ! और वह बोली—'अब ब्याह की बात को कौन पूछता है ! यह रस्म ··'

ठकुरानी ने कहा—क्यों, पूछा कैसे नहीं जाता !'

इतना सुनना था कि उस नारी ने तपाक से कहा—'बहू क्या जाने अब तो जमाने में यही हो रहा है। लड़की और लड़के की इच्छा को ही

महत्व दिया जाता है। माँ-बाप को कौन पूछता है।'

उसी समय एक अन्य स्त्री ने कहा—'हमें तो ऐसा इसी गाँव में दिखाई देता है, भला हमारे गाँव में ···'

दूसरी ने कहा—'यहाँ भी अब चल पड़ा। लोगों ने आँखों पर पट्टी बाँध ली है, नहीं तो अपनी जवान लड़की को क्या ऐसे, इतनी दूर भेजा जाता है···राम-राम!'

इतनी बात सुननी थी कि ठकुरानी का माथा तमक गया। जैसे उन औरतों के मुँह से नकाब उतर गया। ठकुरानी ने उन्हें स्पष्ट रूप से देख लिया। तभी उसने कहा—'जो पाप की बात सोचते हैं, उनके लिये पाप है·· साँच को आँच क्या!'

तभी उस वृद्धा ने कहा—'ठकुराइन, मुझे दिखता है, तुमने अपनी बुद्धि को बाजार में बेंच खाया है। सुनाई नहीं पड़ता कि गाँव में उसी की चर्चा है। तुम्हारी लड़की का नाम अब मर्दों की जबान पर भी आता है।'

ठकुराइन ने उमककर कहा—'आया करे! हमें डर क्या!'

'हाँ, हाँ, इन्हें क्या डर जी! लड़की इनकी। और वह श्रीधर···'

एक बोली—'वह श्रीधर भी मीठा साँप है! जहरीला नाग!'

तभी एक बोली—'अजी उसका क्या दोष! मर्द-मानुस है। शेर के पास शिकार खुद पहुँच जाये, तो वह खायेगा ही, छोड़ नहीं देगा!'

उसी समय ठकुराइन की बहू ने कहा—'अम्मा जी चलो। इन औरतों का दिमाग खराब हो गया है। दूसरों के घरों की बात करते ही इन्हें मजा आता है!'

जिस औरत ने अपनी अन्तिम बात कही थी, वही बोली—'हाँ, बहूरानी! हमारा तो एक ही काम रह गया है। पर समझती हो यह गाँव है, शहर नहीं है कि जहाँ कुछ हो, तो किसी को पता नहीं चलता। कोई बुरे को बुरा नहीं कहता, अच्छे को अच्छा नहीं। पर यह तो गाँव है, गाँव है तो क्या; एक ही कुनबा-गोठा है। सभी की एक जाति बिरा-

दरी है। इसलिये यहाँ सभी-कुछ साफ दिखाई दे जाता है। बुरे को बुरा कहना ही पड़ता है। हम सभी का स्वार्थ···'

ठकुराइन की बहू ने कहा—'तभी तो यहाँ झगड़े हैं, वैर है। फूट है आपस में!'

वह औरत बोली—'यह भी कोई बड़े घरों की मेहरबानी है। जिनके पास खाने से बचता है, उन्हीं को आसमान की ओर देखना सूझता है। उन्हीं में एक तुम '

बहू बोली—'हम किसीकी बात नहीं करतीं।'

एक बोली 'करोगी कैसे! पहिले अपना मुंह तो साफ कर लो। अब तुम गाँव की बहू-बेटियों को, जवान लड़कों को ऐसा रास्ता बताने लगोगी, तो फिर '

उसी समय एक अन्य स्त्री बोली—'ठकुराइन, बुरा न मानना, तुमने जैसा किया, ऐसा तो हमने न कहीं देखा, न सुना। तुम श्रीधर से लड़की का ब्याह कर देतीं, तो कोई भी जबान पर बात न लाता।'

ठकुराइन ने कहा—जब समय आयेगा, तभी तो ब्याह होगा। लड़का तो मिले···'

एक स्त्री ने आगे बढ़कर कहा—'तो क्या श्रीधर से ब्याह नहीं होगा। हे राम!' उसने अपने माथे में हाथ मारा और कहा—'अरी ठकुराइन, अभी तो गाँव समझता था कि तुमने उस श्रीधर को ही लड़की को चुन लिया है पर अब कहती हो कि···'

वृद्धा ने कहा—'एक शुद न दो शुद! जवान लड़की का ब्याह हुआ नहीं, लड़का मिला नहीं और उसे भेज दिया, घर से दूर पराये पास···राम राम!' वह बोली—'अरी अक्लमन्द, एक तो बुद्धि की बात करो तनिक तो समाज और धर्म की रीत का पालन करो।'

उसी समय एक पढ़ी-लिखी लड़की ने कहा—'अरी, दादी! तू भी क्या बात करने चली है। इतनी उमर पाकर भी अन्धेरे में पड़ी है।

और यह नहीं समझती कि आजकल समझ-बूझ कर सौदा किया जाता है...हाँ !' और उसने इतना कहते ही खिलखिला कर हँस दिया।'

ठकुराइन उठ खड़ी हुई और बहू को साथ ले उस घर से चल पड़ी।

तभी एक औरत ने उसकी पीठ पर ही कहा—'यह भी मूंड़ पकड़ कर न रोयी तो मेरा नाम बदल देना।'

दूसरी ने कहा—'आँखों में शर्म नहीं।'

तीसरी ने कहा—'चार पैसे आ गये हैं न घर में, तो धर्म नहीं, रीति नहीं !'

'माँ जी, खाक पड़े ऐसे पैसों पर ! इन लोगों ने गाँव की रिवाज बिगाड़ दी।'

किन्तु ठकुराइन वहाँ नहीं खड़ी रही। वह घर पहुँच गयी। जितना रास्ता उसने पार किया, जैसे उसमें भी उसे बड़ी कठिनाई हुई। उसकी आँखों में अन्धेरा छा गया। पैरों में कम्पन। घर पर गयी, तो धम्म से चारपाई पर पड़ गयी। तभी बहू ने पास जाकर कहा—'अम्माजी, बीबीजी को बुला लो।'

ठकुराइन ने कहा—'अरी, मैं भेज ही कब रही थी। कम्बख्त को खुद ही इच्छा थी।'

बहू ने कहा—'अम्माजी, औरत के हाथ पकड़े जाते हैं, कहने की जबान नहीं। आज जो कुछ औरतों ने कहा, मुझे तो सुनकर भी शर्म आयी। मेरे मन में तो आया कि उस शारदा का मुँह कुचल देती। कैसी बक-बक कर रही थी। और वह बुढ़िया रामदेई...चुड़ैल कहीं की। जाने कब से पेट में बात लिये थी। जो न कहने की बात थी, वह भी कह बैठी।'

ठकुराइन ने साँस भरी और छोड़ दी। वह ऊपर नीले आसमान की ओर देखने लगी।

बहू ने कहा—'तुम्हारे बेटा ने भी मुझसे एक दिन कहा था कि लोग···'

ठकुराइन ने कहा—'अरी, उस समय बेटे की भी अक्ल मारी गयी। उसीने अपनी बहिन भेज दी। भला उस समय न भेजने की बात कहता, तो क्या रेणु जा सकती थी। तब वह जाने की बात कहती, तो मै जबान काट लेती।'

बहू ने कहा—'अम्मा, तुम्हारे बेटा तो तैयार नहीं थे। मुझसे कहते थे। पर पिताजी और तुम्हारे डर से चुप रह गये।'

'हाँ, यही तो! अब सुनो लोगों की बातें।'

बहू ने कहा—'कल पत्र तो आया था बीबीजी का। आने को लिखा, और क्या···'

ठकुराइन बोली—'आने की बात नहीं लिखी। जगराम ने तो पत्र पढ़ा था। उसी ने बताया कि वह कान्त···'

बहू बोली—'तुम्हारे लड़के कहते थे कि कान्त हमारा सम्बन्धी है। अब बड़ा आदमी है।'

माँ ने कहा—'हाँ, बहू! भाग्य की बात है। बाप तो जन्म भर खेत गोंड़ता रहा। कन्जूसी से पैसा जोड़ता था। न खाता था न खाने देता था।'

बहू बोली—'पर लड़का तो अच्छा निकल गया। घर में उजाला कर दिया उसने।'

ठकुराइन ने कहा—'पर देखो, कान्त इतना पढ़ा, इतना बड़ा बना, पर यहाँ एक बार भी नहीं आया। उसकी माँ ने भी आने का नाम नही लिया। जब घर में कुछ नहीं था, तो आती थी। सम्बन्ध की बात करती थी। जब चार दिन रहकर जाती, तो जाने क्या-क्या सामान साथ ले जाती।'

बहू बोली—'इस दुनिया का ऐसा ही दस्तूर है, अम्माजी! बनी के सब साथी है, बिगड़ी का कोई नही।'

ठकुराइन ने चिढ़कर कहा—'हम क्या माँगने जाते हैं। बड़े बने, तो अपने लिये। वह अब भी आयें, तो कुछ लेकर जायेंगे, देकर नहीं।'

बहू ने कहा—'तुम्हारे बेटा कहते थे कि मैं उस कान्त के पास जाऊँगा, मिलूंगा।'

ठाकुराइन ने कहा—'हाँ, वह जाना चाहे, तो जाये। रेणु को भी ले जाये। उसने लिखा है न कि कान्त उसे बुलाना चाहता है। उसके पास आ चुका है, बाढ़-पीड़ितों को कान्त ही सरकार से रुपया दिलवा रहा है। वह कोई बड़ा हाकिम है।'

उस समय ठाकुर घर में आया, तो बहू ने घूंघट कर लिया। ठकुराइन को चारपाई पर पड़ी देख, ठाकुर ने हँसकर कहा—'तो सास-बहू में क्या बात हो रही है। कोई नई बात!'

ठकुराइन उठकर बैठ गयी और बोली—'नयी बात क्या, तुमने मेरा चार औरतों में बैठना भी मुश्किल कर दिया। उस रेणु को वहाँ क्या भेजा जैसे मेरा मुंह काला कर दिया गया।'

बात सुनी, तो ठाकुर साँस भर कर उसी चारपाई पर बैठ गया। उसने पास खड़ी घूंघट काढ़े बहू की ओर देखा और बोला—'बात तो ठीक है, तुम्हारी! कल हरचन्दा चौधरी भी मुझसे यही कह रहा था कि ठाकुर तुमने यह अक्लमन्दी का काम नहीं किया।'

ठकुराइन ने कहा—'तो तुमने क्या कहा?'

ठाकुर बोला—'मैंने कह दिया कि भाई, उस समय लड़की की इच्छा को देख, मेरे मन में भी यही आ गया। मुझे भी दूसरे आदमियों की तरह जोश आ गया कि इन्सान दुःखी है, परेशान है, तो इस घर से भी सहयोग मिलना चाहिये।'

ठकुराइन ने कहा—'गाँव की औरतों में यही चर्चा है।'

ठाकुर ने कहा—'औरतें ठीक कहती हैं।'

ठकुराइन ने जैसे कुण्ठित बनकर कहा—'जब औरतें ठीक कहती

हैं, आदमी ठीक कहते हैं, तो फिर उसे बुलाया क्यों नहीं गय ।'

ठाकुर ने मूंछों पर बल देते हुए कहा—'हाँ, अब यही सोचा है। मेरी इच्छा है कि जगराम चला जाये। वह कान्त से मिलना भी चाहता है। वह तो अब बड़ा आदमी बन गया, इसलिये इस गाँव में कैसे आयेगा, पर अब हमी को उसके पास जाना पड़ेगा। अपना मतलब जो ठहरा...'

ठकुराइन ने कहा—'मतलब क्या ?'

ठाकुर ने उसकी ओर देखा और कहा—जगराम कहता था कि कान्त मान जाये तो...

'क्या रेणु का सम्बन्ध ? ठकुराइन ने बीच में कहा।'

'हाँ, वह यही कहता था।'

'तो मान जायेगा, कान्त ! वह ऊँचाई पर जाकर बैठा है, तो उसी ओर...'

ठाकुर ने बीच में ही कहा—'ठकुराइन, अब तुम्हारी रेणु भी समझदार है। पढ़ी-लिखी है। शक्ल-सूरत की अच्छी है।'

ठकुराइन कहना चाहती थी कि और श्रीधर ? पर इसने इतना नहीं कहा। उसने बरबस ही अपनी बात को रोक लिया और कहा—'तो जगराम जाये। क्या जाने भगवान् हमारी सुन ही लेगा।'

ठाकुर उठ चला और बोला—'रेणु की माँ, भगवान् जरूर सुनेगा वह दयालु है।'

पन्द्रह

किन्तु उन्हीं दिनों श्रीधर की मानसिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी। बाढ़-पीड़ित क्षेत्र में काम करता हुआ वह थक गया। उसके मन में एक यह भी बात थी कि रेणु लौट जाये, वह रेणु से दूर हो जाये। दूसरा कोई और कारण हो तो हो, एक यह आशय था कि जब से, कान्त उस शिविर में आया, रेणु का और उसका साक्षात्कार हुआ, तो मानो अनायास ही, बिना किसी प्रयास के उस यौवनमयी बाला के हृदय में एक ऐसी प्रेरणा पैदा कर गया कि जिसमें लालसा थी, अप्रत्याशित अभिलाषा की गन्ध आती थी। क्योंकि प्रथम दिन ही, जब रेणुबाई ने कांत के आगमन की बात कही, और उस पर श्रीधर ने अनजाने ही, अपनी आलोचना प्रगट कर दी, तो उसके दूसरे या तीसरे दिन ही, जब रेणु और श्रीधर एक स्थल पर मिले, तो तभी, रेणुबाई ने अपने मन में ली हुई बात फिर प्रगट की और कहा—'हाँ, श्रीधर क्या कहा था तुमने कि कान्त भी चोर है, लुटेरा है, वह···'

रेणु से वह अकल्पित बात सुनी, तो श्रीधर का माथा ठनक गया। वह बरबस ही अपने स्वर में रूक्ष-भाव लेकर बोला—'मैं समझा नहीं, तुम्हारा मतलब !'

रेणु बोली—तुमने कहा था न, कि कान्त देश-भक्ति के नाम पर ढोंग करता है···रंगा सियार···'

'ओह, तो तुम उस बात को अभी लिये हो ! अपने सम्बन्धी की कटु आलोचना सुनकर दुःखी हो !'

रेणु ने कहा—'नहीं, नहीं, मैं यह जानने के लिये उत्सुक हूँ कि आखिर, इस दुनियाँ में आकर सभी को सम्मान लेना शोभनीय है··· सभी को इन भौतिक पदार्थों से दूर···'

बात सुनी, तो श्रीधर अत्यधिक गम्भीर बन गया। वह बोला—'यदि ऐसा हो···'

किन्तु बीच में ही, रेणु ने कहा—'श्रीधर जी, ऐसा हो, तो यह ससार उजड़ जायेगा। फिर तो इस साधुता का भी कोई अर्थ नहीं रहेगा।'

बात सुनी तो, बरबस श्रीधर मुस्करा दिया। वह कुछ हँस भी दिया।

लेकिन इतना देखकर तो रेणुबाई को और अधिक चिढ़न पैदा हुई। उसने समझा कि श्रीधर उसकी बात का उपहास कर रहा है, महत्वहीन मान रहा है, उसकी बात को। यह देखकर ही, उसने कहा—'श्रीधरजी यह सजा हुआ संसार, यह सृजनात्मक अन्वेषण तुम्हारे विचार से तो व्यर्थ ही चले जायेंगे। फिर इनका कोई भी महत्व नहीं रहेगा। यह संसार उजड़ जायेगा। फिर इस धरती पर क्या कोई विकास का कार्य हो सकेगा।'

श्रीधर के होठों की हँसी फिर लुप्त हो गयी। उसने कहा—'मैं तुम्हारी बात नहीं समझ पाया, रेणुबाई! तुम जिस धरती के विकास और सृजन की बात कहती हो, उससे और कान्त सरीखे व्यक्तियों से सम्बन्ध क्या! ये लोग तो उस कोटि के हैं कि जो पकी-पकायी खाते हैं···समाज का शोषण करते हैं और मूर्ख बनाते हैं। बताओ इस समाज के विकास में इन लोगों का क्या हाथ है! इनके सिर पर कैसे सेहरा बाँधा जा सकता है! यदि तुम्हारे पास बधाई का कोई शब्द है, सद्-भावना का भाव है, तो किसान को दो, मजदूर को दो। तुम उस व्यक्ति को भी पुचकार सकती हो कि जो अपनी बुद्धि का चातुर्य दिखाकर, देवता की मूर्ति का निर्माण करता है, देवालय बनाता है।'

रेणु ने कहा—'लेकिन कान्त कोई व्यापारी नहीं है, उद्योगपति नहीं है। वह अपने त्याग और बुद्धि के बल पर, उस स्थान पर पहुँचा है कि जहाँ बैठा है। तब उससे चिढ़न क्यों! उसके प्रति अन्याय

क्यों ?'

इतना सुनना था कि बरबस श्रीधर हँस दिया। उसने बात को टाल देने का प्रयत्न किया।

लेकिन रेणु तो जैसे अपनी बात पर अड़ी थी, इसलिये वह फिर बोली—'इस जीवन को पाकर सभी अपना मार्ग प्रशस्त करते हैं, लोग धन और प्रतिष्ठा पाने के आकांक्षी बनते हैं।'

इतना सुनकर श्रीधर ने अपना मत देना उचित उहीं समझा। उसने सामने रखी किताब उठा ली और पढ़ने लगा। रेणु भी वहाँ से उठ चली और दूसरी ओर चली गयी। शिविर में जहाँ प्राथमिक चिकित्सा के रोगी थे, रेणुका उधर ही बढ़ गयी और एक कम आयु की औरत की गोद में एक छोटा-सा बच्चा देखकर वह बलात् उससे पूछ बैठी—'इसे क्या रोग है !'

औरत ने कहा—'ठण्ड लग गयी है। शायद निमोनिया···'

'ओह, बच्चा उदास है !' कहते हुए वह आगे बढ़ गयी और अपने आप बोली—'क्या सुन्दर है, तो उसका बच्चा भी···' तभी उसने कहा—'यह श्रीधर भी अजीब आदमी है ! जाने किस लोक की बात मन में लिये रहता है। रहता इस धरती पर है और कल्पना शायद कहीं और की करता है ··' चौथे आसमान की ! उसी समय एक परिचारिका सामने आयी और बोली—'बीबी जी, आप श्रीधर जी के पास से आ रही हैं क्या ?'

रेणु ने कहा—'हाँ, वहीं से !'

'अब ठीक हैं, वे ! बैठे हैं, पड़े हैं ?'

उस अप्रत्याशित प्रश्न को सुन, रेणु ने कहा—'क्यों बैठे हैं ?'

परिचारिका बोली,—'मैं तो पूछती थीं। क्यों आज उन्होंने···'

रेणु का जैसे माथा ठनक गया। उसने बरबस ही उस परिचारिका को घूरकर देखा। जैसे कि कुछ और समझना चाहा। क्योंकि वह देखती थी कि वह परिचारिका नगर से आई थी। पढ़ी-लिखी थी। वह नगर

के सरकारी अस्पताल की चतुर और सुन्दर नर्स थी। उसी अवस्था में रेणु ने कहा—'मैं समझी नहीं। श्रीधरजी अपने डेरे में हैं चाहो तो मिल लो, बैठे हैं।'

परिचारिका बोली—'नहीं, नहीं, उन्हें आराम करने दें।' तभी उसने कहा—'आपको तो मालूम होगा कि आज उन्होंने गाँव की औरत को अपना खून दिया था। उस औरत के शरीर में खून नहीं था।'

इतनी बात सुनी, तो जैसे रेणु के पैरों के नीचे की धरती खिसक गई। उसे अचम्भा हुआ। क्योंकि उसे पता नहीं था। यद्यपि उसे अभिमान था कि वह श्रीधर की सभी गतिविधियों को जानती है। उस श्रीधर पर अधिकार रखती है। परन्तु परिचारिका ने अपनी बात कही, तो उसका आनन्द जैसे खण्ड-खण्ड हो गया। उससे एकदम कुछ कहते नहीं बना। उसे अनुभव हुआ कि वह श्रीधर के विषय में अधूरी है, उससे अपरिचित है।

परिचारिका बोली—'लगता है, आपको अभी पता नहीं। यह बात तो कैम्प के अधिकांश व्यक्तियों को पता चल गयी है।' उसने कहा—'डाक्टरनी ने श्रीधर जी को रोका था। कहा था कि आप खून न दें। कोई और दे देगा। पर श्रीधरजी कहाँ माने। बोले, 'नहीं, नहीं, यह मेरा ही काम है। पहल मुझे करनी है। यह कहते हुए परिचारिका ने साँस भरी और बोली—'सचमुच, अजीब तत्वों से निर्मित हैं, ये श्रीधरजी! रात-दिन लोक-कल्याण की बात ही सोचते हैं। यह जाने अब अपने, जीवन का और कौन-सा त्याग करना चाहते है।'

किन्तु इतना सुनना भी जैसे उस रेणु को अच्छा नहीं लगा। उसने सहज-भाव से सुन लिया और अपना पैर आगे बढ़ा दिया। वह तेजी के साथ उस चिकित्सालय से बाहर निकल गयी और सीधा जाकर अपने खेमे में पहुँच गयी। अब अपने तम्बू में पर अकेली थी। पहिले गाँव की एक औरत थी, वह भी चली गयी। इसलिए जब वह चारपाई पर जाकर पड़ी तो उसे लगा कि जैसे उसके और श्रीधर के बीच में एक

गहरी खाई खुद गयी है। जैसे विचारों का एक बड़ा फैलाव उसको और श्रीधर को दूर-दूर कर गया है। क्योंकि उसने देखा कि श्रीधर जैसे उसे गैर समझता है। सभी के समान उससे भी सम्बन्ध रखना पसन्द करता है। और जब कि इस समूचे कैम्प के समुदाय को पता है, कि मैं और श्रीधर एक ही गाँव के हैं · एक ही विचारों के···एक ही आत्मा के दो टुकड़े···'

रेणु ने करवट बदल ली और कहा—'जब ऐसा है, इतना समझता है श्रीधर, तो फिर यह तमाशा क्यों···लोगों के समक्ष ऐसा दिखाता क्यों है! वह बोली—'जब श्रीधर मुझे अपनी विश्वास-पात्र नहीं देखता, तो तब मैं ही क्यों उसके पीछे पड़ूं। मैं क्यों अपने को गुमराह करूँ! न, श्रीधर का रास्ता और है, मेरा और···'

रेणु ने फिर दूसरी करवट ली और वह तम्बू के बाहर देखती हुई अपने आप बोली—हजरत ने खून दिया, इतना उपकार का कर्म किया, सभी को इस बात का पता चल गया, पर मुझे बताया भी नहीं! क्या कहती होगी, वह परिचारिका कि मैं हूँ इस श्रीधर के गाँव की मैं ·· हाँ, वह चतुर नर्स भी मन में हँसी होगी, कहती होगी कि सब दिखावा है, ढोंग है, इस रेणु का! श्रीधर इसे कुछ नहीं समझता। इस रेणु को मान्यता नही देता।

उसी समय रेणु के मन में बात आयी कि वह उठे और श्रीधर के पास जाये। वह उसके मुँह पर ही जाकर कहे, क्यों हजरत, मुझसे ऐसा दुराव कि बताया भी नहीं, मुझसे नहीं कहा कि आज मैंने खून दिया है। शरीर में कमजोरी है। इसलिए मैं तम्बू में पड़ा हूँ।

तब सूरज ढल चुका था। बाहर चारों ओर हरियाली थी। किन्तु रेणु का मन कहीं जाने को नहीं हो रहा था। उसी समय एक आदमी आया और बोला—'बीबीजी, नगर से आटे की बोरियाँ आयी हैं, चीनी की भी······'

रेणु ने कहा—'तो···?'

आदमी बोला—'उन्हें सम्भाल लीजिये, रजिस्टर में?'

रेणु ने कह दिया—'वहाँ आदमी और भी होंगे। उनसे कहो।'

आदमी लौट गया। किन्तु मुसीबत की बात तो यह हुई कि उसी समय एक और आदमी आया और बोला—'बीबीजी, आज कितना दूध लेना होगा ?'

रेणु झल्ला पड़ी और बोली—'क्या यह मेरा ही काम है !'

आदमी बोला—श्रीधर बाबू कहते हैं कि आप—'

'नहीं, नहीं, श्रीधर बाबू स्वयं बतायेंगे !' यह कहते हुए रेणु खड़ी हो गयी। वह तुरन्त ही, वहाँ से दूर जाने लगी। कैम्प के पास ही खेत थे, उनमें अधिकांश फले-फूले थे। रेणु एक खेत के डौले पर जा खड़ी हुई और उसकी हरियाली देखने लगी। किन्तु खेत देखना तो उसका उद्देश्य नहीं था। उसका मन भी उस ओर नहीं था। उसके मस्तिष्क में तो एक के बाद एक बात उठ रही थी और जा रही थी। उसके मन में बार-बार आ रहा था कि वह गाँव लौट जाये। अपने घर पहुँच जाये। क्योंकि उसका रास्ता और है, श्रीधर का और ! उसे सेवा और न्याय का ही प्रसार करना है, इसीमें जीवन को लगाना है, तो लगाये। और इस सेवा-कार्य की कोई सीमा नहीं है। अभी बाढ़ उतरी है, लोग घरों को लौटने लगे हैं, तो बीमारी फैली है। फिर लोगों के खाने-पीने की समस्या है...जीवन की समस्या...'

रेणु ने एकाएक आसमान की अपना अपना मुंह उठाया और कहा—'इस पथ के पथिक श्रीधर सरीखे ही बन सकते हैं, कोई और नहीं ! मैं नहीं, मेरे घर वाले नहीं...'

'रेणुबाई !' एकाएक आवाज सुनी, तो रेणु चौंक गयी। लौटकर देखती है, तो श्रीधर !

श्रीधर ने कहा—'मैं तुम्हारे तम्बू की तरफ गया था। क्या आज तुमने अपना अधिकार छोड़ दिया...अपना काम...रिछपाल ने मुझसे आकर कहा कि बीबीजी ने मुझे फटकार दिया ! भला ऐसा करना

कहाँ तक शोभनीय था। जो भरोसा तुमने दिया, विश्वास पाया, क्या उसका इस प्रकार छोड़ देना था।'

किन्तु उस समय रेणु का सिर झुका था। उससे बोला नहीं गया। कदाचित् उसने कुछ कहना उचित भी नहीं समझा।

तभी श्रीधर बोला—'आज तुमने मेरे पास जाकर जो कुछ कहा, उसके अन्तरस्थल में क्या था, भले ही, मैं उस सबको न समझ पाया होऊँ, परन्तु एक बात जरूर मेरे दिमाग में उठी कि तुम्हें मेरा यह काम पसन्द नहीं। मेरी गति और रीति-नीति पसन्द नहीं! सो, भला इसमें आपत्ति कैसी! सभी के अपने अलग-अलग मार्ग हैं। दिशायें जुदा-जुदा है प्रत्येक व्यक्ति की!'

रेणु ने मुँह उठाया और कहा—'तो श्रीधरजी, इसमें विवाद क्या··· आपत्ति का प्रश्न क्या!'

एकाएक अपने स्वर पर जोर देकर श्रीधर ने कहा—'हाँ, हाँ, इसमें विवाद क्या! जिसे जितना करना है, करता है। यह कहते ही, उसकी आँखों के सामने अँधेरा आया और वह लड़खड़ा गया। वह चार पग आगे बढ़कर सम्भलता-सम्भलता भी गिर गया। उसका मुँह डौल पर जाकर पड़ा।

यह देख, एकाएक रेणु चीख पड़ी—'श्रीधर!'

श्रीधर ने कहा—'हूँ।'

रेणु पास पहुँच गयी। वह डौले पर बैठकर श्रीधर के सिर को अपनी गोद में लेकर बोली—'आखिर तुम्हारे मन में क्या है, श्रीधर! तुम··· तुम···'

किन्तु श्रीधर ने तुरन्त ही अपना सिर ऊपर उठा लिया। वह रेणु की गोद में नहीं पड़ा रहा। वह उठकर बैठा और घोंटे पर मुँह रखकर बोला—'रेणुबाई देखती हो, यह नीला है, या कहो कि हरा है। लोग कहते हैं कि यह आसमान गोल है। कोई कहता है कि सपाट है। पर जो हो, इसका अपना एक महत्व है। मैं तुमसे जहाँ कैम्प की बात

कहने आया, वहाँ इस बात की क्षमा भी माँगने आया कि मेरी किसी बात से तुम्हारे हृदय में यदि चोट पहुँची हो, तो मुझे क्षमा करना। विश्वास करो, मेरी छाती के नीचे कुछ नहीं है। अहंमन्यता या ईर्षा नहीं।

मानो आतुर बनकर रेणु ने कहा—'तो हुआ क्या, श्रीधरजी आपने मेरी ओर से सुना क्या!'

श्रीधर ने कहा—'मैं आज थका हूँ। दुर्बल हूँ!'

रेणु बोली—'हाँ, यही तो! तुम मुझे गैर समझते हो। आज एक ग्रामीण औरत को अपना खून दिया, तो उसे मुझे बताया भी नहीं, बताइये, यह दुःख नहीं तो और क्या है।'

श्रीधर कड़वे भाव से मुसकरा दिया और बोला—'ओह, तुम बहुत कुछ अपने मन में रखती हो! मुझे लगता है कि तुम उदार नहीं! अन्ततः औरत हो! क्षुद्र बनी हो। भला उस खून देने की बात क्या···उसका महत्व क्या। हाँ उससे कमजोरी है, तो उसका भी उल्लेख करना क्या।' यह कहते हुए श्रीधर खड़ा हो गया। वह बोला—'यही कहना है जो काम करती हो, करती चलो। अपने विचारों को विकृत मत करो। और वह तब धीरे-धीरे अपने डेरे की ओर बढ़ गया। आश्चर्य कि उस समय रेणु चल तो दी पर पीछे रह गयी। वह कदम-से-कदम मिलाकर नहीं चल सकी। जैसे इतना साहस अपने में नहीं हो सका, नहीं पा सकी।

सोलह

उन दिनों श्रीधर की माँ-मन्दिर के साधु के पास अधिक बैठने लगी थी। वह अब अधिक अशक्त हो गयी थी। पिछले दिनों कई दिनों तक बीमार भी रही। तभी उसने श्रीधर को एक पत्र लिखवाया कि वह जल्दी ही लौट आए। किन्तु पत्र के उत्तर में श्रीधर ने अपनी असमर्थता प्रगट की और लिखा कि जो काम उसने अपने सिर पर उठा लिया है, उसे बीच में छोड़कर चल देना, इस वर्ग के साथ अन्याय होगा। उसी पत्र में श्रीधर ने बड़ी भावनात्मक भाषा में लिखा कि माँ तुम्हारे समान, मुझे यहाँ भी अनेक माताओं के दर्शन होते हैं। उनमें मानस की पीड़ा भी असह्य है। जिनके पुत्र चले गये हैं···बहिनें अपने भाइयों को याद करती हैं और पत्नियाँ अपने पतियों को। उसने लिखा कि मेरे सामने ही कितने युवक, अकाल में ही मौत के ग्रास बन गये···'

जब वह लम्बा पत्र श्रीधर की माँ को मिला, तो वह उस दिन की संध्या में ही, मन्दिर पर जाकर साधु से बोली—'बाबा, आज श्रीधर का पत्र आया है। पढ़ो तो, देखो क्या-क्या लिख बैठा है। कहता है, एक तुम्हीं मेरी माँ नहीं हो, मेरी और भी मातायें हैं, मेरा उनके प्रति भी कोई कर्त्तव्य है।

साधु ने पत्र ले लिया और पढ़ना आरम्भ कर दिया। जब वह आद्योपान्त पत्र पढ़ चुका, तो तभी, वह साँस भरकर, उसकी ओर देखता हुआ बोला—'श्रीधर जैसा है, जिस प्रकार का काम करता है, उसी तरह का तो यह पत्र लिखा···बस, और क्या।'

श्रीधर की माँ ने कहा—'किन्तु बाबा, उस श्रीधर को यह पता नहीं कि मैंने उसे पैदा किया, पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया ! और अब बड़ा हो

गया है, तो ऐसी बात करने लगा। अब समझदार हो गया है न, तो माँ से ही, सिद्धान्त का राग अलापता है, आदर्श की बात करता है।'

बाबा ने देखा कि जैसे उसके मन का क्षोभ उसके मुँह पर तैर आया है। उसने बात की तो काँपने लगी। जैसे वाणी का रोष समस्त शरीर में फैल गया।

उसी समय उस वृद्धा ने फिर कहा—'बाबा, श्रीधर यह नहीं देखता कि उसको पैदा करने वाली माँ तो यहाँ गाँव में पड़ी है, अकेली है, बुढ़िया और कमजोर हो चुकी है और वह बाहर, घर से दूर जाकर सेवा करने का नारा लगाता है। देखो तो, कैसा बेटा है वह मेरा, मेरी ओर से आँख फेर, दूसरी औरतों के चरणों में सिर झुकाता फिरता है।'

तभी साधु तीखे भाव से मुस्कराया और उसने कहा—'यह भी अजीब बात है, जैसे यह भी भगवान की लीला है, कि जिसे दुनिया की सबसे बड़ी निधि प्राप्त हो, तो वह अपने को कंगाल मानता है··· तुमने अपने को इसी रूप में समझा है।'

एकाएक श्रीधर की माँ ने कहा—'तो महाराज···'

किन्तु महाराज ने कहा—'देखो जी, मैं ऐसा साधु तो हूँ नहीं कि जो बड़ा विद्वान् हो; परन्तु जितना समझता हूँ उसी के आधार पर मेरा मत है कि तुम बड़भागिनी हो कि जो औरत बनकर अपने पेट से ऐसा बालक उत्पन्न कर सकी हो कि जो पर-दुःख और पर-पीड़ा में सहायक बनता है···उस पीड़ा को अपना समझता है। तुमने अपने पेट से कंकड़-पत्थर नहीं पैदा किया, हीरा पैदा किया है। अभी एक दिन रामधन मेरे पास आया था, तो कह रहा था कि उस बाढ़-पीड़ित क्षेत्र में श्रीधर देवता के समान पूजा जाता है। वहाँ लोग उसका सम्मान करते हैं। मानते हैं। भला तुम्हें इससे अधिक और क्या चाहिये।'

श्रीधर की माँ ने कहा—'महाराज, मैं मरूँगी, तो मेरे साथ मेरा घर भी मर जायगा। मुझे लगता है कि श्रीधर सांसारिक नहीं बनेगा।'

बात सुनी, तो बाबा ने सरल भाव में मुस्करा दिया। जैसे उस साधु ने उस वृद्धा को नितान्त सरल और भोली पाया।

किन्तु वृद्धा ने विनय के स्वर में कहा—'मेरे मन में यही काँटा है, खटकता है। मुझे कीलता है।'

साधु ने कहा—'अफसोस है कि तुमने हीरा तो पाया, पर उसका मूल्य नहीं समझ पाया।' वह बोला—'अरी, पगली! तू सागर को क्यों कुल्हैया में बन्द करना चाहती है। उसे फैलने दे। सूखी धरती को तर करने दे।'

साँस भरकर वृद्धा ने कहा—'अब मैं देर तक नहीं बैठी रहूँगी। मर जाऊँगी।'

साधु बोला—'यह तो होगा ही। ऐसा एक दिन आयेगा ही।'

वृद्धा ने कहा—'उस दिन मिली थी, रेणु की माँ; तो उसकी बात सुनकर भी मैं इस नतीजे पर पहुँची कि उसे यह अच्छा नहीं लगा कि उनकी लड़की घर से दूर चली गयी।'

साधू ने कहा—'वह अब ऐसा ही कहेगी। माँ-बाप लालची हैं। बड़ा घर देखते हैं। मैंने तो सुना है कि उनका कोई रिश्तेदार...'

वृद्धा ने कहा—'हाँ, वह रिश्तेदार ऊँचे ओहदे पर पहुँच गया है। अभी उसने विवाह नहीं किया है।'

साधु बोला—'ऐसे लोग अपने लड़की की बिक्री करते हैं। उसका ब्याह क्या करते हैं, सौदा करते हैं।'

वृद्धा ने जैसे चिढ़कर कहा—'सभी ऐसा करते हैं, महाराज! अपनी लड़की को कोई भी अन्धेरे में नहीं फेंकना चाहते।'

साधु गम्भीर था, उसी अवस्था में बोला—'देखो, मैं कहे देता हूँ, श्रीधर सरीखा लड़का उन्हें अन्यत्र नहीं मिलेगा।'

वृद्धा ने कहा—'पर श्रीधर तो अभी गाँव में नहीं लौट रहा। पढ़ा न, लिखा है कि वहाँ के काम से निबट कर वह दूर चला जायेगा। सच, मैं कहती हूँ उसे उस बात का खयाल नहीं कि मेरा घर है, माँ है।

वह बुढ़िया है। आज मरी तो···कल मरी तो···'

बाबा हँस दिया—'तू अभी नहीं मरेगी! ऐसे तो तेरी उम्र बहुत बढ़ेगी।'

बुढ़िया उठ चली। जब वह गाँव के मध्य पहुँची, तो एक घर के द्वार पर बैठी हुई कुछ औरतों में से एक ने उसे देखा और पुकारा—माँ जी—'

बुढ़िया ने कहा—'क्यों यशोदा—'

यशोदा ने कहा—'ऐसी भी क्या नाराजगी है कि सामने से चुपचाप चली जा रही हो। आओ कुछ देर बैठ लो।'

बुढ़िया उधर ही बढ़ गयी और पास जाकर बोली—'देर की निकली थी घर से। मन्दिर पर बाबा के पास चली गयी थी।'

हँसकर यशोदा ने कहा—'जिन्दगी तो तुम्हारी है. न फिक्र, न फाका! जहाँ बैठीं तो बिता दिया सारा दिन! सुनाओ, कब आ रहा है, श्रीधर?'

बुढ़िया बैठ गयी और बोली—'उसका कुछ नहीं कहा जा सकता।

यशोदा के पास जो दूसरी औरत बैठी थी, वह बोली—'अम्मा जी अब श्रीधर को बुलाकर उसके पैरों में जेबड़ा डाल दो···हो कोई काले सिर की···'

वृद्धा की जगह यशोदा ने कहा—'अरी मीरा, वह ब्याह करता ही नहीं। नहीं तो किसी को काले सिर की एक, तो श्रीधर को चार!'

मीरा ने कहा—'बिना खूंटे पर बँधा बछड़ा ऐसे ही भागता है, उछालें भरता है।'

वृद्धा ने कहा—'पर बहू, मैं किसके पैर में जेबड़ा डालूं! वह तो ऐसा पंछी बना है कि हाथ नहीं आता।'

मीरा ने कहा—'माँ जी, बुरा न मानना, ऐसे आदमी चखोरे हो जाते हैं। और बन्धन से डरते हैं···बोझ को सिर पर उठाते कतराते हैं।'

वहीं बैठी मेनका नाम की औरत ने कहा—'नहीं, नहीं ! तू गलत समझती है री, मीरा ! श्रीधर ऐसा नहीं हैं। मेरा तो वह बचपन का देखा-सुना है । ऐसा लड़का क्या गाँव में दूसरा दीखता है ।'

मीरा ने कहा—'मैं ऐसा नहीं समझती । ये जितने सीधे-सादे लोग होते हैं, बड़े छुपे रुस्तम निकलते हैं ।'

यह सुनकर ही यशोदा हँस पड़ी और बोली—'मीरा अपनी बात कहती है । इसका मियाँ कहाँ तो ब्याह नहीं कराता था, ब्याह के नाम से चिढ़ता था कि कहाँ अब···हाँ इस मीरा को चार दिन भी अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देता । कभी माँ-बाप के घर गयी भी, तो इसका आदमी वहीं जा पहुँचेगा। देख लो, न क्या हालत है, अब इसकी ! जब ब्याह कर आयी थी,तो सोने से दिखती थी···सच, सुनहरी चिड़िया ! पर अब, इतनी-सी उमर में पाँच बच्चों की माँ भी बन गयी और हो गयी जैसे साठ वर्ष की बुढ़िया···।'

श्रीधर की माँ ने कहा—'अरी, इसका क्या है ! इस बेचारी की क्या हाथ की बात हैं। भगवान् की माया है !'

यशोदा चिढ़ गयी—'न माँ जी ! इसमें भगवान् क्या करता है। वह क्या आकर कहता है कि बच्चे पैदा करो···अपना स्वास्थ्य···।'

श्रीधर की माँ बोली—'हाँ, हाँ, यह भी इस बेचारी की विवशता है ! इसी गाँव में ऐसी औरत भी हैं कि जिन्हें चुहिया का बच्चा भी प्राप्त नहीं होता !'

मेनका ने कहा—'औरतें बच्चा पैदा करने के लिये सभी कुछ करती हैं ··पाप···अत्याचार···'

यशोदा बोली—'देखो न, पास के गाँव में, खुद सगे भाई का लड़का मार दिया, छोटे भाई ने और उसकी बहू ने ! उस बच्चे के खून से नहायी···कपड़े भिगोये ··।'

श्रीधर की माँ ने कहा—'राम-राम ! कलियुग आ गया ।'

यशोदा बोली—'माँ जी, आज सभी कुछ हो रहा है। उस दिन

खेत में ताजा पैदा हुआ बच्चा पड़ा था, रो रहा था, यह तो सुना होगा।'

श्रीधर की माँ ने कहा--'हाँ सुना था।' वह बोली--'फिर क्या हुआ, उस बच्चे का ! वह···हाँ···।'

यशोदा ने कहा--'वह बच्चा शहर में पहुँचा दिया। जिसका था यह भी पता चल गया। बात दबा दी। अच्छा ही किया लोगों ने कि गाँव की लाज रख ली। वह भद्दी बात बाहर नहीं जाने दी।'

श्रीधर की माँ ने साँस भरी और छोड़ दी। वह तभी मीरा की ओर देखकर बोली--'तो बहू, मेरा लड़का तो अब मेरी बात मानता नहीं। मैं क्या करूँ !'

मीरा बोली--'मैंने तो बात कही, माँ जी !'

माँ जी ने कहा--'तू ठीक कहती है, बहू ! यही होता है। देखा जाता है।'

यशोदा ने कहा--'पर श्रीधर ऐसा नहीं है। गाँव के गलिहारे में निकलता है, तो सिर झुकाकर ! कोई औरत बात करने लगे, तो क्या शऊर से वह उसकी तरफ देख पाता है ! शर्मीला है। औरत से बात करते शरमाता है।' वह बोली--'एक बार जब इधर से निकला जा रहा था, तो मैं दरवाजे पर खड़ी थी।' देखते ही बोली--'अरे श्रीधर !' तो श्रीधर रुक तो गया और हाँ, चाची, भी कह बैठा, पर आगे वह मेरी किसी बात का जवाब नहीं दे सका। बस, पैर में पड़ी चप्पल से जमीन कुरेदता रहा। और मैंने कहा था, अरे, श्रीधर, भैया, अब तो तू बहुत पढ़ गया है। ब्याह कर ले उस रेणुका से···हाँ, तब ठाकुर की लड़की रेणु का नाम मैंने सुना था। मुझसे किसी ने कहा था कि ठकुराइन श्रीधर से अपनी लड़की का सम्बन्ध कर देना चाहती है।'

उसी समय मेनका ने कहा--'और अब···क्या रेणु का ब्याह अब किसी दूसरे से होगा !'

यशोदा बोली--'सुना तो यही है। श्रीधर की बात अब कम सुनी

जा रही है। अभी एक दिन ठकुराइन खेत पर मिली थी। बात चली तो श्रीधर का नाम आते ही, मुंह पिचकाकर बात को टाल गयी। तभी मैंने समझा कि मछली किसी दूसरे के काँटे में उलझ गयी।'

मीरा ने तभी यशोदा का हाथ दबाया और कहा—'क्यों, सुना नहीं, कोई रिश्तेदार है···बड़ा आदमी···'

यशोदा ने कहा—'इस ठाकुर के पास चार पैसे जमा हो गये हैं। आँखें भी ऊँची हो गयी हैं।'

मीरा बोली—'भाग्य की बात है, जिस जमीन से पहिले गुजारा भी नहीं होता था, अब वह सोना उगल रही है। ठाकुर की फसल सबसे अच्छी होती है। एक दिन इस गाँव में छोटा-सा किसान बनकर आया था कि आज ··'

मेनका ने कहा—'ठाकुर हर साल नयी जमींन खरीदता है। माल-दार बना है।'

उस समय श्रीधर की माँ को वहाँ बैठना अच्छा नहीं लग रहा था। जब वह उठने लगी, तो यशोदा ने कहा—'माँजी श्रीधर को समझाओ। देखो, तुम्हारा यह बुढ़ापा ··'

श्रीधर की माँ खड़ी हो गयी और सूखे भाव-से मुसकरा दी, किन्तु जब वह चली तो उसकी आँखों में अन्धेरा छा गया। पैरों में कम्पन छा गया। उसने अपने आप कहा—'भला ठाकुर का क्या दोष! जब मेरा लड़का ही ब्याह नहीं करता, तो तब···हाँ, कोई भला आदमी अपनी लड़की को क्या इस तरह देर तक क्वारी देख सकेगा···नहीं, नहीं!'

घर आ गया। उसने दरवाजा खोल लिया। वह अभी बैठी ही थी कि तभी पड़ौसी मामराज की माँ उसके पास आयी और बोली—'जेठानी, सुनती हो, श्रीधर तो वहाँ है, इतनी दूर; पर यहाँ उसके नाम पर लोग जाने क्या-क्या कहने चले हैं। कुछ तारीफ करते हैं और कुछ कहते हैं कि छुपा सियार है। श्रीधर गाँव का मुँह काला कर देने पर तुला है!'

उसने साँस रोककर बात सुन तो ली, पर एकाएक अपना मत

नहीं दे पायी। क्योंकि उसे पता था कि गाँव में उसके श्रीधर के भी शत्रु हैं, उससे चिढ़ते हैं।'

मामराज की माँ बोली—'आज कहता था मामराज, कि किसी दिन इस गाँव में श्रीधर के नाम पर लट्ठ चलेगा। दो-चार का सिर फूटेगा।'

चंचल बनकर, श्रीधर की माँ बोली—'ऐसा क्यों, बहू !'

मामराज की माँ ने साँस भरी और कहा—'जमींदार ने अपना गुट्ट बना रखा है। ठाकुर का बेटा जगराम भी उसकी तरफ मिल गया है। वे सब हैं तो ठाकुर, पर अपने को ऊँचा समझते हैं, दूसरों को चोर और कमीन समझते हैं...मतलब पूरा करने के लिये वे जाति धर्म को हवा में उड़ा देना चाहते हैं।'

बुढ़िया बोली—'ऐसा सदा हुआ है। धर्म और जाति को भला व्यवहारिक कब माना गया है। आदमी सदा अपना स्वार्थ पूरा करता रहा है।'

मामराज की माँ ने कहा—'श्रीधर आये, तो कह देना, समझदारी से रहे।'

बुढ़िया ने साँस भरी और कहा—'वह मेरा कहना कब मानता है। जब माँ मर जायेगी तो क्या वह इस घर में रहेगा...जाने कहाँ को जायगा...क्या जाने संसारी बने, या साधु हो जायगा।'

सत्तरह

रेणुबाई के मन में क्या है, कदाचित् श्रीधर ने उसे कभी भी न तो जानने का प्रयत्न किया और न ही, वह उसे महत्व देने के लिये प्रस्तुत हुआ। उस दिन जब वह खेत के किनारे अनायास गिर पड़ा, तो वहाँ से लौटकर, अपने विस्तर पर पड़ते हुये ही, उसके मन में बात उठी कि यह रेणु जिस रास्ते पर पड़ गयी है वह दुश्वार है, मेरे लिये समझना भी कठिन। तभी उसने पास बैठी हुई रेणु की ओर देखा और कहा—'तुम कुछ परेशान हो। बताओ, कुछ मन में लिये हो।' उसने साँस भरी और छोड़ दी। उसी अवस्था में उसने कहा—'रेणुबाई, देखती हो मेरे जीवन का तो यही संकल्प है, शायद कुछ अन्य लोगों की तरह तुम भी कहो कि मेरे मस्तिष्क का यही पागलपन है! जो हो, वह यही है।' यह कहकर श्रीधर फिर रुक गया और आहत-भाव से डेरे के बाहर देखता हुआ बोला—'इस जीवन की ज्योति के नीचे मैंने यही पाया है, खोजने का प्रयत्न किया है। मेरी आत्मा की यही पुकार है, रेणुबाई! सोचा, कि तुम भी इस गंगा में गोता मार लो। अपने को पखार लो। क्योंकि मेरे मन में तो जाने किस संस्कार-वश यह आस्था जड़ बन कर रह गयी है कि जन-सेवा ही भगवान् की सेवा है, उसका भजन है। सो, इस जीवन में जितना अब कर पाऊँ, तो अच्छा है। पर देखता हूँ कि तुम इसे नहीं मानतीं। तुम इसे जीवन की आस्था नहीं समझतीं। सो, तुम जानो, रेणुबाई!'

रेणु ने कहा—'इस भावना और आस्था का विकास स्वतः ही होता है, किसी के प्रयत्न से नहीं।'

बात सुनी, तो मानो आसमान से गिरकर श्रीधर ने तुरन्त ही

कहा—'हाँ, हाँ, यह तो है ही। वह स्वत: ही मन में अन्तर्भूत होता है।'

रेणु ने कहा—'श्रीधरजी, अपनी सामर्थ्य और शक्ति की भी बात है।'

'ओह, यह भी क्या कहने की बात है, रेणुबाई!'

रेणु ने कहा—'देखते हैं आप कि मैं स्वतन्त्र नहीं। मैं अपने माता-पिता के आदेश से बँधी हूँ। वे यहाँ भी न भेजना चाहते, तो मैं नहीं आ सकती थी, तब क्या आपकी इस गंगा में गोता मार सकती थी।'

उसी समय श्रीधर ने समझा कि रेणु जैसे माँ-बाप की बात कह कर, आत्म-प्रवंचना का नाटक रच रही है, अपनी विवशता दिखाकर उसे बहकाने का भी प्रयत्न करती है। अतएव, एक क्षण उसने रेणु की ओर देखा और मुँह उठाकर, तम्बू की छत की ओर देखने लगा।

रेणु ने कहा—'अब मेरा मन यहाँ से ऊब गया है। अब मेरा लौटने का मन···'

झटके के साथ, श्रीधर ने रेणु की ओर देखा। उसने तुरन्त ही कहा—'तो तुम्हें रोकता कौन है, जी! जाओ, चली जाओ!'

रेणु ने इतनी बात सुनी, तो उसका माथा ठनक गया। उसके मन का सम्मान जाग गया। उसने कहा—'आप रोष में हैं···आप···'

किन्तु श्रीधर ने इस बात पर अपना मत नहीं दिया। वह चारपाई से उठ खड़ा हुआ, बोला—'तुम मुझे मार देना चाहती हो···मेरा अन्त···'

श्रीधर तेजी के साथ बाहर की ओर चल दिया। क्षण भर में ही, अपने डेरे से दूर हो गया। यह देख, रेणु ने भी वह स्थान छोड़ दिया। उसे लगा कि जैसे यह श्रीधर सचमुच ही पागल हो गया है···हो जाने वाला है। मूर्ख।

वहाँ से रेणु सीधी अपने डेरे में चली गयी। चारपाई पर जा पड़ी। जाने वह आध घण्टा पड़ी रही या एक, कि तभी, हरिया नाम का एक व्यक्ति रेणु के पास आया और उदास बनकर बोला—'बीबीजी आज

श्रीधर बाबू को क्या हुआ है ? सूने में खेत के डौले पर बैठे थे और रो रहे थे। मैं पास गया और रोने का कारण पूछा, तो कहा—'हरिया भाई मैं जीवन में आज पहिली बार रो पाया हूँ। मैं दुःखी हूँ।'

रेणु ने बात सुनी ली और मत नहीं दिया।

हरिया ने कहा—'बीबीजी, आप जायें न वहाँ। श्रीधरजी को ले आयें। अब वे दुर्बल भी काफी हो गये हैं। देखती हो कि शरीर से जर्जर…'

लेकनि रेणु फिर भी चुप! नितान्त मौन।

वहाँ से जाते हुए हरिया ने कहा—'आप ही उन्हें समझा सकती हैं, बीबीजी! क्यों रोये, इसका कारण भी आप ही मालूम कर सकती हैं।'

रेणु ने साँस भरी और कहा—'तुम सभी भ्रम में हो, हरिया भाई! श्रीधर बाबू किसीके नहीं हैं। वे अपने को अकेला मानते हैं।

हरिया ने कहा—'तो बीबीजी, यह बाबू अपना घर क्यों नहीं बसा लेते…ये अपना ब्याह…'

चंचल बनकर रेणु कहा—'यह जन-सेवक जो बने हैं। सेवा का भूत अपने दिमाग में उठाये फिरते हैं।'

हरिया ने कहा—'यह काम तो तब भी हो सकता है। कोई तुम सरीखी समझदार औरत मिले तो…'

रेणु ने कहा—'तुम्हारे बाबू विवाह नहीं करेंगे।'

हरिया को जैसे अचरज हुआ। उसने कहा—'ऐसा भी होता है। पैसा और औरत कौन छोड़ता है ?'

बात सुनी तो रेणु ने बरबस ही हरिया को घूरा। जैसे वह असंगत बात कहने के लिये प्रस्तुत हो गया। इसीसे वह बोली—'अच्छा,-अच्छा, तू जा, हरिराम।'

हरिराम लौट गया। किन्तु उसके जाने पर रेणु बिस्तर पर नहीं पड़ी रही। वह उठ चली। अपने तम्बू से बाहर निकल उस खेत की

ओर गयी कि जहाँ हरिया ने श्रीधर के बैठने की बात कही। दूर से देखा कि श्रीधर तब भी खेत के डौले पर बैठा था। उसने घोटों पर सिर रखा था। पास जाते ही, रेणु ने कहा—'श्रीधरजी !'

रेणु की आवाज सुनी, तो श्रीधर ने ऊपर मुँह उठाया। उसने रेणु की ओर देखा। वह पीड़ित था और कातर बना था, इतना अनायास ही, रेणु ने समझ लिया। इसलिये उसने तुरन्त ही फिर कहा—'आज आप कैसे हो चले हैं, श्रीधर जी ! स्वयं तो अपनी इच्छा की बात कहते हैं, और मुझ पर नाराज होते हैं।'

श्रीधर ने कहा—'न, रेणुबाई मैं तुम पर नाराज नहीं हो सकता।'

किन्तु यह सुनना रेणु को अच्छा नहीं लगा। वह तो चाहती थी कि श्रीधर कहे कि वह अपने अधिकार का उपयोग करता है। उसे मानता है।

लेकिन श्रीधर ने कहा—'रेणुदेवी, यह जीवन विचारों का ही झुरमुट है। तभी तो मनुष्य विवेकशील है। इसे खोकर फिर क्या मनुष्य कुछ रह जाता है। फिर तो जानवर रह जाता है। और जब परस्पर विचार नहीं मिले, तो भला यह इन्सान समाज हृदय से हृदय की बात सुन पाता है ? निश्चय ही, मैंने यह अच्छा नहीं किया कि तुम्हें यहाँ आने का निमन्त्रण दिया। और तुमने भी इतना नहीं सोचा कि घर से इतनी दूर जाना क्या ठीक होगा।'

रेणु ने कहा—'अब आप उठिये। चलिये। देखिये, अब आप मेरा तमाशा न बनाइये। अपने को भी चर्चा का विषय मत होने दीजिये।'

इतना सुनना था कि श्रीधर जैसे मर्माहत बन गया। वह अतिशय वेदना से प्लावित बनकर बोला—'रेणुबाई, मैं इतना कठोर नहीं हूँ। देखती हो कि मैं अपनी साधना में फेल हो चुका हूँ।'

रेणु ने कहा—'वह साधना क्या ?'

श्रीधर ने सीधे स्वभाव कह दिया—'मैं सोचता था कि इस धरती पर वासना ही प्रमुख नहीं है—'जीवन की केवल एक यही माँग नहीं।

पर तुम्हें देखकर मैं समझा हूँ कि मैं भ्रम में था। मैं व्यर्थ ही तुम्हें अपने अनुरूप बनाने की बात सोचता था। लेकिन क्या यह संगत रहा? मेरे और तुम्हारे अनुरूप? नहीं, नहीं, मैं भ्रम में था। गलत दिशा की ओर संकेत करता था।'

रेणु ने कहा—'श्रीधरजी, आप क्या कहना चाहते हैं, मुझे अभी तक नहीं सूझ पड़ा। निश्चय ही, आप साधु नहीं बनेंगे। आप इस संसार से दूर नहीं जायेंगे।'

श्रीधर ने कहा—'रेणुदेवी, मैं अब इस विषय पर नहीं सोचता। मेरे अन्दर केवल यही मनस्ताप है कि मैंने तुम्हारा समय बरबाद कर दिया। तुमने और तुम्हारे माता-पिता ने समझा होगा कि···'

रेणु ने आतुर बनकर कहा—'नहीं, नहीं, आप भ्रम में न जायें, श्रीधर बाबू! मेरी कोई लालसा नहीं! मेरे माँ-बाप की आप से कोई माँग नहीं।'

फिर भी, श्रीधर ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'नहीं! है। वह है।'

बरबस, रेणु पूछ बैठी—'वह क्या!'

'विवाह···रेणु और श्रीधर का सम्मिलन! प्रणय-बन्धन।' वह बोला—'यही तो आज की रीत है। देर की प्रथा है। पुरुष और स्त्री ने देर से इसी रूप में एक-दूसरे को समझा है।' यह कहते हुए श्रीधर अत्यन्त गम्भीर बन गया। वह बोला—'शायद तुम भी मुझे पागल कहोगी। पर मैं बताता हूँ, सभी के समान यह दुर्बलता मुझ में भी है। मैं शरीर की माँग का अर्थ समझता हूँ। मैं देखता हूँ कि मन और आत्मा की भूख चाहे कुछ हो, परन्तु, इन्द्रियों की भूख को क्या उपेक्षित बनाया जा सकता है,—नहीं!'

बरबस ही रेणु के मुँह से अनायास निकला—तो फिर···हाँ आप···'

श्रीधर ने कहा—'पर मैं इस जीवन को एक परीक्षा मानता हूँ, रेणुबाई

मैं सोचता हूँ कि···'

रेणु ने कहा—'आप नियति के विरुद्ध···'

बीच में ही, श्रीधर ने कहा—'नियति के नियमों की अवहेलना करना मेरी शक्ति से परे है। मैं मनुष्य हूँ, सांसारिक हूँ, तो उन नियमों में बँधा हूँ। मैं सार्वभौमिक नियति का आदर करता रहा हूँ।'

उस समय अन्धेरा बढ़ रहा था। सूर्य पश्चिम दिशा की ओर जाकर छुपने लगा था। किन्तु श्रीधर और रेणु बात करते हुए इतने समीप आ गये थे कि उनके गरम साँस एक दूसरे से टकरा रहे थे। उसी समय काले हो आये आन्तरिक्ष की ओर देख, श्रीधर ने साँस भरी और कहा-- 'मैं योगी नहीं हूँ, रेणुबाई! मैं भी दुर्बल हूँ। शरीर से दुर्बल तो हूँ ही आत्मा और मन से भी हूँ। मैं इसकी भी चिन्ता नहीं करता कि मेरा परीक्षण सफल हो, या नहीं; परन्तु यह सत्य है कि तुम्हें पथ-भ्रष्ट नहीं करूँगा। मैंने तुम्हें और तुम्हारे भाई को जितने पत्र लिखे, उन सभी में यह संकेत दिया कि तुम्हारा विवाह अन्यत्र होना चाहिए, मुझसे नहीं। मैंने अभी यह सिद्ध करने का भी प्रयत्न नहीं किया कि मैं योग्य हूँ, तुम्हारे अनुरूप हूँ। मैं भला क्या इतना विवेक-हीन हूँ कि तुम्हें अपने परीक्षण के पथ पर घसीटना चाहता हूँ।'

उस समय देर से रेणु के मन में एक बात उठ रही थी। वह उसे बार-बार मुँह पर लाना चाहती थी। तभी वह कह बैठी—'श्रीधरजी, यदि ऐसा था, तो आपको मेरा दृष्टिकोण मेरी बुद्धि और मेरा ज्ञान इतना परिष्कृत न कराना था, आपको मुझे साक्षर बनाने में इतना योग न देना था। मैं जिस अन्धेरे में थी, तो उसी में पड़े रहना मेरे लिये संगत था। मैं खेत पर काम करती। घर में मजदूरनी बनी रहती। मैं भी एक सामान्य औरत की तरह बच्चे पैदा करने की मशीन सिद्ध होती। पर अब···हाँ, अब···'

श्रीधर मुसकरा दिया और बोला—'तो अब क्या हुआ, रेणुबाई! अन्तर कुछ नहीं पड़ा। तुम्हें अब भी बच्चे पैदा करने हैं···तुम्हें अब भी

किसी पुरुष की नारी बनना है, सहधर्मिणी···उसके घर की रखवालिन···'

किन्तु इतनी बात सुनकर रेणु को सन्तोष नहीं हुआ। कदाचित् उसे यह सुनना अच्छा भी नहीं लगा। उसका मुंह लाल पड़ गया। जैसे मन का रोष बाहर आ गया।

कदाचित् यही देख, श्रीधर ने फिर कहा—'भरोसा रखो, सम्भवतः नारी की यही परिणति है। अभी तो यही व्यवस्था है। पुरुष भी यही चाहता है। वह नारी के इस हाड़-माँस के जीवन में कुछ और नहीं देखता। ऐसा अनुभव भी नहीं करता।'

रेणु ने कहा—'यह क्या···'

सहज भाव से श्रीधर बोला—'रेणुदेवी, इस नारी में कुछ और भी है। यह ममतामयी नारी, भावनामयी, प्रेरणामयी, आज व्यसन की सड़ाँद भरी दलदल में फेंक दी है···यह नारी भी उसीमें आनन्द पाती है। उसीमें घुटना चाहती है···मरना···

एकाएक रेणु ने कहा—'ओह!'

श्रीधर बोला—'आज मैं तुम्हें बताता हूँ कि नगर का एक गुण्डा दरिया की धारा में पड़ी एक औरत को निकाल कर इसलिये उठा ले गया कि वह सुन्दर थी, शरीर पर सोने के कई अलंकार पहिने हुए थी। परन्तु, जब वह उसके अलंकार लेकर, उसे चूमने-चाटने के लिये प्रस्तुत हुआ, तो तभी, उसे सन्देह हुआ और उसने देखा कि उस सुन्दर औरत का प्राण देर का निकल चुका था···'

रेणु ने कहा—'राम-राम!'

श्रीधर ने कहा—'मैंने एक डायरी में इस प्रकार की सभी घटनाओं को लिखा है। मैं लेखन का काम करता हूँ न, तो रात के अन्धेरे में जब जगत सो जाता है, तो मैं लिखता हूँ, उसे प्रकाशकों को भेजता हूँ।'

रेणु ने कहा—'समाज की ऐसी अवस्थाओं का चित्रण करना क्या संगत है?'

चकित बनकर श्रीधर बोला—'समाज इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त करता है। साहित्य का यही काम है। साहित्यकार इसी तरह ज्ञान का उद्‌बोध कराता है।

तभी रेणु ने सामने की ओर देखा और बलात् उसके मुंह से निकल पड़ा—'भैया, तुम !'

उसी समय जगराम उन दोनों के समक्ष आकर खड़ा हो गया।

अठारह

कदाचित् आकस्मिक रूप से ही, उन दिनों रेणु और श्रीधर के मध्य असम्भावित बातें हो रही थीं। जगराम के आने पर जब अगले दिन रेणु श्रीधर के पास गयी, तो वह अपने डेरे में नहीं था। एक व्यक्ति से मालूम हुआ कि उस समय श्रीधर उस स्थान में था कि जो पीड़ित व्यक्तियों के लिये उपचार-गृह बनाया गया था। रेणु वहीं पहुँच गयी। आकर देखा कि श्रीधर एक छोटे से बच्चे को चम्मच से दूध पिला रहा था। क्योंकि उस समय उपचारिका रोगियों को औषधि देने में लगी थी। श्रीधर जब उधर पहुँचा, तो बच्चा रो रहा था।

देखकर, रेणु किंचित् हँसी, मुस्करायी। वह श्रीधर को लक्ष्य करके बोली—'यह काम तुम्हारा नहीं, श्रीधर जी!'

जैसे चकित बनकर श्रीधर ने रेणु की ओर देखा, वह बोला—'मैं ऐसा नहीं समझता। यह काम केवल नारी का हो, ऐसा भी नहीं मानता।'

किन्तु रेणु तो उस समय किसी विवाद में पड़ना नहीं चाहती थी। वह अपने मन में एक बात लेकर आयी थी, इसलिये, उस समय भी, उसीको मुंह में लिये थी। फिर तभी वह बोली—'इस काम को औरत जिस निपुणता से निबटा सकती हैं, उस प्रकार पुरुष नहीं।'

श्रीधर ने कहा—'शायद यही हो। पर औरत का दम्भ किसी प्रकार रुचिकर भी नहीं। काम, काम है, कोई भी कर सकता है।'

उस क्षण रेणु कहना चाहती थी कि आदमी बच्चा पैदा नहीं कर सकता, पर उस असंगत बात को उसने नहीं कहा, बरबस रोक लिया। उसने इतना कहा—'औरत मर जाये, तो आदमी अपने घर को नहीं सम्भाल सकता, बच्चों का पोषण भी ठीक प्रकार से नहीं कर सकता।'

श्रीधर ने बात सुनी तो रेणु की ओर देखा। उसने कहा—'तुम्हें कहना क्या है! कोई नई बात! रात जगराम बात कर गया था। वह कान्त के पास जाना चाहता है।'

रेणु ने तुरन्त ही कहा—'हाँ, वही। मैं तुमसे विदा लेने आयी हूँ।'

इतना सुनकर भी, श्रीधर खड़ा नहीं हुआ। उसने बच्चा गोद से नहीं उतारा। उसे दूध पिलाते हुए ही, वह बोला—'हाँ, हाँ, तुम जा सकती हो। यहाँ का कार्य भी प्रायः समाप्त हो चला है। मुझे भी लौट जाना है।'

रेणु ने कहा—'कान्त से मिलकर मैं घर चली जाऊँगी। कान्त की माँ को बहुत दिन से नहीं देखा है।'

उसी समय श्रीधर के मन में एक बात आयी, उसने चाहा कि तब प्रगट करे। रेणु से कहे, पिछले सप्ताह कान्त का पत्र तो आया था। उसीमें बुलावा दिया होगा। किन्तु इतना उसने नहीं कहा। क्योंकि श्रीधर को स्वयं इस बात पर ताज्जुब था कि जो रेणु उससे अपनी कोई बात नहीं छुपाती, वह अब उससे परे हटकर कुछ सोचती है, उसे गैर समझती है। यद्यपि बाहर से पत्र सब श्रीधर के पास आते थे। रेणु के नाम का लिफाफा यह बता रहा था कि वह प्रान्तीय सरकार का था। उस पर प्रेषक के रूप में 'कान्त' भी लिखा था। श्रीधर चाहता तो उस पत्र को खोल लेता, पढ़ लेता। परन्तु यह उसके लिये असंगत था। अपराध भी था।

उस समय जब उसने रेणु की बात सुनी, तो बच्चे को लिये हुए ही बोला—'हाँ, हाँ, तुम जाओ। मैं आभारी हूँ कि तुमने यहाँ अपूर्व-सहयोग प्रदान किया। तुमने जिन बाढ़-पीड़ितों की सहायता की, अवश्य ही उनका आशीष भी प्राप्त किया।'

रेणु लौट चली और बोली—'तो तुम गाँव में मिलोगे—नमस्कार!'

श्रीधर ने भी कह दिया—'हाँ, गाँव में मिलेंगे—नमस्कार!'

रेणु लौट चली। ताँगे में उसका बिस्तरा और बक्स रख दिया

गया था। जगराम का बिस्तरा भी पहुँच गया था। जब रेणु ताँगे के पास पहुँची, तो जगराम उसकी प्रतीक्षा में था। रेणु को देखते ही बोला—'श्रीधर मिला।'

रेणु ने खिन्न स्वर से कह दिया—'मिला !'

'कुछ कहता था ?'

'नहीं—'कुछ नहीं !'

'तो बैठो—'गाड़ी का समय हो गया। स्टेशन भी यहाँ से एक मील होगा।'

रेणु बैठ गयी। जगराम भी सवार हो गया। ताँगा चल दिया।

रास्ते में जगराम ने कहा—'आज सुबह जब मैं श्रीधर से मिला, मैंने कान्त के पास जाने की बात कही, तो उसे अच्छा नहीं लगा। मुह से तो उसने कुछ कहा नहीं, पर उसके चेहरे ने बता दिया कि उसके मन में क्या था।'

भैया की बात सुन ली, तो रेणु ने अपना मत नहीं दिया। कदाचित् उससे नहीं दिया गया।

जगराम फिर बोला—'पर श्रीधर तो बिलकुल बदल गया। क्या जाने किसी रोग से ग्रसित हो गया। अब तो आधा भी नहीं रहा।'

उसी समय रेणु ने साँस भरी और ऊपर आसमान की ओर अपना मुंह उठा दिया।'

जगराम ने सामने के पथ की ओर देखते हुए कहा—'गाँव में श्रीधर की चर्चा खूब है। पास के कस्बे में भी इसका उल्लेख किया जाता है। और रेणु तूने भी अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखा, देख तो तेरा भी क्या हाल हो गया। लगता है, तूने भी खूब काम किया। चलो, हमारे घर से एक ने तो इस सेवा-कार्य में योग-दान दिया।' वह बोला—'मैंने भी कान्त को पत्र लिखा था। उसका तुरन्त उत्तर आया। पत्र में आने के लिये बुलावा दिया था।'

रेणु ने कहा—'यही उसने मुझे लिखा।'

जगराम ने कहा—'बड़ा आदमी बनकर भी वह प्रमादी नहीं बना। हमारे घर के लिये वही भाव रखता है।

रेणु बोली—'वह मुझे बुलाने के लिये अपनी मोटर भेजता पर दौरे पर चला गया था। यही उसने अपने पत्र में लिखा था।'

जगराम ने कहा—'आदमी हो, तो ऐसा!'

किन्तु उसी समय रेणु के मन में काँटे की तरह यह बात चुभ रही थी कि वह श्रीधर है कि तनिक उठकर भी नहीं आया। चार आदमियों की प्रशंसा क्या पा गया, जैसे उसका दिमाग आपे से बाहर हो गया। अपने को बड़ा आदमी मानने लगा।...सोच लिया न कि रेणु विवाह करने के लिये उसकी चाटुकारी करती है, आगे-पीछे डोलती है,...मूर्ख कहीं का! जैसे इसके बगैर यह रेणु बस क्वारी बैठी रहेगी...जीवन नहीं पा सकेगी!

जगराम ने कहा—'रेणु, मुझे यह अच्छा नहीं लगा कि श्रीधर ..'

रेणु ने बीच में ही कहा—'श्रीधर जिस जमीन पर खड़ा है, अब उससे ऊपर उठ गया है। वह जैसे इस समाज में उड़ने की कल्पना करता है!'

जगराम ने कहा—'लोग पैसा पाकर तो उन्मादी बन ही जाते हैं, पर लोगों से सम्मान पाकर भी आदमी अन्धे बन जाते हैं। पर श्रीधर...'

रेणु ने कहा—'भैया, आदमी इसी प्रकार ठोकर खाता है। अपना पतन स्वयं कर लेता है। यह श्रीधर सोचता है कि कुछ सेवा का कार्य किया—तो वह जनता के सिर पर सवार हो गया। कैम्प में कितनी अव्यवस्था थी, वह भी श्रीधर के कारण थी। यदि किसी की चोरी पकड़ी जाती और श्रीधर से कहा जाता, तो मामले को आगे न जाने देता, वहीं क्षमा कर देता।'

उसी समय स्टेशन आ गया, जगराम ने दो टिकट लिये और गाड़ी आने पर रेणु के साथ बैठ गया। किन्तु पीछे छूटे गये कैम्प में जिसमें रेणु ने लगभग दो मास बिताये थे, चलती हुई गाड़ी से जब उधर दृष्टिपात

किया, तो उसे लगा कि जैसे उस धरती के टुकड़े पर, उन गाँवों में, श्रीधर के साथ आते-जाते उसने अपने जीवन का जाने कितना ममत्व भेंट कर दिया था। वे चिर-परिचित खेत, वे पेड़, वे नदी-नाले जब पीछे छूट चले तो तभी रेणु को बरबस, फिर श्रीधर का ध्यान आया। वह उसे एक दुर्बल और अज्ञात बच्चे को दूध पिलाता छोड़ आयी थी, तो अब···हाँ, अब लोगों को निर्देश दे रहा होगा। मेरा काम भी दूसरों को समझा रहा होगा।

और सचाई यह थी कि उस समय, जब श्रीधर ने किसीसे सुना कि बीवी रेणुबाई चली गयी, तो तब, अपने मन की अपनी किस दुर्बलतावश श्रीधर यह समझ पाने की असफल चेष्टा करता रहा कि आखिर इस प्रकार कैसे गयी, रेणुबाई! क्या असन्तुष्ट बनकर! फलस्वरूप उस दिन वह देर तक नहीं समझ सका कि क्या सचमुच ही, कोई भूल की कि जिसके कारण उन दोनों के मध्य मतैक्य नहीं रहा। यद्यपि जब-जब विवाह की और प्रणय बन्धन की बात उसके समक्ष आयी, तो उसने सदा ही, उपेक्षा-वृत्ति स्वीकार की। क्योंकि विवाह के लिये उसका अपना एक अलग मत था। वह समझता था कि विवाह जीवन का एक सिद्धान्त है, कर्म है; जिसमें नैष्ठिकता और व्यवस्था का होना आवश्यक है। इसलिये उसका नियोजन तभी हो कि जब वस्तु स्थिति आदेश देती हो। वह सोचता, यह रेणु जो समीप आकर उसे देखती है, निश्चय ही विवाह के उपरान्त, जब जीवन की पूर्ण रूप से खोज करने और मानवीय भावनाओं की बात सोचेगी, तो क्या जाने वहाँ असन्तोष हो, अनुग्रह की जगह दुराग्रह हो। इसलिये, वह इससे बचता था। अभी अपने में आस्था भी नहीं पाता था।

लेकिन उस दिन जब रेणु कैम्प से विदा हो गयी, तो एक गाँव का वासी रामदास जो आयु से प्रौढ़ था, श्रीधर का अधिक विश्वास-पात्र था, अवसर पाकर उसके पास आया और बोला—'क्यों बाबू, ऐसी क्या बात थी कि रेणुबीबी का भाई आया और उसे ले गया। क्या जाते

समय···।'

श्रीधर ने बीच में ही कहा—'उसे जाना था, बाबा! यहाँ देर तक तो नहीं रहना था!'

रामदास बाबा ने कहा—'हाँ, हाँ, यह तो ठीक है ; पर ऐसे भी क्या जाना ठीक था। यहाँ कइयों ने कहा कि रेणु बीबी का श्रीधर बाब से झगड़ा हो गया।'

बात सुनी, तो श्रीधर जोर से हँस दिया। वह उसी प्रसन्न मुद्रा में बोला—'न, न, ऐसा नहीं, बाबा! भला मेरा झगड़ा क्यों होगा!'

किन्तु रामदास ने अपने स्वर पर जोर दिया और कहा—'न बाबू! इस तरह झगड़ा तो होता है। हरिया कहता था कि श्रीधर बाबू ब्याह नहीं करना चाहते और रेणु बीबी···'

एकाएक गम्भीर बनकर श्रीधर ने कहा—'रामदास जी, तुमने भी तो ब्याह किया था। बोलो, क्या पाया! क्या भोगा!'

बरबस ही रामदास ने उस बात पर टिककर कहा—'बाबू, पाता क्या! मेरा भाग्य ही पोच था। मुसीबत का बोझ मेरे सर पर पड़ना था।'

श्रीधर ने कहा—'यही होता है। सर्वत्र यही देखा जाता है।'

लेकिन रामदास इस बात से सहमत नहीं हुआ। वह बोला—बाबू, गँवार हूँ, पर इतना जानता हूँ कि विवाह करके ही आदमी दुनियाँ की पीड़ा और व्यथा को समझता है। अपने बच्चों में संसार का रूप देखता है।'

श्रीधर ने इतनी बात सुनी, तो मुस्करा दिया। रामदास ने जिस सरल-भाव से अपनी बात कही, उस पर वह अनायास ही टिक गया।

रामदास बोला—'बाबूजी, इस दुनियाँ की फुलवाड़ी में जो फूल खिले हैं, वे सब गृहस्थियों द्वारा ही लगाये गये हैं। औरत जब आदमी की जिन्दगी में आती है, तो सूनेपन में झंकार पैदा करती है, शोर मचाती है। एक संसार बसा देती है और जब जाती है, तो···हाँ···'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, तो···?'

रामदास बोला—'तब उस जिन्दगी में हाहाकार पैदा कर देती है। जैसे श्मशान की तरह शान्ति आ जाती है।'

श्रीधर अत्यन्त भावुक बनकर बोला—'तुम बहुत समझदारी की बात कहते हो, बाबा ! तुम भुक्त-भोगी हो !'

रामदास ने कहा—'हाँ, मैंने यह सभी देखा-सुना है। समझा है। एक दिन जो कुछ पाया, वह, अब खो दिया है।'

तब सहज ही, श्रीधर ने अनुभव किया कि यह रामदास सचमुच ही कोलाहल से भरा है। पीड़ित है। इस दुनियाँ के बाजार में यह सभी कुछ छिना चुका है।

रामदास ने कहा—'बाबू, जब भी किसी बच्चे को देखता हूँ। तो मैं अपने बच्चों को याद करता हूँ कभी-कभी तो मैं किसी औरत को देखकर भी, अपनी औरत की याद कर पाता हूँ। सोचता हूँ कि वह बेचारी कैसी दुर्भागिनी थी, कितनी दीन; कि अपने सामने ही, दोनों बच्चों को खो चुकी थी। फिर स्वयं भी ··' यह कहते हुए रामदास का स्वर भारी बन गया।

जल्दी से श्रीधर ने कहा—'इस दुनियाँ में यही है, रामदास बाबा ! फिर बताओ, तुम्हारा उपदेश क्या सार्थक बनेगा ?' यह कहते हुए, श्रीधर अपने स्थान से उठ चला। रामदास भी साथ हो लिया।

डेरे से बाहर जाकर श्रीधर ने कहा—'अब यह कैम्प इसी सप्ताह उखड़ जायगा। सब अपने-अपने रास्ते चले जायेंगे।'

रामदास ने कहा—'बाबू, इधर के आदमी तुम्हें क्या भूल सकेंगे ! जब इस धरती को कोई देखेगा, तो वह कहेगा कि यहाँ पर आकर बैठे थे एक श्रीधर बाबू जो अपने साथियों को सेवा का उपदेश दे गये। जानवरों को आदमी बना गये।'

श्रीधर ने दूर एक खेत की ओर देखकर कहा—'इस धरती पर जाने कितने श्रीधर आते हैं और चले जाते हैं। भला एक मैं क्या ! मैं लोगों का प्रेम पा सका, इसे क्या, मैं सहज में ही भूल सकूँगा।' यह

कहते हुए, वह आगे बढ़ गया ।

उस समय श्रीधर घूमने निकल जाता था । दूर तक जाता था । परन्तु उस दिन वह कुछ दूर जाकर रुक गया और पास के तालाब के किनारे खड़ा होकर देखने लगा कि किनारे के एक ओर चकवा है, दूसरी ओर चकवी । वे दोनों बोल रहे हैं । तभी श्रीधर के मन में रेणु की बात आ गयी । उसने कहा, रेणु की इच्छा सार्थक है, अजेय है । वही सत्य ! यह कहते हुए श्रीधर के हाथों की मुट्ठियाँ भिंच गयीं । वह कठोर बन गया । उसी अवस्था वह दूर जंगल की ओर देखता हुआ बोला—'हाँ, नारी की यही माँग है, पुरुष की भी ।

तब तुम···तुम क्या चाहते, हो श्रीधर, ? उसने एकाएक कहा और कुछ क्षण रुक कर ही बोला—'मेरे जीवन में इस सूनेपन के अतिरिक्त और क्या है ! रेणु मेरी पत्नी नहीं बन सकेगी । वह मुझे योग्य पति नहीं पा सकेगी । वह मेरी दुर्बलता नहीं समझती । पर जब जिंदगी के समीप जायेगी तो पायेगी और अनुभव करेगी कि उसने टोटे का सौदा किया···उसे नफा नहीं प्राप्त हुआ···'

अवसर की बात कि उसी समय श्रीधर के सामने कल्पना रूप से कान्त आ खड़ा हुआ । उसका स्मरण करते ही वह बोला—'हाँ, इस दुनियाँ में कान्त जैसे ही व्यक्ति सफल बनते हैं । चोरी करके और डाका डालकर खूनी बने लोग ही इस धरती पर अपना अस्तित्व स्थापित कर सकते हैं । आज ऐसे व्यक्तियों की बहुतायत है । व्यापकता है ।

फलस्वरूप, मन में इतना आते ही श्रीधर का मानस एकाएक झंकृत बन गया । वह कठोर हो गया । उसी अवस्था में वह चौंक गया और देखता है कि तालाब के किनारे खड़े पेड़ पर जोर का शोर हुआ । एक बड़ा पक्षी आया और वह पेड़ के घोंसले से एक छोटे बच्चे को अपने पंजों में दबाकर उसके देखते-देखते दूर उड़ गया···अन्य पक्षी चीख रहे थे, तो उनके समान, श्रीधर का मन भी अशान्त और विक्षुब्ध बन गया···'

उन्नीस

कुछ और समय बीता कि श्रीधर गाँव लौट आया। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसके आने के पूर्व ही, उसे और रेणु को लेकर गाँव में विविध प्रकार की चर्चायें चल रही थीं। परन्तु श्रीधर उधर अधिक ध्यान नहीं दे सका। क्योंकि उसने अपने सिर पर एक और बड़ा काम ले लिया था। बाद-पीड़ित-क्षेत्र में काम करते हुए ही, उसने एक बड़ा ग्रन्थ लिखना आरम्भ कर दिया था, जिसका नाम था—'मनुष्य और उसका इतिहास'। उस वृहत् पुस्तक को लिखने के लिये श्रीधर ने विविध स्थानों पर जाकर शोधक-कार्य किया था। इसी हेतु उसका विविध जगह पर पर्यटन हुआ था। उस पुस्तक का प्रथम भाग प्रेस में चला गया। प्रकाशक बार-बार आगे के भाग की माँगकर रहा था। सेवा-क्षेत्र में तो श्रीधर को अधिक समय मिला नहीं, परन्तु गाँव में आकर वह अपने उस कार्य को पूर्ण करना चाहता था।

किन्तु गाँव, गाँव था। उसकी अपनी अलग परम्परा थी। गतिविध थी, बाहर ही, श्रीधर ने कल्पना की थी कि रेणुबाई प्रान्त की राजधानी में जाकर गाँव लौट चुकी थी। परन्तु जब वह गाँव में आया, तो मालूम हुआ कि रेणु का भाई लौट आया, परन्तु वह अभी नहीं आ सकी थी।

फलस्वरूप, इसी प्रसंग को लेकर गाँव में दो प्रकार के मत बन चुके थे। जैसे दो दल हो गए थे। जब श्रीधर गाँव में आया, तो जहाँ लोगों ने उसके कार्य की प्रशंसा की, वहाँ इस बात को भी उठाया कि रेणु एक मिनिस्टर के पास क्या गयी, तो लौट कर नहीं आयी। इतना

कहने के साथ जैसे यह कहना भी आवश्यक था कि अब वह क्यों आयेगी। उस प्रतिष्ठा को पाकर क्या वह छोड़ सकेगी। वह अब चमकीली और भड़कीली दुनियाँ में खो जायेगी।

निःसन्देह, श्रीधर को इतना सुनना सुखकर नहीं लगता था ! वह सोचता, भला ये गाँव के लोग क्यों इतनी दिलचस्पी लेते हैं ? इस प्रसंग को मेरे सामने क्यों रखते हैं ? मैं कौन हूँ ? रेणु का मुझसे क्या सम्बन्ध है ?

एक दिन की बात कि जब श्रीधर घर से जंगल की ओर जा रहा था, तो नित्य के रास्ते से न जाकर दूसरे रास्ते पर चढ़ गया। उसी पथ पर रेणु का मकान पड़ता था। उसने देखा कि द्वार पर रेणु की माँ खड़ी हैं। परन्तु जब श्रीधर पास पहुँचा, तो उसने अपना मुँह फेर लिया। यह देख, श्रीधर अपने-आप मुसकराया। वह चाहता, तो सीधा चला जाता। परन्तु, जब उसने रेणु की माँ को उस प्रकार का नाटकीय अभिनय करता पाया, तो वह उस द्वार पर जाकर रुक गया और बोला—'चाची, राम-राम।'

बलात् रेणु की माँ ने आवाज़ सुनी, तो झुककर देखा। उसने कहा—अरे, तुम श्रीधर···

श्रीधर ने कहा—'हाँ, चाची ! कहो अच्छी हो ! जगराम के बच्चे अच्छे हैं।'

चाची ने कहा—'हाँ, भैया, सब अच्छी तरह हैं ! तू तो ठीक है। कब आया ?'

श्रीधर ने कहा—'चार दिन का समय हो गया।'

वह बोली—अच्छा, अच्छा। तूने बड़ा काम किया, भैया ! जगराम बता रहा था।'

श्रीधर ने आगे पैर बढ़ाया और कहा—'अच्छा, फिर आऊँगा। अब जंगल की तरफ जाऊँगा।'

उसने कहा—'हाँ, हाँ, आना।'

श्रीधर आगे बढ़ गया और वह खुलकर हँसता हुआ बोला—'यह है, संसार ! लोग गिरगिट जानवर को रंग बदलता देखते हैं, पर यह आदमी···इस औरत ने कितनी जल्दी रूप बदल दिया। एक दिन यही रेणु की माँ मुझे बुलाती थी, बैठाती थी, खिलाती थी, पर आज इसने समझ लिया न कि श्रीधर हमारे काम नहीं आयेगा।'

श्रीधर आगे बढ़ा जा रहा था कि तभी सामने पड़े, मन्दिर के बाबा ने मन्दिर के चबूतरे पर से ही श्रीधर को देखा, तो आवाज दी। अपने पास बुलाया। श्रीधर उधर ही मुड़ गया।

पास जाकर उसने बाबा को हाथ जोड़े और कहा—'आप अच्छे हैं ! बाबाजी !'

बाबा ने कहा—'गाँव में आकर भी, मन्दिर पर नहीं आते। अब बड़े हो गये हो···बड़े आदमी ? क्यों।'

श्रीधर चुप लगा गया और बोला—'हाँ, बाबा ! यहाँ आने का ध्यान नहीं आया। मेरा अपराध बन गया।'

बाबा ने कहा—श्रीधर, मैं तुम्हारी विवशता समझता हूँ। वैसे मैंने सुन लिया था कि तुम आये हो। तुम्हारी माँ ने ही मुझे आकर बता दिया था। तुम्हें तो पता हो या नहीं, जिस दिन तुम आये, तो तुम्हारी माँ ने भगवान के चरणों में प्रसाद चढ़ाया था। बच्चों को प्रसाद बाँटा था।'

श्रीधर ने कहा—मेरी माँ को यही सूझता है।'

बाबा ने कहा—श्रीधर, वह तुम्हारी माँ है। जब उसके बेटे की कोई प्रशंसा करता है, तो उसे अच्छा लगता है।'

श्रीधर ने कहा—'माँ को अधिक ममता है।'

बाबा बोला—'वह माँ है। उसने तुम्हें पैदा किया है। यह कहते हुए बाबा रुक गया और बोला—'मैंने यहीं मन्दिर से देखा कि तुम रेणु की माँ के पास खड़े हो। कहो तो, क्या कहती थी, रेणु की माँ।'

सीधे-स्वभाव श्रीधर ने कहा—'कहती थी, कब आया ? ठीक तो रहा ?'

बाबा ने क्षुब्ध बनकर कहा—'चालाक औरत ! कल तो वह मुझसे आकर तुम्हारी बात कहती थी । वह स्वयं बताती थी कि यह श्रीधर ऐसे ही रहेगा···किसी दिन साधु बन जायेगा ! माँ मरी नहीं। तो इस गाँव से भी सम्बन्ध तोड़ देगा ! वह औरत···।

श्रीधर ने कहा—'हाँ, बाबाजी ! मेरा इस गाँव में क्या है ! जब माँ नहीं रहेगी, तो मैं कहीं भी जिन्दगी के दिनों को बिता दूँगा ।'

स्नेह-भाव से, उस बूढ़े बाबा ने श्रीधर की ओर देखा और कहा—'तुम जहाँ रहोगे, वहाँ के समाज का सरस और मृदु स्नेह पा सकोगे ! तुम जंगल में भी एकाकी और अकेला नहीं रहोगे ।'

हँसकर श्रीधर ने कहा—'जंगल के जानवर मेरी भाषा नहीं समझेंगे, बाबाजी !'

किन्तु बाबाजी ने गम्भीर बनकर कहा—'नहीं, श्रीधर ! इन्सान की भावना और मन की बात जानवर भी समझते हैं ।'

सुनकर श्रीधर ने अपना मत नहीं दिया । वह बाबा की उस कोठरी को देखने लगा कि जिसमें प्रायः वही समान था कि जो कुछ वर्ष पूर्व वह देख सका था ।

बाबा ने कहा—'श्रीधर, यह दुनियाँ बड़ी नादान है, बड़ी क्रूर है, आदमी को बदलते क्या देर लगती है ।'

श्रीधर ने कहा—बाबाजी, आदमी आखिर आदमी है, कमजोर है। अपनी आवश्यकता को प्रमुखता देना ही, इसका काम है ।'

बाबा ने कहा—'यही जड़ता है, मूर्खता है ।'

कडुवे भाव से श्रीधर मुसकरा दिया—'अभी तो यही है । इसी परम्परा की मान्यता है ।'

बाबा ने कहा—'मैं सोचा करता हूँ, यह देवता क्यों है, इसकी पूजा क्यों ! जो इस मन्दिर पर अर्चना करने आते हैं, मैं उन सभी के काम

में कालिमा देखता हूँ।'

· श्रीधर ने आतुर बनकर कहा—'यह भी है। आदमी एक ही समय दोनों काम करता है। प्यार करना और हत्या करना इस आदमी को आता है। एक आदमी दोनों रूप स्वीकार करता है।'

इतनी बात सुनकर बाबा जैसे अशक्त बन गया। विक्षुब्ध भी हो गया। वह अपनी बूढ़ी आँखों से मन्दिर के चबूतरे पर खड़े पीपल के पेड़ की ओर देखने लगा। उसी ओर देखते हुए उसने कहा—'बेटा, यह रहेगा तो जरूर, यह मनुष्य शांति और सुख नहीं पा सकेगा। ऐसे क्या यह आदमी सुगमता से समझा जायगा!' यह कहते हुए उसने झटका-सा खाया और श्रीधर की ओर देखकर कहा—'वह कान्त कौन है, कोई मिनिस्टर? सुना, कि ठाकुर की लड़की रेणुबाई उसीके यहाँ है। वह ठाकुर का सम्बन्धी है।'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, सम्बन्धी है, मिनिस्टर है।'

साधु ने कहा—'तो तभी लड़की को वहाँ छोड़ दिया है। जब गाँव में एक बात चली थी कि जवान लड़की को घर से दूर श्रीधर के पास भेज दिया, पर अब कहा जाता है कि उस मिनिस्टर के पास इसलिये भेजा गया है कि वह सम्बन्धी है! बोलो, यह कैसा सौदा है! क्या यही समाज का नियम है। मान्यता है!'

श्रीधर ने कहा—'बबा, इसमें आपत्ति क्या है?'

बाबा ने अपने सर पर जोर देकर कहा—'तुम आपत्ति की बात कहते हो, मेरा बस चले, तो ऐसे आदमियों का गला घोंटा जा सकता है। ऐसे माँ-बाप ने अपने अधिकार का दुरुपयोग किया है।'

इतनी बात पर ही, श्रीधर हल्के-भाव से मुस्करा दिया। वह बोला—'आपको गुस्सा आया है। पर आज यह भी चलता है। माना जाता है।'

बाबा बोला—'आज परम्परायें मिट रही हैं। पुराने संस्सकारों की होली जलायी जा रही है।'

श्रीधर हँस दिया—'यही होता है, बाबा !'

बाबा ने और अधिक उत्तेजित होकर कहा—'हाँ, हाँ क्यों नहीं होगा। यह इन्सान अपने चरित्र को चुल्लू में पी जाना चाहता है। निर्लज्ज बन गया है। अब इस ठाकुर के पास कुछ पैसा आ गया है, तो······'

बीच में ही श्रीधर बोला—'बाबा, आज पैसे का यही अर्थ है। उन्नति-पथ प्रशस्त करना सभी को पसन्द आता है।'

बाबा ने कहा—'लोग धर्म को भूल रहे हैं। जीवन के भोग प्राप्त करने के लिये लोग अपने प्रति ही अमानुषीय बन गये हैं।'

श्रीधर ने बाहर की ओर देखते हुए कहा—'बाबा, यह विज्ञान का युग है। भौतिक तत्वों की खोज में इन्सान की होड़ लगी है। इसीलिये धर्म की दीवारें गिरायी जा रही हैं। उनकी मान्यतायें नष्ट की जाती हैं।'

बाबा ने साँस भरी और अपना सिर झुका दिया। श्रीधर भी खड़ा हो गया।

तभी चौंककर बाबा ने कहा—'बेटा, तुम अपना ध्यान रखना। इस गाँव में जहरीले कीड़े अधिक पैदा हो गये हैं। वे काटते हैं। आदमी को मारना पसन्द करते हैं।'

श्रीधर ने कहा—'बाबा, आप चिन्ता न करें। मुझे भगवान् पर भरोसा है। इस जगत में जो कुछ होता है, वह सब नियति के आदेश पर ही सम्पादित किया जाता है। मुझे भी उसीके निर्देश पर चलना है।'

श्रीधर मन्दिर से चल दिया। वह गाँव से बाहर निकल गया। जंगल में जाकर, जब वह फिर कई घण्टे बाद गाँव की तरफ लौटा, तो अभी गाँव के किनारे जाकर ही लगा था कि तभी एक घर के द्वार पर, बूढ़े और अशक्त रामाधीन चमार को उदास और खिन्न पाया देख,

वह बरवस ही रुक गया और उसके सामने खड़े होकर बोला—'क्यों रामाधीन······।'

रामाधीन उस समय श्रीधर को पहचान नहीं सका। अतएव, बोला—'कौन···?'

'मैं श्रीधर।'

'अच्छा, श्रीधर बाबू!' रामाधीन ने साँस भरी और कहा—'बाबू, मेरे सिर पर मुसीबत आयी है' मेरा लड़का···उसने घोटों पर सिर पटक दिया, रोने लगा।'

श्रीधर और आगे बढ़ा और बोला—'बात क्या है?'

रामाधीन ने कहा—'बीमार है, लड़का! लाला के पास गया, तो उसने साफ इन्कार कर दिया। जमींदार को अपना पूरा खेत देकर इतना रुपया भी नहीं पा सका कि जिससे···

श्रीधर जैसे किसी प्रेरणावश चबूतरे पर चढ़ गया और बोला—'कहाँ है, तुम्हारा लड़का! मैं देखूँगा।'

बात सुनी, तो रामाधीन कमर पकड़कर खड़ा हो गया। वह श्रीधर को लेकर अन्दर गया। बीमार की चारपाई के पास जाकर श्रीधर ने देखा कि सच, रामाधीन का वह लड़का सख्त बीमार है। पर कैसी बात कि गाँव में रहकर भी कोई उसका नहीं है। उसकी जाति का भी कोई उसका नहीं। जब श्रीधर बीमार की चारपाई के पास जाकर खड़ा हुआ, तो तभी बीमार की जवान स्त्री ने श्रीधर के पैर पकड़ लिये। माँ ने अपने हाथ आगे बढ़ाये। यह देख, श्रीधर तुरन्त ही पीछे हट गया और बोला—अरे, रामाधीन···'

रामाधीन चीख पड़ा—'बाबू, मेरा सहारा···'

श्रीधर ने जेब से दस रुपये का नोट निकाला और उसके हाथ पर रखकर कहा—'कस्बे में बंगाली डाक्टर के पास जाना। मेरा नाम लेना। वह आयेगा। चिन्ता न कर। भगवान् भला करेगा।'

उसी समय रामाधीन की जवान लड़की ने रोते हुए कहा—बाबू, आप ही हमारे भगवान्... '

'ओह, तू कैसी बात करती हैं, री लखिया । हम सब एक हैं। चमार और ठाकुर क्या दो हैं । तू तो हमारे यहाँ लीपने-पोतने जाती है । तो समझ, तेरा भाई मेरा भी भाई है । यह कहते हुए वह घर से बाहर निकला और अपने घर की ओर चल दिया। जब श्रीधर घर पहुँच गया, तो उस समय दीये जल चुके थे । जंगल से चौपये अपने-अपने घरों को लौट आये थे । किसान भी अपने घरों से लौट रहे थे ।

माँ ने कहा—'श्रीधर रोटी खा ले ।'

श्रीधर ने कहा—'अच्छा ।'

उसी समय माँ ने फिर कहा—'रेणु की माँ के पास गया था ?'

श्रीधर ने बात सुनी, तो कहा—'गया तो नहीं था, पर रेणु की माँ मिली थी । घर के द्वार पर खड़ी थी ।'

माँ बोली—'अब वह मुझसे नहीं बोलती । रास्ते में मिलती है, तो मुँह फेरकर निकल जाती है ।'

बात सुनी तो श्रीधर ने अपना मत नहीं दिया । उसने नहीं कहा कि रेणु की माँ ने आज उसके साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया ।

श्रीधर रोटी खाने बैठ गया तभी माँ ने कहा—'शायद रेणु की माँ का यह अच्छा नहीं लगा कि तू ने उसकी लड़की से अच्छा व्यवहार नहीं किया ।'

श्रीधर ने कहा—'इसका मतलब क्या माँ ।'

माँ बोली—'यही, उससे ब्याह कर लेता, तो उन्हें कोई दुःख न होता ।'

श्रीधर ने कहा—'माँ, यह ब्याह की बात आसान नहीं थी । मैं उत्सुक नहीं था । जो मेरी पत्नी बने , उसे समझना भी मेरा काम था। रेणु के लिये यही हितकर था । मुझे सन्तोष है कि दोनों ने सत्य को

समझ लिया। एक ने दूसरे को इस सम्बन्ध के लिये अयोग्य पा लिया।'

माँ न कहा—'बेटा, व्याह ऐसे नहीं हुआ करते। दुकान के सौदे की तरह उसे नहीं परखा करते।'

श्रीधर बोला—नहीं, माँ ! एक दूसरे को समझा जाता है। लम्बी जिन्दगी का सफर ऐसे ही कटता है।'

माँ ने सीधे-स्वभाव कहा—'पहले तो ऐसा नहीं था।'

श्रीधर बोला—'पहले नारी को अन्धेरे में रखा गया था। नारी के साथ न्याय नहीं किया गया।'

माँ बोली—'पहिले न लड़की देखी जाती थी, न लड़का। नाई ब्राह्मण ही सम्बन्ध की बात करते थे।'

श्रीधर हँस दिया—'वह भी बुद्धिमानी का काम नहीं था।' वह बोला—'मुझे हर्ष है कि रेणु के माता-पिता ने दूसरा रास्ता देख लिया। रेणु ने भी मुझे समझ लिया।'

माँ बोली—'पर बेटा, यह घर।'

'हाँ, माँ ! यह घर भी रहेगा। तुझे इस घर के लिये एक औरत चाहिये न, तो जहाँ चाहे मेरा ब्याह करा दे। मैं स्वीकार कर लूँगा। अब तक मैं अपने लिये पत्नी की बात सोचता था, अपने अनुरूप ही नारी की कल्पना करता था, तो वह मैं नहीं पा सका। मैं अपने प्रयत्न में असफल हो गया।'

हर्षित बनकर माँ ने कहा—'तो तू कहता है ?'

श्रीधर ने कहा—'हाँ माँ ! तुम्हारे सुख के लिये मैं सब कुछ कर सकूँगा। इस घर में जो औरत आये, यह जरूरी नहीं कि वह सुन्दर हो। हाँ स्वस्थ और चतुर तो होनी ही चाहिये।' यह कहते हुए श्रीधर भोजन से खड़ा हो गया। जब वह पानी से अपना मुँह साफ कर चुका तो माँ ने कहा—'जतगपुर गाँव में एक लड़की है। उसका बाप मेरे

पास आ चुका है।'

श्रीधर ने वहाँ से जाते हुए कहा—'तुम बात कर लेना, माँ! उससे कह देना।'

अभी श्रीधर घर से कुछ दूर ही चला था कि तभी मोहल्ले का एक जवान लड़का उसके सामने पड़ा। श्रीधर को देखते ही बोला—'क्यों भैया, एक बात सुनोगे?'

श्रीधर रुक गया। उसकी ओर देखने लगा।

जगना नाम के उस युवक ने पास आकर कहा—'आज तुम उस रामाधीन चमार के घर गये थे, क्या? अभी शाम को?'

बात सुनी, तो चकित बनकर श्रीधर ने जगना की ओर देखा। तभी उसने कहा—'हाँ गया था, तो—?'

जगना बात काट गया और बोला—'यों ही पूछा था?'

श्रीधर बोला—'रामाधीन का लड़का मलखू सख्त बीमार है। मैं उधर से निकला तो ···'

'मलखू बीमार है। कब से?' जगना कुछ और पास आ गया। वह फिर अधिक तल्लीनता लेकर बोला—'तो इसलिये गये थे, तुम,—ओह!'

श्रीधर का माथा ठनक गया। वह बोला—'क्यों, कोई नई बात!'

जगना ने कहा—'भैया, बात तो नयी है। भद्दी भी है। मैं कहना नहीं चाहता। पर जब मुँह पर आ गयी है, तो···

श्रीधर ने कहा—भद्दे आदमियों में भद्दी बात को छोड़ और क्या होगा? 'कहो क्या बात है!'

'अभी चौपाल पर जगपाल कहता था कि श्रीधर बाबू रामाधीन की लड़की पर डोरा डालते हैं। उसके घर जाते हैं।'

'ओह यह बात! श्रीधर हँस दिया। वह बोला—जगपाल बुद्धिमान् है। वह अपने बाप का ठीक प्रतिनिधित्व करता है।'

किन्तु जगना लाल पड़ गया। बोला—वह झूठा प्रचार करेगा, तो

उसका सिर फोड़ दिया जायेगा, भैया जमींदार का बेटा है। यह भी भुला दिया जायेगा।'

श्रीधर ने कहा—नहीं, नहीं; 'तेज मत बनो। बुद्धि से काम लो। सहनशीलता को न छोड़ो। समय हो, तो रामाधीन के घर जाकर उस बूढ़े को सान्त्वना दो, उसकी मदद करो।' और यह कहते ही, वह तेजी के साथ, मन्दिर की ओर चल दिया।

बीस

कान्त का वैभव और उसके जीवन का ढंग, मानो रेणुबाई के लिये सभी कुछ अलौकिक था। यद्यपि, रेणु शीक्षित थी, परन्तु शहरी वातावरण और उस ऊँचे स्तर के रहन-सहन में अपने आपको अभ्यस्त सिद्ध करना, उसके लिये सरल नहीं था। कान्त के बँगले में जो अर्दली और नौकर थे, उन्हीं की वेश-भूषा को देख, रेणु को लगता कि गाँव और उस नगर के जीवन में मानों आकाश-पाताल का अन्तर था। किन्तु फिर भी कान्त और उसकी माँ ने रेणुबाई में कोई ऐसी कमी नहीं पायी कि जो शहरी नारी के समक्ष अनुभव की जाती हो। कदाचित् यही कारण था कि कान्त अपने सरकारी काम-काज से छूट कर जब किसी समारोह अथवा भोज में आमन्त्रित किया जाता, तो वह रेणुबाई को ले जाना न भूलता। कुछ साड़ियाँ, ब्लाऊज और अन्य शहरी ढंग की वस्तुयें भी रेणुबाई के लिये आ गयी थीं। उन सब को धारण कर निःसन्देह, रेणु अप्सरा से कम न लगती।

अवकाश के दिन, एक बार जब कान्त पिकनिक पर गया, तो वह माँ और रेणु को भी साथ ले गया। वह पहाड़ी स्थान था। दूर हिमालय की चोटी पर बर्फ दिखाई देती थी। माँ को बैठी छोड़ कान्त और रेणु एक पहाड़ की चोटी पर चढ़ गये थे। उसी समय जंगली फूलों से भरी झाड़ी में आकर खड़े होकर कान्त ने कहा—'अहा, कैसा सोहावना मौसम है ! मन कहता है, यहीं रम जाऊँ !'

रेणु ने बात सुनी और मुसकरा दिया। तभी उसने कान्त की आँखों में झाँककर कहा—'भाई के पत्र का उत्तर दे दिया। क्या लिखा ?'

पत्र की बात सुनते ही, कान्त कुछ और समीप खिंच आया और

बोला—'उस पत्र का उत्तर तो तुम्हें देना होगा, रेणुबाई ! स्वीकृति तुम्हारी चाहिये।'

रेणु का मुँह झुक गया। वह इतनी शरमायी कि उसके गालों पर ललाई का गहरा रंग छा गया।

तभी कान्त से कहा—'यह विषय सुखकर है कि यदि हम दोनों एक दूसरे के जीवन में समा जायें।'

रेणु ने कहा—'उत्तर दे दीजिये। फिर मुझे घर लौटना होगा। अभी तो यही संगत होगा।'

बात सुनी तो कान्त हँस दिया। वह झाड़ी का एक फूल तोड कर रेणु की वेणी में लगाता हुआ बोला—'चाहता हूँ, तुम सदा इसी प्रकार खिलती रहो, इस फूल के समान मेरे प्रति तुम्हारी जो भावना आज है, वह भी अमर रहे।'

उसी समय रेणु ने मुँह उठाया और कहा—'कवि तो नहीं है आप, पर कविता करते है।'

जैसे आलोड़ के स्वर में, एकाएक कान्त ने कहा—'तुम्हें पाकर मैं कवि बन गया हूँ। तुम्हारे समीप बैठकर मैं एक अजीब तरह का उन्माद अनुभव करने लगा हूँ, रेणुबाई !'

सुना, तो रेणु ने अपने श्वेत फेनिल सरीखे दाँतों से हँस दिया।

कान्त बोला—'माँ का कहना है कि रेणु सरीखी सुशील और सुन्दर लड़की मैं नहीं देख पाती।'

जोर से हँसते हुए रेणु ने कहा—'आप मेरा उपहास करते हैं।'

तुरन्त ही कान्त ने कहा—'नहीं, नहीं, मै तुम्हारा उपाहस नहीं कर सकता। बस, इतना मैं भी सोचता हूँ कि जिस रेणु से बचपन में लड़ा, साथ में खेला, उसके साथ, जीवन का यह सफर सुखपूर्वक ही कटेगा। जब बाढ़-पीड़ित कैम्प में तुम्हें देखा, तो एकाएक सोच नहीं पाया कि इतना महान् परिवर्तन तुममें कैसे आ गया। तुम्हारा ज्ञान भी अच्छा हो गया। शायद श्रीधर ने...'

रेणु ने कहा—'निःसन्देह, मैं श्रीधर बाबू की ऋणी हूँ। उन्होंने मुझे बहुत कुछ दिया है।'

कदाचित् कान्त इतना नहीं सुनना चाहता था। उसे आशा थी कि रेणु के समक्ष जब श्रीधर का नाम आयेगा, तो वह उपेक्षा से टाल देगी। जो कुछ कहा है, उसे भी अस्वीकार कर देगी। किन्तु जब अपनी आशा के अनुकुल कान्त नहीं सुन पाया, तो स्वभावतः ही, उसका मन उदास हो गया। जब से रेणु उसके पास आयी, तो श्रीधर का नाम उस दिन ही आया। कान्त स्वयं उसका उल्लेख नहीं करना चाहता था। क्योंकि उसके मन में यह बात थी, उसने यह समझ लिया था कि श्रीधर और रेणु का सम्बन्ध अधिक घनिष्ट हो गया है। दोनों ने एक दूसरे के साथ मिलकर काम किया है। इसलिये वह जान-बूझकर श्रीधर का उल्लेख करते कतराता था। लेकिन जब वह उस समय प्रसंग छेड़ बैठा, रेणु का मत भी प्राप्त हो गया, तो कान्त ने समझा कि इस रेणु के कथन में विश्वास है, श्रद्धा है, और अपनापन है। तो क्या यही उसने रेणु से प्राप्त कर लिया है? जब यह प्रश्न पैदा हुआ, तो वह अपने आप में खो गया। उसे लगा कि वह राज्य-स्तर पर देश की समस्याओं को सोचने-समझने वाला व्यक्ति, समाज के रंगमंच का अभिनेता; जब रेणु के विषय पर टिका तो वह उसी प्रकार सोचने-समझने के लिये विवश हुआ कि जिस तरह एक साधारण व्यक्ति अनुभव कर सकता था। श्रीधर के प्रति जिस तरह जहरीला धुआँ उसके अन्तर में घुटा, यद्यपि वह उसे प्रगट नहीं कर सका, परन्तु स्वयं परेशान बन गया।

कान्त को मौन देख, कुछ क्षण बाद ही, रेणु ने कहा—'कान्त जी, उस श्रीधर बाबू के कुछ बँधे-बँधाये सिद्धान्त हैं। जो सर्वथा मौलिक न होते हुए भी अभूतपूर्व हैं। मैं सोच नहीं पाती कि वह व्यक्ति अपने प्राणों में किस मान्यता को प्रधानता देता है। जीवन के बहुत से भौतिक तत्वों को न मानकर, मुझे यह भी लगता है कि वह श्रीधर...'

कान्त ने कहा—'रेणुबाई, उस श्रीधर को समझना आसान नहीं।

तुम्हारे लिये सुगम नहीं।'

किन्तु तभी रेणु ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'नहीं, नहीं वह समझा जाता है। श्रीधर गहरा नहीं है कि खोजा न जाय।'

मानों कान्त की छाती पर फिर घूँसा लगा। उससे एकाएक बोला नहीं गया।

तभी रेणु ने फिर कहा—'उस श्रीधर के मन में कुछ नहीं है—'सचमुच !'

बात सुनी तो कान्त सरल भाव से हँस दिया। वह रेणु की ओर देखने लगा।

रेणु ने कहा—'मुझे लगता है कि श्रीधर अपने जीवन में नारी को कभी मान्यता नहीं देगा। वह विवाह नहीं करेगा।'

मानो कान्त ने अपने मन के अनुरूप बात पायी, वह तुरन्त ही बोला—'क्यों, यह कैसे ? क्या तुमने विवाह का प्रस्ताव किया था ? मेरा मत है कि तुम्हारे माता-पिता ने···'

रेणु ने बीच में ही कहा—'मेरा प्रश्न नहीं। कभी नहीं।'

बलात् कान्त हँस दिया। वह उस पहाड़ की चोटी से लौट पड़ा। जब वे दोनों फिर माँ के पास आये, तो तब तक नौकर ने खाने का बहुत-सा सामान तैयार कर लिया था। माँ ने रेणु को देखकर कहा—'बेटी, तुम दोनों खाओ।'

रेणु ने कहा—आप खायें, 'माताजी !'

कान्त की माँ बोली—'अरे, बच्चे-बच्चियाँ खाते अच्छे लगते हैं, या मैं ! तुम दोनों बैठो। और तभी नौकर की ओर देखकर कहा—'अरे, छुटकू ! अब कढ़ाई में पकौड़ी छोड़ दे। गरम-गरम खायेंगे ये दोनों !'

लेकिन रेणु वहाँ पहुँच गयी कि जहाँ छुटकू खाने का सामान तैयार कर रहा था। उसने कहा—'मैं बनाती हूँ···'

तब बीच में ही, छुटकू बोला —'मेमसाहब आप···'

'मेमसाहब' का शब्द अब रेणु के लिये नया नहीं रह गया था।

एकाएक जब सुना, तो उसे अटपटा लगा था ! कहने वाले को रोका भी था। शायद उस छुटकू से भी कहा था। रेणु ने उसे बीबीजी कहने को कहा था। किन्तु उस समय जब फिर उसके मुँह से मेमसाहब, निकला, तो रेणु ने विरोध नहीं किया। मानो उस सम्मान को स्वीकार कर लिया।

दूर बैठी कान्त की माँ ने कहा—'अरी, रेणु, तू इधर आ जा। बैठ जा ना।'

रेणु लौट गयी। वह कान्त के पास जा बैठी। उस समय कान्त उस दिन का अखबार उठा कर देखने लगा था। रात नहीं पढ़ सका था। उसी अखबार का एक पेज रेणु ने भी उठा लिया। तभी एक समाचार की ओर लक्ष्य कर कान्त ने कहा—'ये तुम्हारे श्रीधर बाबू···'

बीच में ही, रेणु ने कहा—'क्या···'

अब गाँवों में प्रचार करने लगे हैं। कहते हैं कि राज्य बदला तो क्या हुआ, इन्सान नहीं बदला। नीयत नहीं बदली। मूर्ख कहीं का ! अंगूर खट्टे हैं।'

रेणु ने बात सुनी, तो सहमे-भाव से कान्त की ओर देखा। उसने तुरन्त कहा—'तो आपत्ति क्या।'

कान्त ने अखबार से मुँह उठाकर कहा—'अजी दूसरा देश हो, तो गोली मार दी जाय, ऐसे आदमी को ! जरा किसी कम्युनिस्ट देश में तो जाकर कहे, ऐसी बात ! जनता के सामने तो क्या, घर के अन्दर बैठ कर भी नहीं कह सकेगा। वहाँ दीवार के भी कान होते हैं। भय रहता है।'

रेणु ने खिन्न बनकर कहा—'तो क्या यह अच्छा है। इन्सान के विचार और आत्मा की वाणी को मारना उचित कहा जा सकता है ?'

कान्त ने अखबार पटक दिया और बोला—'यही उचित है, इस देश के लिये ! यहाँ लोग बे-समझे बात करते हैं। रात-दिन सरकार की आलोचना करके देश का वातावरण गन्दा करते रहते हैं।'

'कान्त बाबू !' रेणु ने उसे सम्बोधित किया और तभी रुककर साँस लेते हुए कहा—'इस देश का दुर्भाग्य ही ऐसा है कि जो शासन की कुर्सी पर बैठ गये हैं, वे अपने को भूल चुके हैं। वे लोग देश की अवस्था की ओर से भी आँख फेर रहे हैं। देखते हैं आप कितना भ्रष्टाचार है··· पाप···'

बीच में ही कान्त ने जोर का ठहाका मार दिया। उसने पास बैठी रेणु को भी चौंका दिया।

किन्तु रेणु ने क्षुब्ध स्वर में कहा—'आप हँसते हैं! देश की विवशता का उपहास करते हैं!'

हँसी रोककर कान्त बोला—'नहीं नहीं, मैं कहता हूँ तुम भी वास्तविकता से दूर हो। मैं तो शासन के काम से सम्बन्धित हूँ। इस बात को समझता हूँ। ये जितने व्यक्ति सरकार के विरुद्ध नारा लगाते हैं, भ्रष्टाचार की बात करते हैं, सरकार की तरह ये लोग भी भ्रष्टाचारियों से रुपया प्राप्त करते हैं। उसीसे अपने संघ को बल देना चाहते हैं।'

रेणु ने कहा—'समस्या का यह हल नहीं है। यह उचित तर्क भी नहीं।'

उसी समय फासले पर बैठी माँ ने कहा—'अरे बहस करते हो! आओ।'

रेणु ने देखा कि छुटकू खाने का सामान रख गया। साग, पूरी, पकौड़ी, अचार। उस ओर देखकर, रेणु ने कहा—'हाँ, खाना शुरू करो, कान्त जी!'

कान्त ने कहा—'हाँ, हाँ, खाओ।'

दोनों खाने लगे। तभी कान्त ने कहा—'स्वतन्त्रता आयी है, तो इस देश में अनेक पार्टियाँ बन गयीं। सभी के अलग-अलग नारे बन गये। जिनका ध्येय है—'सरकार का विरोध! सरकारी गद्दी का हस्तान्तरण।'

उसी समय रेणु के मन में बात उठी कि एक बार, जब इस कान्त का प्रसंग चला, तो तभी वर्तमान सत्तारूढ़ बनी सरकार के प्रति अपने विचार प्रगट करते हुए, श्रीधर ने कहा था कि उस देश के लिये जन-तंत्र ठीक नहीं, अभी नहीं। यह देश डण्डा खाने का आदी है। परन्तु तभी श्रीधर ने कहा था कि यदि सरकार ईमानदार हो, अपने उत्तरदायित्व का भली-भाँति पालन कर पाती हो, तो शासन ठीक भी चल सकता है। लेकिन इस समय तो न सरकार ठीक है, न समाज। मानो दोनों ही मिल-जुल कर एक मुर्दे का गोश्त खा रहे हैं······उसकी खाल नोंच रहे हैं।

रेणु को कुछ सोचती पाकर, धीरे-धीरे हाथ चलाती देख, कान्त ने कहा—'खाओ न, खाओ! देखो मैं कितना खा गया।'

रेणु चौंक गयी और फिर तेजी से हाथ चलाने लगी।

यह देख, कान्त हँस दिया। वह बोला—'सचमुच, तुम अधिक भावनामयी हो। नारी हो न, तो किसी बात को सुनकर दिमाग में रखती हो, दिल में उतारती हो।'

हँसकर रेणु ने कहा—'औरत तो हूँ ही, आपसे कमजोर!'

कान्त ने कहा—'नहीं, नहीं, शहजोर हो! कम-से-कम मुझसे बलवान हो।'

उस समय छुटकू गरम पकौड़ियाँ लेकर आया और रेणु की ओर देखकर बोला—'मेमसाहब, पूरी, साग···'

रेणु ने हँसकर कहा—'अरे मेरा तो पेट भर गया। तुम अपने साहब···'

कान्त बोला—'मैं खा रहा हूँ, तुम केवल साथ दे रही हो।'

लेकिन उस समय जो कौतुक और हलचल-सी रेणु के मानस में परिव्याप्त हुई, वह इसलिये कि उसने 'मेम साहब' और 'साहब' की जो सन्धि स्थापित की तो जैसे वह उसके लिये नवीन थी; अचानक थी। इसलिये वह अनायास ही अपने आप में खो गयी।

उसी समय कान्त की माँ पास आयी और एक डिब्बे से रसगुल्ले निकाल कर रकाबी में रखती हुई बोली—'तुम दोनों ने अभी तक नमकीन ही खाया, मीठा नहीं ! लो ये रसगुल्ले खाओ ।'

रसगुल्ले देखकर कान्त बोला—'अरी माँ, खूब ! ये कब-कब में मँगा लिये !'

माँ ने कहा—'मैंने रात ही बाजार से मँगवा लिये थे। सोचती थी कि तुम दोनों—'

रेणु ने कहा—'अम्मा जी, इनका तो मुझे भी पता नहीं ।'

माँ ने कहा—'तब तू कान्त के साथ पार्टी में गयी थी। सोचती थी कि इसे कान्त को पसन्द आते हैं, रसगुल्ले !'

इतनी देर में कान्त तीन-चार रसगुल्ले खा चुका था। उसने रेणु की ओर देखकर कहा—'खाओगी नहीं, खाओ।'

रेणु ने कहा—'बस, बस !'

माँ ने कहा—'अरी, अभी से ! खाओ और घूमो ।'

रेणु ने हँसकर कहा—'बस, अम्मा जी ! गले तक पेट भर गया।'

कान्त ने कहा—'माँ, साथ खाने में भ्रम रहता है। मैंने अधिक खाया, इस रेणु ने नहीं ।'

किन्तु रेणु खड़ी हो गयी और बोली—'आप राजनीति में विश्वास रखते हैं। मैं नहीं। सत्य को सत्य कहना ही मुझे आता है।'

कान्त ने कहा—'इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति राजनीति का उपयोग करता है उससे लाभ उठाना चाहता है।'

तुरन्त ही रेणु ने कहा—'राजनीति धोखा है। मुंह में राम और बगल में छुरी रखने जैसा प्रमाण ही आज की राजनीति से मिलता है। आदमी कहाँ है, क्या है, यह क्या समझा जाता है।'

कान्त ने कहा—'रेणुबाई, आदमी परिस्थिति का दास है। उसके अनुरूप ही आचरण करता है। समय के अनुसार आदमी न बदले, तो वह पिछड़ जाता है। अवसरवादी आदमी ही, इस जगत के अभिनय में

उसी समय रेणु के मन में बात उठी कि एक बार, जब इस कान्त का प्रसंग चला, तो तभी वर्तमान सत्तारूढ़ बनी सरकार के प्रति अपने विचार प्रगट करते हुए, श्रीधर ने कहा था कि उस देश के लिये जन-तंत्र ठीक नहीं, अभी नहीं। यह देश डण्डा खाने का आदी है। परन्तु तभी श्रीधर ने कहा था कि यदि सरकार ईमानदार हो, अपने उत्तरदायित्व का भली-भाँति पालन कर पाती हो, तो शासन ठीक भी चल सकता है। लेकिन इस समय तो न सरकार ठीक है, न समाज। मानो दोनों ही मिल-जुल कर एक मुर्दे का गोश्त खा रहे हैं······उसकी खाल नोंच रहे हैं।

रेणु को कुछ सोचती पाकर, धीरे-धीरे हाथ चलाती देख, कान्त ने कहा—'खाओ न, खाओ! देखो मैं कितना खा गया।'

रेणु चौंक गयी और फिर तेजी से हाथ चलाने लगी।

यह देख, कान्त हँस दिया। वह बोला—'सचमुच, तुम अधिक भावनामयी हो। नारी हो न, तो किसी बात को सुनकर दिमाग में रखती हो, दिल में उतारती हो।'

हँसकर रेणु ने कहा—'औरत तो हूँ ही, आपसे कमजोर!'

कान्त ने कहा—'नहीं, नहीं, शहज़ोर हो! कम-से-कम मुझसे बलवान हो।'

उस समय छुटकू गरम पथौड़ियाँ लेकर आया और रेणु की ओर देखकर बोला—'मेमसाहब, पूरी, साग···'

रेणु ने हँसकर कहा—'अरे मेरा तो पेट भर गया। तुम अपने साहब···'

कान्त बोला—'मैं खा रहा हूँ, तुम केवल साथ दे रही हो।'

लेकिन उस समय जो कौतुक और हलचल-सी रेणु के मानस में परिव्याप्त हुई, वह इसलिये कि उसने 'मेम साहब' और 'साहब' की जो सन्धि स्थापित की तो जैसे वह उसके लिये नवीन थी; अचानक थी। इसलिये वह अनायास ही अपने आप में खो गयी।

उसी समय कान्त की माँ पास आयी और एक डिब्बे से रसगुल्ले निकाल कर रकाबी में रखती हुई बोली—'तुम दोनों ने अभी तक नमकीन ही खाया, मीठा नहीं ! लो ये रसगुल्ले खाओ।'

रसगुल्ले देखकर कान्त बोला—'अरी माँ, खूब ! ये कब-कब में मँगा लिये !'

माँ ने कहा—'मैंने रात ही बाजार से मँगवा लिये थे। सोचती थी कि तुम दोनों—'

रेणु ने कहा—'अम्मा जी, इनका तो मुझे भी पता नहीं।'

माँ ने कहा—'तब तू कान्त के साथ पार्टी में गयी थी। सोचती थी कि इसे कान्त को पसन्द आते हैं, रसगुल्ले !'

इतनी देर में कान्त तीन-चार रसगुल्ले खा चुका था। उसने रेणु की ओर देखकर कहा—'खाओगी नहीं, खाओ।'

रेणु ने कहा—'बस, बस !'

माँ ने कहा—'अरी, अभी से ! खाओ और घूमो।'

रेणु ने हँसकर कहा—'बस, अम्मा जी ! गले तक पेट भर गया।'

कान्त ने कहा—'माँ, साथ खाने में भ्रम रहता है। मैंने अधिक खाया, इस रेणु ने नहीं।'

किन्तु रेणु खड़ी हो गयी और बोली—'आप राजनीति में विश्वास रखते हैं। मैं नहीं। सत्य को सत्य कहना ही मुझे आता है।'

कान्त ने कहा—'इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति राजनीति का उपयोग करता है उससे लाभ उठाना चाहता है।'

तुरन्त ही रेणु ने कहा—'राजनीति धोखा है। मुंह में राम और बगल में छुरी रखने जैसा प्रमाण ही आज की राजनीति से मिलता है। आदमी कहाँ है, क्या है, यह क्या समझा जाता है।'

कान्त ने कहा—'रेणुबाई, आदमी परिस्थिति का दास है। उसके अनुरूप ही आचरण करता है। समय के अनुसार आदमी न बदले, तो वह पिछड़ जाता है। अवसरवादी आदमी ही, इस जगत के अभिनय में

कुशल और प्रखर साबित होता है ।'

रेणु ने हँसकर कहा—'तो कहिये न, खूनी, चोर और डाकू के समान ही आज का राजनीतिज्ञ है । भेड़िया यदि गायें की खाल ओढ़ ले, तो वह भेड़िया या क्रूर नहीं रह जाता । अवसरवादी आदमी सब कुछ कर सकता है । वह सिद्धान्तहीन, आदर्शहीन और धर्महीन व्यक्ति क्या अपने विवेक का समाज-कल्याण के लिये उपयोग कर सकता है- - मेरा मत है, नही कदापि नही ! क्योंकि उसके पास साधना नही ! कर्म नहीं ! शाश्वत आस्था नहीं !'

कान्त ने देखा कि रेणु ने अपनी बात कही, तो जैसे उसने अत्यन्त विशद बनकर कही । क्योंकि उसका वह गोरा मुह तुरन्त रक्त प्लावित हो गया । यह देखकर, कान्त तो चुप रहा, पर उसकी माँ ने कहा 'हाँ, हाँ, रे, ठीक तो कहती है रेणु बाई ! किसी काम को करने के लिये आदमी साधना करता है । हमारे सभी ऋषियों ने पहिले साधना की थी । अपना जीवन तपाया था ।'

रेणु ने कहा—'अम्मा जी, दूर क्यों जाती हो, कुछ वर्ष पूर्व जिस श्वेत संन्यासी को लोगों ने जातिवाद के नाम पर गोली मार दी, उसकी हत्या कर दी, उस राष्ट्रपिता ने अपना जीवन आग में डाल कर तपाया था । उसने अपने मानस की शरीर की आहुति प्रदान की थी । तभी तो देश ऊपर उठा । झोंपड़ी से लेकर राजमहलों तक में उस अमर संन्यासी का मन्त्र गूंज उठा । विश्व के बड़े साम्राज्य की नींवें हिल उठी । आखिर यह सब क्यों ? इसीलिये न कि एक व्यक्ति का आत्म-त्याग, उसकी आत्मा की चेतना, जन-जन की आत्मा में बिजली की तरह कौंध गयी । उसने मुर्दा दिलों में प्राण डाल दिये । परतन्त्रता की अवस्था में पड़ा और सिसकता हुआ देश ऊपर उठा । वह जाग गया । पर आज '' आज तो अम्मा, उस सोपान को पाने वाले अपने आपको अयोग्य घोषित कर रहे है । वे मदान्ध बन गये हैं । पथ-भ्रष्ट हो चुके हैं । इसलिये न

कि उन पर अंकुश नहीं। आज देश में कोई त्यागी और सिद्धान्तवादी व्यक्ति नहीं।'

कान्त ने साँस भरी और छोड़ दी। वह कान्त की ओर देखकर बोली—ठीक तो कहती है रेणु ! रोज जलूस निकलते हैं। हड़तालें होती हैं। खून डाके···'

रेणु ने कहा—'अम्मा, आज तो लगता है कि देश के सभी पाप जाग उठे हैं। यानी देश की धरती से करोड़ों काले नाग निकल आये हैं। वे फूत्कार करते हैं। देश को खा जाना चाहते हैं।'

इतना सुना तो कान्त ठहाका मार कर हँस दिया। उसने कहा—'माँ, यह रेणु भी अब प्रतिक्रियावादी बनेगी। यह भी···'

माँ ने कहा—'बेटा मैं इतना कहाँ समझती हूँ। रेणु पढ़ी है। और अब तो समाज का काम भी करने लगी है। तभी तो कहती हूँ कि यह जोड़ी खूब मिली है। तू कोई काम करेगा, तो यह रेणु क्या चुप बैठी रहेगी···न, यह तो तेरे पीछे पड़ जायेगी। तुझे ऐसे ही साथी की आवश्यकता थी।'

कान्त ने हँसकर कहा—'माँ बड़ा कठिन रहेगा। मेरा काम भी बढ़ जायेगा।'

माँ बोली—'कल छुटकू कहता था कि मेमसाहब, साहब से खूब बहस करती हैं। एक बात सुनती हैं, तो अपनी ओर से दस कहती हैं।'

कान्त ने कहा—'माँ अब लौटने की तैयारी करो। सूरज ढल रहा है।'

रेणु ने कहा—'हाँ, अब ठण्ड भी बढ़ चली है।'

रामदीन बोला—'जो व्यक्ति बाहर से हमारे मध्य आये हैं। लगता है कि वे कीचड़ उछाल रहे हैं, एक-दूसरे को बदनाम करने पर तुले हैं। यह जगराम'''यह इसकी बहन रेणुबाई'''

मानो झल्लाकर श्रीधर बोला—'न, न, ऐसा मत कहो। नाम न लो। उनका उल्लेख न करो।'

इतना सुना, तो रामदीन हँस दिया। उसके साथ सभी ने कहकहा लगा दिया।

यह देख, तेज बनकर श्रीधर बोला—'क्यों, मेरे कथन से कोई आपत्ति है! परहेज है।'

एक बोला—'अरे, बाबू! आपत्ति क्या! हम देखते हैं कि जिस शिविर में तुम्हारे शत्रु एकत्र हैं, षड़यन्त्र रच रहे हैं, तुम्हारे मन में उन्हीं के प्रति आसक्ति है। स्नेह है। वह रेणु'''जगराम'''

एकाएक लाल बनकर श्रीधर बोला—'निःसन्देह मुझे उनके प्रति आसक्ति है। जितना सम्बन्ध बना, उसे भूलने की मुझमें क्षमता नहीं। अभी ऐसी मेरी इच्छा भी नहीं।'

इतनी बात सुनी, तो एक-एक कर सभी ने एक-दूसरे की ओर देखा। जैसे कुछ कहा, कुछ सुना।

किन्तु तभी श्रीधर ने फिर कहा—'भाई, तुम्हारे मन में जो कुछ है, उसे मैंने समझा है। मैंने यह भी मान लिया है कि मैं व्यवहारिक नहीं। जितने हमारे बन्धन हैं उनमें नहीं बँधा!'

पास बैठे रामदीन ने कहा—'तभी तो यह अवस्था है। तुमने जो कुछ उपार्जित किया, वह तुम्हारे पास नहीं है।'

'अर्थात् क्या'' पैसा?'

'नहीं, प्रतिष्ठा।'

'ओह, यह प्रतिष्ठा मुझे कभी प्राप्त हुई, ऐसा मैं नहीं मानता। नहीं समझता।'

रामदीन न कहा—'सेवा करने वाला उसे महत्व नहीं देता। परन्तु

जो देखने वाला समाज है, वह अनुभव करता है, वह विष और अमृत की परख कर पाता है।' वह बोला—'रामाधीन चमार का लड़का तुम्हारी कृपा से पढ़ गया। तुम तो गाँव में रहते ही नहीं, जो जुदे-जुदे मुँह की बात सुनो, पर कभी सुना आपने कानों से कि यह जनता का सेवक बना हुआ श्रीधर अब ठाकुर की लड़की को छोड़ चमार की लड़की के पीछे पड़ा है। वह रंग की गोरी और शक्ल-सूरत की अच्छी है न।'

इतनी बात सुनते ही, श्रीधर अत्यन्त कषैला और विषम बन गया था। जैसे उसे बरबस ही, आग के अंगारों पर फेंक दिया गया। वह तड़प उठा। तभी वह बोला—'भाई रामदीन, सचमुच, दुर्बलता मुझमें भी है। कुछ पाप मेरा भी है। मैं यदि ठाकुर की लड़की रेणुबाई से परिचय न कर पाता, उस घर मेरा आना-जाना न होता तो कदाचित् यह प्रसंग इतना घिनौना और कषैला न बन पाता।'

किन्तु रामदीन के पास बैठे हुए जसमत ने कहा—'नहीं, नहीं, श्रीधर बाबू! बात यह नहीं! दुर्बलता तुम्हारी यह है कि तुमने अनेक आश्वासन देकर भी उस रेणु से विवाह नहीं किया। तुमने जो सम्बन्ध एक बार बनाया, तो उसे निभाया नहीं, बीच में तोड़ दिया।'

श्रीधर ने कहा—'मैं नहीं सोच पाता कि मैंने कभी रेणु को विवाह करने का वचन दिया हो। मैंने सदा ही कहा कि वह विवाह कर ले। इस विशाल दुनिया में अपने लिये पति चुन ले।

'हाँ, यही तो! यह कहना ही तुम्हारी भूल थी। अव्यवहारिकता थी।'

श्रीधर बोला—'नहीं, बात और है। स्त्री और पुरुष को देखने की परम्परा सर्वथा गलत है। वह देर से इसी प्रकार चली आयी है। लगता है कि यही प्राकृतिक स्वभाव है। प्रत्येक जीव-जगत की यही रीति है। यही हम मनुष्यों ने स्वीकार की है।'

जसमत ने कहा—'भैया श्रीधर, बात बढ़ गयी है। मुझे लगता है कि लावे के ढेर में किसीने आग लगा दी है। वह बात अब भड़क जाने

वाली है।'

श्रीधर ने कहा—'क्या···क्या कहते हो!'

जसमत बोला—'लोग गाँव में झगड़ा करने की बात सोचते हैं। देखते नहीं कि अब गाँव में दो शिविर बन चुके हैं।'

चंचल बनकर श्रीधर ने कहा—'तो मेरे कारण! मैं गाँव से चला जाऊँगा।'

रामदीन ने कहा—'लोग रामाधीन चमार के पास भी गये थे। उसे सिखा-पढ़ा रहे थे कि वह वह···'

आवेशपूर्ण बनकर श्रीधर ने कहा—'मुझे मार दो। मेरा अन्त कर दो। तुम लोग समझते हो कि मैं औरत का भूखा हूँ···अरे मैं इन्सानियत चाहता हूँ। जीवन की शान्ति! मैं मालदार घर में पैदा होता, जीवन का भोग प्राप्त करता, तो मैं भी सुन्दर औरत की कामना करता। पर जानते हो, मेरी माँ को इस घर में चिराग जलाने के लिये एक औरत की इच्छा है, तो मैंने कह दिया है कि वह लड़की देख ले। मैं सुन्दर लड़की नहीं चाहता, इस हेतु जाति का बन्धन भी नहीं चाहता!'

जसमत ने कहा—'चाहे चमार···भंगी···'

श्रीधर ने स्वर पर जोर देकर कहा—'निःसन्देह जाति-वाद के जहर से मैं बचना चाहता हूँ। मैं ऐसे काल से अपना बन्धन बाँधना नहीं चाहता।'

उसी समय रामदीन ने वास्तविक बात उठायी और कहा—'तो चुनाव···तुम्हारा निश्चय···'

श्रीधर ने कहा—'मैं अभी सहमत नहीं हुआ। मेरा यह भी मत है कि राज्य-दरबार में जाकर, उन विधान-सभाओं का मेम्बर बनकर कुछ काम नहीं किया जा सकता। काम बाहर है। करने वाले के लिये क्षेत्र विस्तृत है। और तुम जानते हो कि मेरा काम तो लिखने का है। समय मिलता है तो दूसरा काम भी किया जा सकता है। अभी मेरी यही इच्छा है।'

जसमत ने कहा—'कान्त गाँव में कई चक्कर लगा चुका है। अचरज है कि जो जमींदार जगराम के घर के प्रति उपेक्षित था, वही अब रात-दिन पास बैठकर बात करता है। गुप्त मन्त्रणायें करता है। आखिर क्यों ? किस लिये ?'

रामदीन बोला—'उन्हें सब को पता है कि श्रीधर चुनाव लड़ेगा।'

श्रीधर ने हँसकर कहा—'मेरे पास पैसा नहीं है। मैं चुनाव के प्रचार में लगूं इतना अवसर भी नहीं है।

रामदीन खड़ा हो गया और बोला—'तुम्हें नहीं समझा जायगा।'

श्रीधर ने उदास भाव में कहा—'मैं इतना गहरा नहीं। अगम्य नहीं।'

जसमत और अन्य भी खड़े हो गये। तभी एक अन्य बोला—'चुनाव में कोई खड़ा हो, पर हम कान्त को वोट नहीं देंगे।'

रामदीन बोला—'वह चोर है, उसने घर भरा है, मोटा हो गया है।'

इतनी बात सुनी, तो श्रीधर ने मत नहीं दिया। वह उन सभी की ओर देखने लगा। जब सभी लोग उसके घर से लौट चले, तो तभी, बाहर रामाधीन की आवाज सुनायी दी। अन्दर बैठे ही, श्रीधर ने उसे बुला लिया।

बूढ़े ने पास आकर कहा—'बाबू···'

श्रीधर ने कहा—'क्यों रामाधीन, कोई नयी बात ?'

रामाधीन ने कहा—'बाबू अब इस गाँव में रहना दुस्वार हो गया है। कल जमींदार का लड़का जगपाल और नये ठाकुर का लड़का जगराम मेरे पास आये थे। वह कह रहे थे कि····'

श्रीधर ने कहा—'तुम्हारी लड़की की बात !'

'हाँ, बाबू ! भला यह कैसी बात है। जिसने हमारे साथ उपकार किया तो उसी पर···'

श्रीधर ने कहा—'यदि बात सत्य हो, तो तुम्हें आपत्ति करनी चाहिये। चाहो तो पुलिस में···'

एकाएक रामाधीन ने हाथ बढ़ा दिये और श्रीधर के पैर पकड़ कर बोला—'अरे, बाबू···'

किन्तु श्रीधर ने कहा—'तुम्हारी लड़की सयानी है, उसका विवाह कर दो।'

रामाधीन ने कहा—'बाबू, कैसे करूँ! अब तो लड़का बीमारी से उठा है तो अब···'

'लड़का देख लिया है?'

'हाँ, वह तो नजर में आ गया है।'

श्रीधर ने कहा—'तुम तैयारी करो, रुपया मैं दे दूंगा।

रामाधीन ने कहा—'पर बाबू, वह मैं कैसे उतारूँगा।'

श्रीधर ने कहा—'मैं वणिक नहीं हूँ, भाई! रुपये से व्यापार नहीं करता। मैं जो कुछ दूंगा, उसे वापिस नहीं मांगूंगा। समझो कि वह मैं तुम्हारा तुम्हें लौटा सकूंगा!'

रामाधीन ने एकाएक कहा—'बाबू, तुम देवता···'

श्रीधर ने जल्दी से कहा—'नहीं, मैं आदमी···'

रामाधीन खड़ा हो गया। वह लौट पड़ा। श्रीधर भी घर से बाहर चल दिया। वह उस समय शरीर से नहीं, मन से थका था। कुछ समय के अन्दर ही उसने विविध प्रकार की बातें सुनीं। वे मानो सभी अटपटी। सभी कर्णकटु। इसलिए वह एकान्त चाहता था। वह जंगल में किसी खेत के ऊपर जाकर बैठना चाहता था। लेकिन जब वह चला, तो अवसर की बात कि घर से कुछ दूर पर ही, अपनी एक सहेली के साथ, रेणुबाई अपने घर से किसी दूसरे घर जा रही थी। तभी उसकी और श्रीधर की चार आँखें हो गयीं। श्रीधर जैसे ही उन दोनों के पास से आगे निकलने लगा कि तभी दूसरी लड़की ने एकाएक कहा—'भैया जी···'

रुककर श्रीधर ने कहा—'अरी, प्रमदा तू!'

प्रमदा ने कहा—'आज बहुत दिन में दिखायी दिये, भैया जी!

लगता है, बाहर अधिक रहे।'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, मैं बाहर अधिक रहा। कब आयी, अपनी ससुराल से ?'

प्रमदा ने कहा—'अभी चार दिन हुए !'

'अच्छा, अच्छा। और तो सब ठीक हैं…सुशील बाबू !'

प्रमदा ने कहा—'वे तो आपको प्रायः याद करते हैं। बस, अखबार में ही आपका नाम पढ़ लेते हैं।'

श्रीधर हँस दिया। वह आगे बढ़ लिया। जब वह गाँव से बाहर निकला, तो उसने अपने आप कहा—'ऐसा भी क्या है…हाँ, क्या आया, इस रेणुका के मन में ! मेरी ओर देखा भी नहीं। मुंह से कुछ कहा भी नहीं !' और वह तब तेजी के साथ पैर बढ़ाकर, सामने की डगर पर चल दिया।

बाईस

रामनगर गाँव अपने जीवन में भले ही पहिले कभी नहीं सज सका, परन्तु उन्हीं दिनों उसे अवसर मिला और पूर्ण रूप से नगर-वधु की तरह सजाया गया। उस गाँव में एक बड़ा प्रीतिभोज हुआ। बाहर से एक विशाल बारात आयी, जिसमें कान्त दूल्हा बनकर आया और रेणुबाई के साथ विवाह करके उसे ले गया। किन्तु उस विवाह के बाद ही, उस गाँव के वासियों ने जो दूसरा समाचार पाया, जिसके लिये अधिकांश को अचरज भी हुआ, कुछ को उल्लास प्राप्त हुआ, यह वह था कि श्रीधर धारा सभा की सदस्यता के चुनाव संघर्ष में पड़ने के लिये गह्मत हो गया। लगभग पन्द्रह दिन बाद जब वह गाँव में लौटा, तो लोगों ने जहाँ चुनाव लड़ने के लिये उसका अभिनन्दन किया, वहाँ यह भी बताया कि तुम गाँव से बाहर रहे और यहाँ बड़ी धूम-धाम से रेणुबाई का विवाह हो गया। उसी अवसर पर, एक साथी ने उससे प्रश्न किया---'तुम्हें विवाह का निमन्त्रण मिला ?' यह सुनकर, श्रीधर क्या कहता, परन्तु दूसरे ने कहा—'श्रीधर को निमन्त्रण कैसे दिया जाता ! वह तो प्रतिद्वन्द्वी था।'

जब श्रीधर ने इतना सुना, तो वह बरबस हँस दिया। उसने प्रस्तुत वार्ता के प्रति उपेक्षा का भाव भी स्वीकार किया।

किन्तु तभी उससे कहा गया—'नये ठाकुर ने अपनी शक्ति से अधिक खर्च किया। शायद बड़ा आदमी उसका दामाद बना, वह इस प्रसन्नता में विभोर हो गया था।'

दूसरा बोला—'प्रीति-भोज करना भी एक चाल थी। गाँव की छोटी जातियों को भी बुलाया गया था।'

एक ने कहा—'अजी चुनाव आ रहा है। वोट पाना है। लोगों को मिठाई-पूरी खिलाकर उनका मुंह बन्द करना था।'

एक अन्य ने कहा—'मुझे सन्देह है, उस दावत में रुपया कान्त का लगा होगा। यह भी तो देखो कि कान्त और रेणु ने लोगों का खाना परोसा था। जरूर, उसमें कोई रहस्य था।'

तभी कहा गया—'आस-पास के गाँवों से अनेक ठाकुर आये थे। वे भी इसी उद्देश्य से बुलाये गये होंगे।'

उसी समय, सबसे पीछे आये जस्मत नाम के युवक ने कहा—'पचास गाँवों के चौधरियों को निमन्त्रण-पत्र भेजे गये थे। हमारे जमींदार साहब अगुवा थे। आगन्तुकों का स्वागत कर रहे थे।'

'किन्तु श्रीधर जी तुम क्यों नहीं रहे।' एक युवक ने हँसकर कहा।

उसी समय श्रीधर ने कहा—'मुझे निमन्त्रण नहीं मिला।' तभी बोला—'जो हो, यह सुख का विषय है कि ठाकुर की लड़की सुख से रहेगी। वह अब एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की पत्नी कहलायेगी।'

जस्मत ने कहा—'गाँव के भूखे लोग अभी से कान्त के पीछे लगेंगे। चाहेंगे कि उनके लड़कों को कान्त नौकरी दिलवा दे।'

श्रीधर ने कहा—'भाई, यह विवशता की बात है, लोग गरीब हैं।'

जस्मत ने कहा—'दीन बने है। भीख माँगते हैं। गिड़गिड़ाते हैं।'

उस समय श्रीधर गम्भीर बना था। एकान्त चाहता भी था। तभी उसने कहा—'मैं दूर से आया हूँ। थका हूँ। आराम करूँगा।'

'हाँ, हाँ, हम जाते हैं, श्रीधर जी! बस हमें मिलना ही था। तुमने हमारी बात रख ली और चुनाव लड़ना स्वीकार किया, यह साधुवाद देना था।'

श्रीधर ने कहा—'हरभजन जी, मैं इस चुनाव को महत्व नहीं देता। ऐसी आशा भी नहीं करता कि विजय का सेहरा मेरे सिर बँधेगा। इस क्षेत्र में कान्त के अतिरिक्त भी उम्मीदवार हैं। वे सभी कर्मठ हैं।'

हरभजन ने कहा—'श्रीधर जी, विजय तुम्हें मिलेगी। तुम देर से

समाज की जिस प्रकार निस्पृह बनकर सेवा करते आये हो, चुनाव के अवसर पर यह बात लोगों की स्मृति से न उतर सकेगी।'

श्रीधर ने कहा—'नहीं, नहीं, चुनाव के लिये यह महत्वपूर्ण नहीं। उसमें रुपया चलता है, प्रचार…और मैं यह नहीं करूँगा। रुपया मेरे पास है नहीं। मैं तो चुनाव के इस विस्तृत क्षेत्र में भी न जा सकूँगा। इतना अवसर नहीं पाऊँगा।'

रामदीन ने कहा—'तुम्हारे लिये काम करने वाले बहुत हैं। रुपया लगाने वाले भी मिलेंगे। हम झोली डालकर माँगेंगे।'

इतना सुना, तो श्रीधर व्यस्त बन गया। वह बोला—'मैं अदालत में जाकर अपने नाम का पर्चा तो दे आया हूँ, परन्तु यह विश्वास आज भी नहीं करता कि सरकारी कौंसिल में जाकर मैं कुछ काम कर सकूँगा। देखता हूँ, वहाँ तो मैं बँध जाऊँगा। हाँ, इतना निवेदन मैं आप से अभी से करूँगा कि चुनाव के लिये कोई संघर्ष न हो। मैं अनुभव करता हूँ कि हमारे गाँव में कुछ लोग तो झगड़ा करने की बात करेंगे, पर अपनी ओर से किसी प्रकार का विवाद न खड़ा हो। चुनाव तो आज है, कल नहीं, परन्तु इसके नाम पर जो शत्रुता पैदा की जाती है, वह जम जाती है। लोगों को दूर-दूर कर देती है।'

हरभजन ने कहा—'यह ठीक है। हमारे साथियों को इस बात का विशेष ध्यान रखना है।'

श्रीधर ने कहा—'यदि मेरे किसी सहायक ने झगड़ा किया, तो चुनाव नहीं लड़ूंगा। बीच में ही स्थगित कर दूंगा।'

इसके बाद ही, गाँव के लोग एक-एक कर उठ गये और श्रीधर अकेला रह गया।

उसी समय माँ पास आयी और बोली—'श्रीधर, मैंने तेरे विवाह की बात पक्की कर ली है।'

सुनकर, चकित हुए भाव में श्रीधर ने कहा—'अच्छा!'

माँ ने कहा—'हाँ।'

श्रीधर बोला—'पर माँ अभी तो चुनाव है । मुझे उस काम में लगन है ।'

माँ ने कहा—'चुनाव क्या सदा रहेगा । लड़की वाला वैशाख में विवाह कर देगा । लड़की ऐसी है कि बस ! तेरी रेणु तो उसके सामने पैर की धोवन भी नहीं । रेणु पढ़ी है, यही तो !'

श्रीधर हँस दिया—'माँ, मेरी रेणु कैसे कहा, तुमने !'

माँ ने चिढ़कर कहा—'अरे, मैं कहती हूँ, गाँव कहता है । सारा गाँव उस ठाकुर के मुंह पर थूकता है । औरतें भी कहती हैं । रेणु से और उसकी माँ से भी कह चुकी हैं । तभी तो ठकुराइन ने बोलना बन्द कर दिया । विवाह का न्यौता भी नहीं भेजा । घर-घर मिठाई आयी, पर इस घर…'

श्रीधर ने कहा—'माँ, वे भूल में हैं । शायद कुछ भ्रम भी है । पर तुम बुरा न मानना । तुम अपने लड़के का विवाह करो, तो उन्हें भी बुलाना ।'

माँ ने चिढ़कर कहा—'मेरी बुलाये जूती ! मैं ऐसे घमण्डियों से बात न करूँ । उस रास्ते को भी न जाऊँ ! राम-राम ! ऐसा भी क्या ! एक दिन ऐसा दिखाया कि बस, हमीं हैं उनके चहेते ! और आज ऐसा कि हाँ, हमसे बड़ा दुश्मन कोई नहीं उनका !'

श्रीधर ने कहा—'माँ, ऐसा ही होता है । चलते-चलते आदमी गलत रास्ते पर चला जाता है । भ्रम जाता है ।'

तभी माँ दूसरी ओर चली गयी । श्रीधर अकेला रह गया । उसके सामने ढेर लगी डाक पड़ी थी । उसमें पत्र थे । एक-एक कर वह सभी को देखने लगा कुछ लिफाफों में अखबार के कार्यालय और पुस्तक प्रकाशक के पास से भेजे गये चैक थे, उन्हें श्रीधर अलग रखने लगा । उसी समय वह अपने आप बोला—'रेणु और उसकी माँ को इतनी चिढ़ हुई कि इस घर विवाह का निमन्त्रण भी नहीं भेजा । वे मूर्ख थे । गाँव के अन्य घरों के समान इस घर को भी बुलाना था । इतना दुराव रखना

क्या शोभनीय था। वह बोला, माँ को भी इसी बात पर चिढ़ है। खेद है। रेणु जब-जब इस घर आयी तो मेरी माँ ने उसे अपूर्व प्यार किया था। अपना स्नेह दिया था।

पत्रों और अखबारों को देखकर, श्रीधर उठ खड़ा हुआ और चारपाई पर जा पड़ा। सचमुच, यह थक रहा था। फलस्वरूप, कुछ ही देर में श्रीधर सो गया। जब देर बाद श्रीधर की आँख खुलीं, तो तभी माँ उसके पास आयी और बोली—'उठ बेटा! देख खाना भी ठण्डा हो गया। स्नान कर ले।'

श्रीधर उठ बैठा। वह अपने कमरे के खुले द्वार से बाहर की ओर देखने लगा।

माँ ने वहाँ से जाते हुए कहा—'जगपाल आया था। बैठा रहा। फिर चला गया।'

श्रीधर ने पूछा—'कैसे आया था? कुछ कहता था?'

माँ ने कहा—'कहता था, बहुत दिन से नहीं मिला। आज चला आया।'

तब श्रीधर ने माँ से तो नहीं कहा, परन्तु मन में बोला—'जमींदार का लड़का जरूर किसी उद्देश्य को लेकर आया होगा। शायद कहने आया होगा कि हम तुम्हारे साथ हैं। उसने कहा पर मुझे तो पता है, जमींदार और उसके आदमी कान्त का साथ देंगे। ठाकुर के दामाद को को जिताना पसन्द करेंगे।'

श्रीधर खड़ा हो गया और स्नान करने चल दिया। घर के चौका में जब श्रीधर स्नान करने लगा, तो तभी माँ ने उसके नंगे शरीर को देखकर कहा—'अरे, श्रीधर! अब ऐसा हो गया तू...इतना कमजोर! देख तो, हड्डियाँ निकल आयी हैं। तूने जरूर अपनी ओर से आँख फेर ली है।'

सुनकर, श्रीधर हँस दिया। उसने कहा—'माँ, इस शरीर का क्या होगा! यह तो जल जायेगा। मोटा शरीर बना तो मरते समय अधिक

ईंधन की माँग करेगा !'

माँ ने तुनक कर कहा—'बस, बस, रहने दे, अपनी बात ! जो मुह में आये, कह देता है।'

श्रीधर ने कहा—'माँ, तू है तो कहा जाता है। फिर क्या, यह श्रीधर कुछ कह सकेगा। किसीको अपना मान सकेगा।'

माँ ने कहा—'क्यों, क्यों, बहू जो आयेगी।'

श्रीधर ने कहा—'माँ, बहू अपनी नहीं होती। माँ होती है। वह ही अपनी सन्तान का हित देखती है। बहू तो अपना स्वार्थ पूरा करती है।'

माँ ने इतनी बात सुनी, तो हँस दी। दूसरी ओर चली गयी।

श्रीधर स्नान करके रसोई में पहुँचा। माँ ने थाली परोस दी और कहा—'तुझे रस की खीर अच्छी लगती है न, तो आज वही बनायी।'

श्रीधर ने कहा—'एक बार रेणुबाई की माँ ने भी गन्ने के रस की खीर बनायी थी। वह भी अच्छी लगी थी, उस खीर में बादाम और पिस्ते भी पड़े थे।

माँ ने हँसकर कहा—'अरे, रेणु की माँ अब वह नहीं रही। अब बदल गयी।

श्रीधर ने कहा—'यह बुरा है। यह क्या जरूरी है कि इस दुनिया में सभी कुछ अपनी इच्छा के अनुकूल हो। दूसरे का भी अधिकार है।'

माँ बोली—'ठाकुर की औरत बड़ी चालाक है। मुझे तो अब उसका रूप दिखाई दिया। एक दिन मन्दिर के साधु से कहती थी कि श्रीधर भूखा मरेगा। ऐसे रहा तो अपनी जिन्दगी खराब कर लेगा।'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, हाँ ठीक तो कहा, रेणु की माँ ने ! यह तो अपनी-अपनी निगाह है, माँ ! उस नारी ने जीवन का कोई और चित्र देखा है।'

माँ बोली—'मैं कहती हूँ कि वह मूर्ख है। इस ब्याह में ठाकुर ने सभी जमा-जोड़ा पैसा लगा दिया। सोचा होगा कि ऐसा लड़का क्या किसी और को भी मिलेगा।'

श्रीधर हँस दिया—'माँ यही होता है। कान्त अब सचमुच ही बड़ा आदमी है। उसके पास रुपया है, प्रतिष्ठा है। अब वह चुनाव में भी पानी की तरह रुपया बहायेगा।'

भोजन करके श्रीधर खड़ा हो गया। वह फिर अपने कमरे में चला गया। अवसर की बात कि उसी समय उसकी दृष्टि मेज पर रखे एक चित्र पर गयी, जो रेणु का था। मेज पर धूल थी, उस फोटो पर भी। श्रीधर ने कपड़ा उठाया और मेज के साथ उस फोटो को भी साफ कर दिया। उसे फिर नियत स्थान पर रख दिया। उसी समय उसके मन में बात आयी कि वह इस चित्र को लौटा देगा। अब यहाँ रखना उचित नहीं होगा। किन्तु मन में इतनी बात आते ही, श्रीधर को लगा कि जैसे मानों किसी ने उसके सुई चुभो दी हो। यद्यपि रेणु की बात उसके मानस में अनेक बार उठी, कुछ कसक सी भी अनुभव हुई। क्योंकि, ऐसा लगा कि श्रीधर जिस बात को मुँह से नहीं कह सकता, उसे अपने मानस के अन्दर-ही-अन्दर रखे था, अनुभव करता था, अतएव, उस समय भी, उस फोटो को देख, उसके मन में बात आयी, कि नारी का यही व्यापार है···यही जीवन-क्रम! यों मन में बात आते ही, श्रीधर के मानस पर वे सभी स्मृतियाँ उठ आयी कि जिनका निर्माण उसके और रेणु के सम्मिलिन के मध्य हुआ था। उसे याद आया कि उसके गाँव में आते ही, रेणु आती और उसके कमरे की सभी वस्तुओं को सुव्यवस्थित ढंग से रख जाती। किताबों को झाड़-पौंछ जाती। मानो यह उसीका काम था। उसीको करना था। उस अवस्था में ही, रेणुबाई अनेक बार श्रीधर से कह चुकी थी कि वह अपने शरीर का ध्यान नहीं रखता। न नियम से खाता है, न सोता है। इस प्रकार, जाने कितनी संध्या, कितने दिन उन दोनों ने साथ बैठ कर बिताये थे।

तभी मेज से हट कर, फिर चारपाई पर पड़ते हुए, श्रीधर ने कहा—'कुछ भी हो, हम दोनों मिले, जुदे हुए तो क्या हुआ ! रेणु फिर भी सरल है। भावनामयी है। उससे जो सदाशयता मुझे प्राप्त हुयी, वह मुझे आज भी अलौकिक और अभूतपूर्व लगती है। वैसी निधि अब मैं नहीं पा सकूंगा। रेणु से मुझे उत्साह मिला, जीवन का अधिकार मिला ! वह आज भी मुझसे कुछ पाने का अधिकार रखती है। वह कान्त की पत्नी बनी तो क्या; कुछ अन्तर नहीं पड़ता। मैं उसका ऋणी हूँ। जो कुछ उसने मुझे दिया, उसे पाकर मैं धन्य हूँ। जिस गंगा में मैंने एक बार गोता लगाया, तो उसे क्या भूल सकता हूँ। वह परम, वह पवित्र और निर्मल रेणुबाई सदा मेरे समक्ष रहेगी। आज के समान वह सदा ही अधिकारिणी रहेगी कि मेरा सर्वस्व पाये। उसे सुख प्राप्त हो, मेरी सदा यही कामना रहेगी।

उसी समय पड़ौसी यदुनन्दन वहाँ आया और बोला—'भाई जी—'

देखकर, श्रीधर ने कहा—'अरे, वाह तुम ! कब आये ? आज तो बहुत दिन में दिखायी दिये।'

यदुनन्दन ने कहा—'मैं रात आया था।'

श्रीधर उठकर बैठ गया और बोला—'अब बड़े आदमी हो, भाई ? प्रोफेसर हो ! मैं जब नगर में गया, तो तुमसे मिलने का ध्यान था। पर काम में ऐसा फँसा कि भूल गया।'

यदुनन्दन ने कहा—'आप व्यस्त रहते हैं। सुना कि सरकार से आप अपनी नयी पुस्तक पर पाँच हज़ार रुपया पुरस्कार पा रहे हैं।'

श्रीधर ने कहा—'हाँ, मैंने भी सुना। अभी पढ़ नहीं सका। सरकार से पत्र भी नहीं मिला। मैंने एक सप्ताह से अखबार भी नहीं पढ़ा।'

यदुनन्दन ने कहा—'मैंने पढ़ा है। आपको प्रथम पुरुस्कार मिला है।' वह हँसकर बोला—'गाँव वालों को शायद पता नहीं कि अब आप मालदार बन चले हैं। आपको लेखन से भी काफी पैसा मिल रहा है,

मैंने यह अनेक स्थानों पर सुना है।'

श्रीधर हँस दिया और बोला—'भैया, पैसा, पैसा है, जो आता और जाता है। कभी भी चला जाता है। यह श्रीधर क्या पैसे का कभी उपयोग कर सकता है, शायद नहीं;---इस जीवन में कदापि नहीं!

तेईस

लेकिन अन्य बातों के साथ, जैसे श्रीधर को यह देखकर भी अचरज नहीं हुआ कि अब चुनाव का प्रचार कार्य आरम्भ हो गया, तो रेणुबाई स्वयं गाँव लौट आयी। उसे देखकर लोगों ने कहा—'वाह-वाह! चुनाव का कार्य हो, तो ऐसा हो!' इसके विपरीत श्रीधर फिर बाहर चला गया। अन्त में चीनी मिलों के अधिकारियों और किसानों में संघर्ष चल पड़ा था। किसान भाव कम होने के कारण मिलों को गन्ना नहीं दे रहे थे। जिसमें खेद की बात यह थी कि सरकार मिल मालिकों का साथ दे रही थी। उसी समय किसानों ने अपनी ओर से श्रीधर को मध्यस्थ बनाना स्वीकार कर लिया। स्थिति यह थी कि श्रीधर उस अवस्था में न गाँव वालों की तरफदारी ले रहा था, न मिल मालिकों की। वह तराजू के दो पलड़ों में झूल रहा था। जिसका परिणाम यह हुआ कि समझौता नहीं हो रहा था। एक तरफ श्रम का प्रश्न था, दूसरी तरफ पूँजी का प्रश्न भी दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता था। उस अवस्था में मध्यस्थ या तो पीछे हट जाये, अन्यथा उसे किसी एक पक्ष का शिकार होना पड़ सकता था।

तभी एकाएक देश और प्रान्त के सभी समाचार-पत्रों में छपा कि श्रीधर ने भूख-हड़ताल कर दी। उसने मिल अधिकारियों से कह दिया कि श्रम का महत्व अधिक है···किसानों का अधिकार सर्वोपरि। अतएव, वह उनकी माँग के प्रति उपेक्षित नहीं बन सकता।

परिणाम स्वरूप, श्रीधर ने भूख-हड़ताल आरम्भ की, तो दिन-दिन उसकी शारीरिक अवस्था भी बिगड़ती गयी। नित्य ही विविध प्रकार की खबरें उड़तीं। वे रामनगर गाँव में भी पहुँचतीं। स्थिति यह थी कि

उस चुनाव-चक्र में दोनों ओर से उन खबरों को तोड़-मरोड़ कर प्रसारित किया जाता। कान्त का पक्ष कहता कि श्रीधर का यह एक स्टंट है, चुनाव के प्रसंग में यह उसका जालसाजी और मक्कारी से पूर्ण षड़यन्त्र है, इन्सानियत से गिरी हुई रचना; कि वह किसानों को और अपने चुनाव क्षेत्र के वोटरों को बताये कि वह जनता के लिये कितना बड़ा त्याग कर सकता है···वोट प्राप्त करने का यह उसका एक क्रूर और अमानुषीय तरीका है! किन्तु दूसरी ओर भले ही, कान्त या अन्य प्रतिद्वन्द्वी का नाम न लिया जाता हो, परन्तु जनता से कहा जाता कि देशकी अवस्था और असंगतता में जिन लोगों का हाथ है, वे लोग ही, इन पूँजीपतियों को—कारखानेदारों को—शोषण करने का अवसर प्रदान करते हैं। अधिकार और सुविधायें प्रस्तुत करते हैं, ये शासकवर्ग के लोग! जिसके फलस्वरूप, ये रुपया प्राप्त करते हैं समाज और देश की छाती पर बैठकर सोने की दीवारें निर्मित करते हैं···ये लोग··· क्रूर, हत्यारे···जन-समाज के द्रोही···'

किन्तु अचरज की बात यह थी कि वह श्रीधर जो जीवन और मृत्यु के मध्य में फँसा था, कदाचित् ही, उस चुनाव क्षेत्र की स्थिति से परिचित था। उसके साथी उसे भूख-हड़ताल रोकने के लिये कहते थे, परन्तु वह अपनी बात पर दृढ़ था, लोग समझाते कि चुनाव क्षेत्र में तुम्हारा रहना अवश्यक है, परन्तु श्रीधर इस बात को नहीं मानता था, वह कहता कि मुझे चुनाव से ममता नहीं, कोई जीते या हारे; इसकी भी चिन्ता नहीं। यह भूख-हड़ताल मेरे सिद्धान्त की बात है, मेरे लक्ष्य पर आधारित है, अतएव, इसे नहीं छोड़ सकता। मैं गाँवों में नहीं जा सकता।

और चूंकि श्रीधर का चुनाव-क्षेत्र देहाती हल्का था, इसलिये, उसके साथी उन मार्गों में न मोटर दौड़ा सकते थे, न बड़े-बड़े नेताओं को ले जाकर उस देहाती समाज को भाषण सुनवा सकते थे। चुनाव के उन प्रतिद्वन्द्वियों में कान्त का अधिक जोर था। उसके क्षेत्र में कई मोटरें

घूम रही थीं। कार्यकर्त्ता भी उसके पास अधिक थे। रुपया भी था। नित्य ही पार्टियाँ होतीं। विविध प्रकार से लोगों की इच्छायें पूर्ण की जातीं।

उन दिनों गाँव के अन्य व्यक्तियों के साथ रेणु भी अधिक व्यस्त थी। श्रीधर के साथ कुछ समय रहकर वह भाषण देने लगी थी। अतएव, वह कला उस समय सारवत् हुई। वह महिलाओं की सभा में जाकर भाषण देती। वह बताती कि कान्त को क्यों वोट देना चाहिये। अन्धकार में पड़ी उन नारियों को वह देश का उज्ज्वल भविष्य दिखाती और बताती कि तुम्हारी इस सरकार ने ही, नारी-समाज के लिये अनेक सुविधायें प्रदान की हैं। इस देश का नारी-समाज सदियों से त्रस्त रहा है, अंधेरे में रहा है, तो इसलिये तुम्हारी सरकार ने नारी का उद्धार करने, सजग बनाने के हेतु नारी-शिक्षा अनिवार्य की है। तलाक-बिल पास किया है। पिता और पति की पूँजी में नारी को अधिकार दिया गया है। इसी हेतु आज की नारी सजग है। अन्धेरे से प्रकाश में आ गयी है। इस देश की नारी भी अब पुरुष के साथ, कन्धे-से-कन्धा मिला कर चलती है। भारतीय नारी आज देश के शासन में पुरुष के बराबर भागीदार बनी है।

रेणु की उस शारीरिक और मानसिक अवस्था को देख, माँ कहती—'अरी, तू अपनी भी तो सुध ले। आराम की चिन्ता कर!'

तो, तुरन्त ही रेणु कह देती—'आराम के तो अभी दिन पड़े हैं, माँ! यह अवसर काम का है। पता है, इस चुनाव के लिये सभी कुछ दाँव पर लगा दिया गया है। लोग समझते हैं कि रेणु का पति मिनिस्टर रहा, तो रुपया होगा। पर माँ, इतना रुपया कहाँ से आया! स्थिति यह है कि जो रुपया था, वह भी लगा और शहर का जो मकान था, वह भी गिरवी रख दिया गया।'

माँ ने कहा—'राम-राम! यह तो सर्वग्राही सौदा है। बड़ा कठोर है।'

रेणु बोली—'हाँ, यही तो! चुनाव जीत लिया जायगा, तो फिर सभी कुछ आ जायेगा। बढ़ भी जायेगा।'

माँ ने साँस भरी—'भगवान भला करेगा !'

रेणु ने कहा—'माँ, तुम्हारे पुत्र लम्बे वोटों से जीतेंगे। जिधर जाते है, उधर ही आश्वासन मिलता है। लोग श्रद्धा से स्वागत करते हैं। सभी ठाकुर कहते हैं कि यही हमारी जाति का सरदार है···हमारा नेता !'

तभी जैसे साँस रोककर माँ ने कहा—'अरी, सुन तो ! उस श्रीधर का समाचार तो अच्छा नहीं आता। अब तो सुनती हूँ कि···'

मानो उपेक्षा से, निरुत्साहित बनकर ही, रेणु ने कहा—'माँ, यह श्रीधर तो मरने पर तुला है। मेरे मन में देर से बात है कि यह आदमी अन्धा बनकर चलता है···अपने जीवन का दुश्मन बना है !'

माँ ने कहा—'कल ही जब उस मोहल्ले में गयी, तो उसके घर पर ताला लगा था। शायद उसकी माँ···'

रेणु ने कहा—'उसकी माँ भी बेटे के पास है। श्रीधर की अवस्था खराब है।'

माँ ने कहा—'मिल मालिक भी कठोर है। पत्थर हैं। श्रीधर तो हम किसानों का ही भला चाहता है।'

रेणु बोली—'माँ, ये बातें तुम सुगमता से नहीं समझोगी। श्रीधर भी सयाना है। मैं तो अब समझी हूँ कि यह पूरा कौवा है। देखती हो न, वह इस अवसर पर ही भूख-हड़ताल करके बैठा है। समझ लिया न कि चुनाव का समय है। जनता का दिमाग उसकी तरफ फिर सकता है, और यह नहीं जानता कि आज की जनता पहिले के समान अन्धेरे में नहीं है। सभी अपना स्वार्थ देखते हैं। आँख खोलकर जिन्दगी का रास्ता पार करते हैं।'

माँ ने कहा—'हाँ, बेटी ! आज तो सभी सयाने हैं। छोटी कौम वाले भी पूरे चतुर बन गये हैं। आँख में धूल झोंकते हैं।'

उसी समय रेणु की कुछ सहेलियाँ वहाँ आ गयीं। माँ उठ गयी। तभी एक ने कहा—'अब तो चुनाव की धुन है। नेताजी की बीबी···'

रेणु ने कहा—'अरी, न दिन को चैन, न रात को आराम !'

दूसरी बोली—'मिनिस्टर की बीवी भी तो तुम बनोगी। चुनाव जीतकर, फिर क्या इस गाँव में आ सकोगी ?'

इतनी बात सुनी, तो रेणु मुस्करा दी। तनिक हँस दी।

तभी चम्पा नाम की उसकी सहेली ने कहा—'बहिन जी, किसी देहात में जातीं, किसी छोटे-मोटे के साथ ब्याही जातीं; तो हम भी कभी देख लेतीं। कभी-न-कभी मिल पातीं। पर अब क्या···कहाँ चींटी, कहा हाथी···जमीन, आसमान का अन्तर पड़ गया।'

रेणु बोली—'अरी, तू चम्पा ! कहेगी, तो मैं तेरे घर आ जाया करूँगी।'

चम्पा ने कहा—'बस, बस, आ लीं तुम ! अब तो रानी बनोगी, रानी ! भैया कहता था कि शहर में मिनिस्टरों के बँगले पर कोई नहीं जा सकता। बन्दूक लिये संतरी रहता है। बिना आज्ञा पाये भला कोई प्रवेश कर पाता है।'

लेकिन उस बात को छोड़, दुलारी नाम की साथिन ने कहा—'अब असली बात कहो, इसे छोड़ो। हाँ, रेणु बहिन; हम सभी ने सोचा है कि तुम्हारा कुछ स्वागत सत्कार ··'

रेणु ने कहा—'अरी, पगली ! क्या मैं परायी हूँ, दूर की हूँ। भला मेरा सत्कार क्या ! यह सब रहने दो।'

दुलारी ने कहा—'तैयारी कर ली है। गाँव की कुछ और औरतें भी बुलायी हैं। जमींदार की लड़की रम्भा भी गाँव में आयी है। वह भी आयेगी।

रेणु बोली—'तो मैं आऊँगी।'

दुलारी ने कहा—'तो शकुन्तला के घर ! बस, अभी-अभी, एक घन्टे में !'

रेणु ने कहा—'अच्छा, अच्छा !'

सहेलियाँ उठ चलीं। तभी रेणु की भाभी ने पास आकर कहा—

'तो यह ठाठ हैं, बीबीजी के ! दोनों हाथ लड्डू ! हाँ, भाई ! भाग्य की बात है, जब पति अच्छा मिले, तो फिर सभी कुछ···'

रेणु ने कहा—'भाभी, यह तुम्हारा आशीष है।'

भाभी ने कहा—'बीबीजी, सच, भगवान् ने तुम्हारे साथ न्याय किया है। तुम्हें ऐसा ही घर मिलना चाहिये था···ऐसा पति···'

रेणु ने कहा—'भाभी, तुमसे कहती हूँ, पति तो ऐसा मिला है कि मेरे बिना कहे, उनसे कुछ भी नहीं किया जाता। अब तो रुपया भी सब मेरे ही द्वारा खर्च किया जाता है। कहते हैं, कि मैं अधिक खर्च कर देता हूँ। यों, घर और बाहर का प्रबंध मुझे ही देखना होता है।'

भाभी ने साँस भरी और कहा—'भाग्य की बात है ! भगवान् न्याय करता है।'

रेणु उसी समय कमरे में गयी और बक्स खोलकर नयी साड़ी निकाली, उसने शीशा लेकर बाल सँवारे। जब वह बाल काढ़कर, मुँह पर पाऊडर लगाकर और नई साड़ी पहनकर शकुन्तला के घर जाने को प्रस्तुत हो गयी, तभी सामने पड़ी भाभी ने हँसकर कहा—'अभी ननदोयीजी होते, तो हाथों में उठा लेते ! सच, देखकर फूले न समाते।'

रेणु ने कहा—'चलो, चलो, अब मैं मोटी हो गयी हूँ भाभी ! तुम्हारे ननदोयीजी से क्या उठ सकती हूँ।'

भाभी ने कहा—'बनती हो, जैसे रूप की परी···परिस्तानी हूर।'

एक अजीब प्रकार की हिलोर-सी लेकर रेणु ने कहा—'तुम भी जाने क्या-क्या कहती हो, भाभी।'

भाभी ने कहा—'सच कहती हूँ। रूप निखर आया है, अब तुम्हारा यह गुलाबी रंग की साड़ी भी तुम पर खूब फबती है।'

रेणु ने कहा—'पाँच सौ रुपयों में आयी है। मेरे इन्कार करते भी खरीद ली।' वह बोली—'मैं उनसे बार-बार कहती हूँ कि साड़ी और कपड़ों का ढेर लगा है, तो फिर भी नहीं मानते। जहाँ कहीं गये डिजाइन की साड़ी देखी कि बस···पैसा तो रखना ही नहीं जानते। जब

गर्मियों में कश्मीर गयी, तो कई हजार रुपये फेंक आये।'

भाभी ने कहा—'ननदजी, जब पैसा आता है, तो खर्च किया जाता है। पर इन गाँवों में क्या है। नंगा क्या नहाये, क्या निचोड़े···हाँ, यहाँ तो गरीबी ने ही लोगों को दम घोंट रखा है।'

रेणु ने कहा—'भाभी, गाँव के लोग भी काहिल हैं, मूर्ख बने हैं। बैल के साथ काम करने वाले भी बैल बने हैं। गाँव के लोग क्या बुद्धि का विकास करते हैं। जाकर देखो शहरों में कि आदमी बात के पैसे बनाते हैं···कल के भूखे आज लखपती दिखायी देते हैं। यह कहते हुए रेणु चल पड़ी। वह अपने सैण्डिलों से मकान के चौक में खट्-खट् करती हुई घर के दरवाजे से बाहर हो गयी।

किन्तु उसके पीछे खड़ी रह गयी भाभी जो एक किसान की बेटी बनकर किसान की ही बहू थी, रेणु की बात सुनकर, एकाएक ही, अपने आप में घुट गयी। जैसे उसके मानस में जहरीला धुआँ घुट गया। तभी उसने अपने आप कहा, छोकरी! अब बात बनाती है। धरती से चार हाथ उठकर चलती है···जिस बर्तन में खाया अब उसी में छेद करती है···हाँ, जिस गाँव में पैदा हुई, तो वहीं के आदमियों को जंगली और मूर्ख बताती है। पहुँच गयी है न शहर में, भाग्य भी अच्छा पा गयी है, तो अब आसमान में थेकली लगाती है। अब हमें पाँच-पाँच सौ रुपयों की साड़ी पहिनकर दिखाती हैं···चुड़ैल।'

उसी समय माँ ने बाहर से आकर कहा—'रेणु कहाँ गयी है बहू।'

बहू ने कहा—'पार्टी में।'

माँ बोली—'बड़ी नादान है, लड़की। भला इतने कीमती कपड़े पहनकर कोई गाँव में निकलती है।'

बहू अपने मन की बात मन में रखना चाहती थी, पर जब सास ने बात कही, तो उससे रहा नहीं गया। उसने कह दिया—'अम्माजी, गरीब आदमी अपनी रूखी और सूखी रोटी छिपाकर खाता है

और अमीर अपने पूरी-पराँठे दिखाकर खाता है। बीबीजी के पास जब हजार,-हजार पाँच-पाँच सौ रुपये की साड़ियाँ हैं, तब क्यों न पहिनी जायें···क्यों न दिखायी जायें, अपनी गाँव की इन गरीब घरों की सहेलियों को ?'

माँ ने जैसे बहू का ताना नहीं समझा। उसने सीधे स्वभाव कहा—'यह बुरा है। जो उछलकर चलता है, वह गिरता है।'

बहू ने फिर कहा—'यह बाद की बात है। चढ़ी धूप की ओर से भला कौन आँखें फेरता है।' यह कहते हुए बहू उधर बढ़ गयी कि जिधर उसका छोटा बच्चा चारपाई पर पड़ा सो रहा था।

लेकिन उसी समय, जब रेणुबाई अपनी साड़ी सम्भाले, लक्दक् बनी शकुन्तला के घर की ओर चली, तो तभी अचानक, उसका उत्साह कुछ मलीन पड़ गया। उसने देखा कि श्रीधर का मकान बन्द पड़ा था। वह बहुत दिन में उस मोहल्ले की तरफ गयी थी। जैसे बचपन की सभी स्मृतियाँ अचानक उभर आयीं। मकान के बाहरी पार्श्व में श्रीधर के साथियों ने चुनाव-कार्यालय बना रखा था। वहाँ पर एक आदमी बैठा था, वह भी ऊँघ रहा था। लगता था कि चुनाव का परिणाम निकलने से पूर्व ही उस शिविर में सन्नाटा छा गया।

रेणु आगे बढ़ गयी। वह शकुन्तला के घर पहुँच गयी, देखा कि गाँव की तीस-चालीस लड़कियाँ और बहुयें वहाँ पर एकत्र थीं। जब रेणु वहाँ पहुँची, तो सभी खड़ी हो गयीं। रेणु बीच में बैठायी गयी।

तभी एक लड़की ने कहा—'रेणु बहिन, संयोग की बात है कि इस अवसर पर हमारी वे सभी साथिनें यहाँ हैं कि जो बचपन में साथ खेलतीं, साथ ही स्कूल जातीं।'

रेणु ने कहा—'हाँ, यह मैं भी देखती हूँ। यह प्रमदा, यह सरला, वह बैठी कादम्बरी···'

दूर बैठी कादम्बरी ने कहा—ब्याह के बाद ही अब आयी हूँ, गाँव में।

पास में बैठी प्रमदा बोली—'जवान गयी थी कि बुढ़िया बन

आयी।'

एक ने कहा—'अकेली गयी थी कि अब चार बच्चों की माँ···'

बात पूरी नहीं कि सभी ओर से हँसी फूट पड़ी। तभी ढोलक बजी गाना आरम्भ हुआ। दो लड़की जो अपना रूप बदल आयी थीं, नाचने-गाने के मध्य आ खड़ी हुईं। उनमें एक लड़की थी, एक लड़का था। दोनों का प्रेम का अभिनय था। जिसमें प्रदर्शित किया गया था, बचपन का प्रेम। वह अभी चल ही रहा था कि तभी उनके मध्य आ गया एक शहरी बाबू—जैसे आफीसर;—उसने लड़की को अपनी ओर आकर्षित किया। जिसका परिणाम हुआ कि वह शहरी बाबू, उस लड़की को ले गया···बेचारा देहाती प्रेमी रास्ते में सूना खड़ा रहा, एकाकी!

वह प्रहसन समाप्त हुआ और फल-मिठायी का खाना आरम्भ हो गया। तभी एक लड़की ने कहा—'इस एकांकी का उपसंहार।'

एक लड़की बोली—'अदृश्य है। वह भविष्य के गर्भ में···'

तभी एक प्रौढ़ा वहाँ आयी और बोली—'अरी, लड़कियो! तुम्हें भी लाज नहीं! जरा भी नहीं सोचा कि श्रीधर···'

एक लड़की बोली—'चाची, हम सम्मान कर रही हैं, रेणु बहिन का।'

चाची ने कहा—'मोहल्ले का आदमी गाँव से दूर मौत के मुँह में पड़ा है और तुम···राम-राम! आँखें फूटीं, तो हीये की भी फूट गयी तुम्हारी।'

दूसरी लड़की ने कहा—'श्रीधर बाबू सेवा-पथ पर हैं।'

'हाँ, हाँ, और गाने-बजाने में, इस स्वागत सत्कार में···'

रेणु ने कहा—'चाची ठीक कहती हैं।' यह कहते हुए वह उठ चली, उसने सैण्डिल पहिन लिये। जब वह उस मकान से बाहर हुई, तो तभी एक लड़की उस चाची के पास आयी और बोली—'चल, चाची! तूने सब मजा बिगाड़ दिया। जाने कहाँ से कंकड़ी की तरह आ गिरी।'

दूसरी बोली—'चाची, हम तो इस रेणु को उल्लू बनाने लायी थीं। आज सभी-कुछ बता देना चाहती थीं कि वह क्या है···कैसा है, उसका रूप !'

चाची ने कहा—'बाहर से खबरें अच्छी नहीं आ रही हैं। श्रीधर की हालत खराब है।'

लेकिन उसी समय, जब पसीने मुँह पर लिये, तेजी के साथ रेणु अपने घर पहुँची, तो उसे देख, माँ ने कहा—'अरी, खा आयी दावत।'

जल्दी से अपने कमरे की ओर जाती हुई रेणु बोली—'खा आयी !' और वह सीधी, कटी डाल की तरह अपनी चारपाई पर जा पड़ी। उसकी साँस तेज थी। गर्मी भी उसे अधिक लग रही थी। उसके मन में बार-बार बात आ रही थी कि लड़कियों ने उसे मूर्ख बनाया, उसका उपहास करने की बात सोची।

किन्तु उसी समय वह बार-बार मन में आयी बात को लेकर भी नहीं कह रही थी, कह नहीं पा रही थी कि क्या सच, श्रीधर की अवस्था खराब है, वह मौत के मुँह में पड़ा है। और वह सोच रही थी कि आज क्या उसके मन में आया कि लड़कियों के कहने पर चली गयी। उन्हें दिखाने चली गयी कि वह है एक मिनिस्टर की पत्नी··· स्मृद्धिशाली···वैभव से पूर्ण···।

भाभी कमरे में आयी और बोली—'अरे, साड़ी भी नहीं उतारी यह श्रीमती···'

रेणु ने कहा—'भाभी, मैं परेशान हूँ, अधीर हूँ।'

भाभी ने कहा—'यही होता है। इस जिन्दगी में क्या सन्तोष मिलता है।'

उसी समय जगराम घर में आया और माँ को सुनाता हुआ बोला—'चलो, अच्छा हुआ। श्रीधर ने बड़ा काम किया। उसने सरकार और मिल मालिकों को झुका दिया।

माँ ने कहा—'क्या···।'

जगराम ने कहा—'किसानों की माँग मान ली। श्रीधर ने हड़ताल छोड़ दी। वह अब गाँव आ जायेगा।'

साँस रोककर, रेणु ने समाचार सुना और अपना मुँह जैसे निरुद्देश्य भाव में कमरे की छत की ओर उठा दिया।

चौबीस

यह बात गाँव के अधिकांश व्यक्तियों को भील चुकी थी कि श्रीधर रामाधीन चमार की लड़की के विवाह में रुपया लगा रहा है। रामाधीन ने जिस लड़के को विवाह के लिये चुना, वह सम्बन्ध प्रायः निश्चित हो चुका है। गाँव के वे जानकार व्यक्ति, इस विषय में या तो श्रीधर को अभी समझ नहीं पाये थे, या यदि उसका परिचय पाया भी, तो उस चुनाव पर एक आदमी का सत्य-सिद्धान्त और जीवन का आदर्श जान-बूझ कर अपनी दृष्टि से ओझल कर देना चाहते थे। मानों उन्हें यही प्रिय था। उस अवसर पर यही संगत लगता था। इसलिये, गाँव में जहाँ भी चार आदमी एकत्र होते, तो रामाधीन की लड़की और श्रीधर का उल्लेख प्रायः ऐसा बन गया कि जैसे वह स्वभाविक था, उन दिनों वह लोगों की चर्चा का प्रिय विषय बन गया था। किन्तु एक बात अवश्य थी, ऐसे लोग इस बात का सदा ध्यान रखते कि श्रीधर का समर्थक उनकी बात न सुन पाये। वे लोग उस सम्भावित संघर्ष से सदा बचते कि जिसका होना उन दिनों कठिन नहीं था। फलस्वरूप, कहा जाता अजी, यह तो दिखावा है। श्रीधर ऊँची कौड़ी उछालता है। रामाधीन की लड़की जैसा रंग-रूप गाँव में क्या किसी और लड़की पर दीखता है। तो कहा जाता, क्या प्रेम···प्रणय सम्बन्ध ? उत्तर दिया जाता, हाँ, हाँ, जी ! वह क्या कठिन है ! श्रीधर क्या देवता है ! और औरत के मामले में तो देवताओं ने भी इस धरती का कोना-कोना छान मारा था ! निदान, इतना सुनकर ही, व्यक्त किया जाता, राम-राम ! श्रीधर अब इतना नीचे गिरेगा···नहीं, नहीं, ऐसा नहीं दीखता। श्रीधर ऐसा नहीं सोच सकता। ऐसा करता तो···हाँ····'

'अर्थात्...?'

'ठाकुर की लड़की को ही वह क्यों अस्वीकार करता !'

'ओहो ! तो तुम समझते हो कि वह सौदा श्रीधर ने अस्वीकार किया था। भाई, भोले हो, तुम ! अजी, वह तो स्वयं रेणु ने पसन्द नहीं किया था। अब उसे कान्त जैसा लड़का मिला, तो तब, भला उसे किस प्रकार श्रीधर पसन्द आ सकता था !'

इस प्रकार, गाँव में जहाँ चुनाव के लिये लोगों को चर्चा करने का सुयोग मिला, वहाँ उस प्रसंग में रामाधीन की लड़की का भी उल्लेख किया जाने लगा।

किन्तु लोगों की उस भावना से दूर, उन दिनों चुनाव के कार्य में व्यस्त हुई रेणुबाई के मन में अवसर पाते ही, यह बात उठ आती कि आखिर गाँव की उन लड़कियों के मन में क्या आया, उन्होंने किस उद्देश्य का सम्पादन किया कि स्वागत समारोह का बहाना करके मुझे बुला लिया और फिर वह नाटक दिखाना आरम्भ कर दिया...सच, उन लड़कियों ने मेरा रूप ही चित्रित करना पसन्द किया !

रेणुबाई के लिये यह भी चकित कर देने वाली बात थी कि उस दिन से गाँव की एक लड़की भी उसके पास नहीं आयी। अन्यथा, वह व्यक्तिगत रूप से यह जानना चाहती थी कि उनका उद्देश्य क्या था, उन्हें क्या कहना था।

एक दिन जब अनायास ही, उसकी एक परिचित लड़की मिली, रेणु की उससे चर्चा चली, तो तभी, उसे बताया गया कि अधिकांश लड़कियों और बहुओं को वह पसन्द नहीं आया कि तुमने जिस श्रीधर को अपना कहा, उसीको अनायास अपना शत्रु मान लिया। उसे भुला दिया।'

रेणु ने बात सुनी, तो उसने एकाएक रोष से भरकर कहा—'मैं किसी के हाथ बिकी नहीं थी। यह मेरी इच्छा की बात थी। मैं अपना भला-बुरा समझने के लिये स्वतन्त्र थी।'

उस परिचित लड़की का नाम मालती था। उसने रेणु की बात

सुनी, तो बोली—'सुनो, बहिन तुम्हें गुस्सा आया है। समझती तो हूँ कि आज तुम्हारा बड़े आदमी से सम्बन्ध हुआ है। पर जानती हो, एक नारी के रूप में तुमने अच्छा नहीं किया, तुमने श्रीधर को विष दिया, विश्वास नहीं दिया। यह नारी का अपराध है।'

और अधिक चिढ़कर रेणु ने कहा—'मैं लैला नहीं थी···शीरीं नहीं! मैं एक भले घर की लड़की थी।'

मालती बोली—'सो ही तो! तभी तो घर से दूर बाढ़-पीड़ितों की मदद करने पहुँच गयी थीं। क्या तब भी सोचा कि तुम्हारी और श्रीधर की क्या स्थिति थी।'

एकाएक चीख कर रेणु ने कहा—'मालती···!'

मालती ने कहा—'मैं किसी मिनिस्टर की गुलाम नहीं हूँ। मुझे डर नहीं! खबरदार, जो मुझसे कभी बात की। आयी बड़े दिमाग वाली! चली है, खसम के लिये वोट माँगने···चुड़ैल कहीं की!' उस मालती ने इतना कहा और तेजी के साथ, वहाँ से आगे बढ़ चली। वह रेणु के देखते-देखते दृष्टि से ओझल हो गयी। जैसे वह मालती ही उसके मुँह पर तमाचा मार गयी। मुँह भी नोंच गयी। जिसकी झिलमिलाहट और पीड़ा अभी उसे थी। उसकी आँखों में अन्धेरा आ गया। सामने आसमान का सूरज भी डूब गया। रेणु उस समय मकान के दरवाजे पर खड़ी थी। उस अवस्था में ही, वह जैसे गिर पड़ना चाहती थी। तभी घर में से भाभी भागी निकल आयी और पीठ पीछे आकर बोली—'बीवीजी!'

किन्तु इतना सुनकर रेणु नहीं बोली। वह अपने मानस की स्थिति नहीं सुधार सकी। यद्यपि, उसे इस बात का पता नहीं था कि भाभी ने सभी बातें सुन ली थीं। उसकी ननद से गाँव की मालती क्या कह गयी है, इतना उसने पा लिया था। फिर भी, उसने अपना भाव व्यक्त नहीं किया। अपितु अपनी अज्ञानता दिखाती हुई बोली—'कौन थी, तुम्हारे पास?'

रेणु ने साँस भरी और छोड़ दी। वह घर के अन्दर लौट पड़ी। सीधी अपने कमरे में पहुँच गयी। किन्तु बाहर ड्योढ़ी के पास खड़ी भाभी ने अपने आप कहा—'सचाई छुपती नहीं। वह बोलती है। इसी से तो, वह मालती मुँह पर कह गयी···तमाचा-सा मार गयी, इन मेम-साहब के मुँह पर! वह बोली, किसी को तो पर निकालते देर लगती है, उड़ते भी; पर एक यह है कि पर निकलते ही ऐसी उड़ान भरी कि बस, जैसे जमींन पर कोई आदमी ही नहीं रहता है! रात क्या बात थी, नमक ही तो कम था साग में कि कटोरी उठा कर फेंक दी। और तो और, खूसट सारा भी अपनी बेटी का पक्ष ले बैठी और बोली—'इस बहू से खाना बनाना भी नहीं आता! गँवार आ गयी है, इस घर में!

बहू ने तभी साँस भरी और बोली—'जैसे सास-बेटी दोनों ही अमीर के घर पैदा हुयीं! और भूल गयीं उन दिनों को कि जब ठीक से रोटी भी नसीब नहीं होती थी। खाने का शऊर भी नहीं था। अब घर में चार पैसे आ गये, बेटी बड़े वर चली गयी, तो सभी की आँखें आस-मान की ओर उठ गयीं।

उसी समय वह खुले स्वर में बोली—'ऐसी रीत तो मैंने न कहीं देखी, न सुनीं।! सभी की शर्म उतर गयी। बेटी निर्लज्ज···'

तभी घर के चौक से रेणु की माँ ने आवाज दी—'अरी, बहू!'

बहू मुड़ पड़ी। घर में पहुँच गयी।

रेणु की माँ ने कहा—'दरवाजे पर खड़ी थी, क्या कर रही थी?'

किन्तु बहू कुछ बोली नहीं; सीधी रसोई घर में चली गयी।

तभी श्रीधर के पड़ौस की एक छोटी लड़की वहाँ आयी और बोली—'रेणु जीजी हैं?'

माँ ने कह दिया—'अपने कमरे में।'

लड़की उधर ही बढ़ गयी। रेणु चारपाई पर पड़ी थी। वह गम्भीर बनी थी। उसके मन में अनेक बातें उठ रही थीं। उस रात में ही गाँव में एक बड़ा जलसा होने वाला था। कुछ व्यक्ति बाहर से आये

थे। जमींदार के बंगले पर ठहरे हुये थे। अगले दिन वोट पड़ने थे। इसलिये उस रात में सभी के समक्ष अधिक काम था। कान्त दूसरे गाँव में था। वह भी उस गाँव में प्रातः तक आ जाने वाला था।

लड़की ने जाते ही, रेणु को एक फोटो दिया और एक पर्चा। उसने बताया, भैया श्रीधर ने दिया है। रेणु ने पर्चा और फोटो ले लिया। वह उसीका फोटो था। पर्चे में श्रीधर ने लिखा था, चूंकि मुझे किसी नारी का फोटो रखने का अधिकार नहीं; इसलिये सधन्यवाद वापिस। तुम्हारा फोटो रखना मेरा सामाजिक अपराध होगा।

लड़की लौट गयी। रेणु भी उठकर बैठ गयी। माँ ने जाकर पूछा 'अरी, क्या था?'

रेणु ने कह दिया—'मेरा फोटो था, वह भेज दिया।'

माँ बोली—'हाँ, ठीक तो था। उसे तेरा फोटो अब नहीं रखना था।'

किन्तु माँ के जाते ही, रेणु के मन में बात उठी, अब श्रीधर मेरा फोटो भी नहीं रख सकता। मेरी सूरत भी नहीं देख सकता''''मूर्ख!'

लेकिन रेणु ने इतना कह तो दिया, परन्तु जैसे उसके मानस में कोई सूजा हुआ फोड़ा था, वह दुख गया। इससे जो टीस पैदा हुई, उससे बेचैनी मिली। बात यह थी, रेणु देख रही थी कि जब से श्रीधर भूख-हड़ताल करके गाँव में आया, तो प्रायः सभी उससे जाकर मिले। स्त्रियाँ भी उसके पास गयीं। सुना कि देर से अब वना जमींदार और उसका लड़का जगपाल भी श्रीधर के पास बैठ आये। क्योंकि श्रीधर अभी दुर्बल था। अशक्त था। वह बिस्तर पर पड़ा था। किन्तु कैसी बात कि रेणु के घर का कोई भी उसके पास नहीं गया। न माँ गयी, न भाई गया, न बाप, रेणु जाये, इसका विचार तो उठना भी संगत नहीं था। क्योंकि गाँव की लड़कियों ने जिस अभद्र ढंग से उसका तिरस्कार किया, वह बात गाँव भर में फैल चुकी थी। सभी के मुँह पर आ गयी। माँ को भी बुरी लगी थी। भाई ने कहा था कि रेणु को नहीं

जाना था। अपना उपहास इस तरह नहीं कराना था।

किन्तु जिस भावना पर टिक कर श्रीधर ने चित्र वापिस किया, और जिन शब्दों को लिखकर भेजा, वे जब देर तक भी रेणु का मस्तिष्क झंकृत करते रहे, तो तभी, उसने अपने-आप कहा—'ठीक तो है, मैं बदली, तो वह भी बदल गया। मेरे लेखे अब सभी कुछ बदल गया।

उसी समय घर के चौक में भाई आया और वह जोर से बोला—'रेणु कहाँ है? शहर से वे वकील साहब भी आ गये। वे डाक्टर साहब भी···'

माँ ने कहा—'रेणु अपने कमरे में पड़ी है।'

'वाह, वाह! यह आज घर में बैठने का दिन है। बाहर लोग भागे-भागे फिर रहे हैं।' यह कहते हुए जगराम रेणु के कमरे के सामने जा खड़ा हुआ और बोला—'अरी, रेणु···'

एकाएक जैसे तड़पकर रेणु ने कहा—'हाँ, भैया! मैं क्या करूँगी।'

जैसे चकित बनकर जगराम ने कहा—'अरे, वाह! तुझे बोलना नहीं है, आज की सभा में! सभी का कहना है कि तुझे बोलना है।'

तभी जैसे झुंझलाकर रेणु ने कहा—'नहीं, नहीं। यह मेरा काम नहीं है।'

उसी समय माँ ने आकर कहा—'अरे, भैया! यह गाँव है। देखते तो है कि सौ दोस्त सौ दुश्मन सुनता तो है कि उस श्रीधर का गिरोह अब जोर पकड़ रहा है। कहाँ तो कम्बख्त मुर्दा बना चारपाई पर पड़ा था कि अब समय आते ही, यहाँ से वहाँ भागा फिर रहा है। जगह-जगह भाषण दे रहा है।'

इतनी बात सुनी, तो जगराम ने नोटों के बण्डल निकाले और कहा—'माँ, वोट भाषण से नहीं मिलेगा, इन नोटों से मिलेगा। कान्त बाबू के पास से अभी-अभी आदमी आया और यह रुपया दे गया। जानती है न, इस चुनाव में वोट पाने के लिये रुपया पानी की तरह बहाया जायेगा।'

मानों सहमकर माँ ने कहा—'यह रुपया...नोट...'

जगराम मुस्कराया—'माँ, वोट खरीदा जाता है, इस देश में।' यह मुखभरा श्रीधर किस बूते पर चुनाव लड़ेगा। कुछ हुड़दंगी छोकरों से चुनाव नहीं जीता जायेगा।'

माँ ने कहा—'सुनती हूँ आज श्रीधर की भी सभा है। उसका भाषण है।'

जगराम ने कहा—'हाँ, सुना तो—'

रेणु ने कहा—'नहीं, है...।'

जगराम बोला—'तो चिन्ता क्या है। हमारी सभा में शहर के नेता बोलेंगे। तुम देखना श्रीधर के यहाँ कुछ मनचले छोकरे ही दिखायी देंगे।'

एकाएक माँ ने कहा—'ऐ, जगराम ..'

जगराम बोला—'चिन्ता न कर, माँ! इस गाँव के दस-पाँच वोट से अधिक श्रीधर नहीं पा सकेगा।'

आतुर स्वर में माँ बोली—'गाँव-का-गाँव उसके घर गया है। उसके लिये अपनी ममता दिखा आया है। कैसी बात कि मन्दिर का पुजारी भी अपना डण्डा लिये घर-घर घूमता है। धर्म-अधर्म की बात करता है। कम्बख्त हमारे घरों से खाता है और अब समय पर हमीं को आँखें दिखाता है।'

जगराम बोला—'मुझे पता है। चुनाव हो जाने दो, बाद में इस साधु का भी बिस्तर गोल कर दिया जायगा। यह भी लोगों में गलत प्रचार करता है।' यह कहते हुए जगराम फिर बाहर चला गया।

उसी समय माँ ने रेणु की ओर देखा और साँस भरकर कहा... 'बेटी, यह भी जुआ है। चुनाव क्या नशा है। मौत का परवाना।'

देर की रुकी साँस छोड़कर रेणु ने कहा—'माँ, जब आदमी आगे बढ़ जाता है, तो पीछे की ओर नहीं देखता, लौटना भी नहीं चाहता।'

माँ ने कहा—'भगवान् ही रक्षक है। जगराम तो कहता है, पर

मुझे तो नहीं लगता कि इस गाँव का वोट श्रीधर को नहीं मिलेगा ।'

रेणु ने कहा—'यही सन्देह मेरे अन्दर भरा है ।'

माँ ने कहा—'श्रीधर के आदमी गाँव-गाँव में पैदा हो गये हैं । सुनती हूँ कि वे गुड़-चना खाकर काम करते हैं । वह भी अपने पास से खाते हैं ।'

मानों खिन्न बनकर, रेणु ने कहा—'और यहाँ तो लोग शराब पीते हैं, मिठाई-पूरी खाते हैं । अभी तक कई सौ रुपये तो सिगरेटों में उठ चुके हैं । उस दिन आये, तो कहते थे कि मकान पर जो रुपया लिया, वह समाप्त हो गया । फिर कर्ज लिया गया ।'

माँ ने कहा—'राम, राम ! यह रास्ता खराब है । यह नशा क्या अच्छा है ।'

रेणु बोली—'रात-दिन दौड़ते हैं । न ठीक से सोते है, न खाते हैं ।'

माँ ने कहा—'और एक श्रीधर है, जिसे कोई चिन्ता नहीं । अपनी नींद सोता है, अपनी नींद उठता है । घर से एक पैसा लगाया नहीं और पकी-पकायी खाना चाहता है ।'

रेणु ने साँस भरी—'हाँ, माँ ! यही होता है । इन चुनावों में यह भी देखा जाता है ।'

माँ ने कहा—'बेटी, यह तो मानेगी तू कि श्रीधर सेवक रहा है । उसने अपना सुख जनता की झोली में डाल दिया है ।'

जैसे आतुर बनकर रेणु ने कहा—'हाँ, हाँ, इसे कौन अस्वीकार करता है ।'

माँ ने कहा—'कल मिली थी जगना की माँ, तो कहती थी, तुम्हारे या जमींदार के घर को छोड़ और कोई नहीं कहता कि श्रीधर बुरा है । सभी उसे अच्छा कहते हैं, बड़ाई करते हैं ।'

रेणु ने कहा—'माँ, कहा न तुमने, हम क्या उसका खेत काटते हैं । दोस्त कहने वाले ही तो गलत प्रचार करते हैं ।'

उसी समय रेणु का पिता जंगल से लौट आया । जब से जगराम

चुनाव में लगा था, तो वृद्ध खेतों पर जाता था। उन्हें देखता था। पति को आया देख, रेणु की माँ बाहर चली। तब रेणु भी उठ खड़ी हुई। वह जमींदार के घर जाने के लिये तैयार होने लगी। जब वह नयी धोती और नया ब्लाउज बदलकर मकान के चौक में पहुँची, तो भाभी ने कहा...'बीबीजी, भोजन•••'

रेणु ने कह दिया—'अभी नहीं।'

'तो लौट कर—जल्से के बाद।'

रेणु बात का उत्तर नहीं दिया। वह आगे बढ़ गयी। दहलीज में चारपाई पर बैठे पिता ने उसकी ओर देखा और हंसकर कहा—'तो बेटी, जल्से में•••?'

रेणु ने कहा—'हां, पिताजी।'

पिता ने कहा—'अच्छा, अच्छा, तू चल, मैं भी आऊंगा। आज मैं तेरा भी भाषण सुनूंगा।'

रेणु चल पड़ी। तभी उसके पिता ने पत्नी को सुनाया 'ठकुराइन, मुझे दाल में काला नजर आता है। जिससे सुनो, वह श्रीपत का नाम लेता है। उसकी प्रशंसा करता है।'

ठकुराइन ने कहा—'हां, यही तो! उसने काम किया है। लोगों ने उसे देखा है।

ठाकुर ने साँस भरी और कहा—'ठकुराइन, यह देश देवता और ऋषियों का कहा जाता है। उनकी पूजा की जाती है। इसीलिये तो कि वे जनता के हितेच्छु थे। जनता का कल्याण करते थे। तभी तो हजारों वर्ष बाद भी, आज उन्हें पूजा जाता है।'

ठकुराइन ने कहा—'काम की पूजा होती है, आदमी की नहीं। इस कान्त ने काम क्या किया है?'

ठाकुर ने कहा—'यह काम किया कि मौका मिला, तो वह भी चोर-डाकुओं का साथी बनकर बड़ा आदमी बन गया। भगवान् हो गया।'

ठकुराइन ने कहा—'ऐसे आदमी कभी भी गिरते हैं। अपना तमाशा बनाते हैं।'

चंचल बनकर ठाकुर बोला—'पर अब तो वह हमारा दामाद है। उसका भला सोचना हमारा कर्त्तव्य है।'

ठकुराइन ने साँस भरी और कहा—'हाँ, अब तो हड्डी गले में फँस गयी है। न बाहर जाती है, न अन्दर जाती है···मुझे तो लड़की का सुख-चैन भी अन्धेरे में पड़ा दीखता है।'

ठाकुर ने कहा—'बात तुम्हारी थी, लड़की की थी, नहीं तो···'

पत्नी चौंक गयी और बोली—'नहीं तो, क्या ?'

ठाकुर बात टाल गया और बोला—'अब बात छेड़ने से क्या। साँप निकल गया, लाठी पीटने से क्या मिलेगा। नहीं तो श्रीधर से अच्छा लड़का मुझे आज तक नहीं दिखायी दिया···अवसर की बात, हमारी बुद्धि की बात कि आज वही सरल और सीधा आदमी हमने दुश्मन समझ लिया···जैसे गैर!' ठाकुर ने स्वर पर जोर दिया और कहा—'मैं आज भी कहता हूँ, श्रीधर से बड़ा हितेच्छु, हमारा इस गाँव में दूसरा नहीं होगा। जरूर, वह अब भी हमारी बुराई नहीं करता होगा। हमने उसके साथ अपराध किया है···इन्सानियत के साथ पाप···'

ठकुराइन मौन थी। जैसे वह अन्धेरे में खो गयी थी। उसके सिर की शिरायें भी सुन्न पड़ गयी थीं।

उसी समय एक लड़का भागा हुआ आया और हर्ष से ताली बजाता हुआ बोला—'बाबा, चलो न, श्रीधर काका बोल रहा है। लोगों ने उसके ऊपर फूल बरसाये हैं, गले में माला डाली है। और बाबा, वह दूसरी सभा है न, रेणु दीदी की, वहाँ कोई नहीं गया···पाँच-दस आदमियों को छोड़, मुझे वहाँ कोई भी दिखायी नहीं पड़ा।

एकाएक जैसे उल्लास से भर ठाकुर ने कहा—'सच।'

लड़का और अधिक उल्लास से भरकर बोला—'सच, बाबा!

लोग चिल्ला रहे हैं, श्रीधर की जय हो'''जिन्दाबाद ।'

ठाकुर ने लाठी उठा ली और आवेगपूर्ण बनकर बोला—चल, बेटा चल !' और वह जोर से चिल्लाया—'श्रीधर की जय हो'''विजय हो, श्रीधर की'''।'

पच्चीस

प्रान्त की धारा सभा का चुनाव सम्पन्न हो गया। उसका परिणाम भी घोषित कर दिया गया। श्रीधर ने जितने मतों से विजय प्राप्त की, कदाचित् ही उतने मत किसी सदस्य को प्राप्त हुए। परन्तु सबसे अधिक आश्चर्य जनता को इस बात से हुआ कि श्रीधर का प्रधान प्रतिद्वन्द्वी कान्त अपनी जमानत की रक्षा भी नहीं कर सका। इसका परिणाम यह हुआ कि कान्त चुनाव का परिणाम घोषित होने के बाद ही बिस्तर पर पड़ गया। वह दृश्य सचमुच ही दयनीय और अकल्पनीय था कि जहाँ वोटों को गिना जा रहा था, और चुनाव का परिणाम घोषित होने वाला था। वहाँ कान्त के समर्थक अधिक थे। वे सभी उसके स्वागत का सामान एकत्र कर लाये थे। फूल मालायें थीं, बैण्ड बाजा था। किन्तु जब चुनाव परिणाम सुनाया गया, तो कान्त चुपके से किस ओर खिसक गया, इसका पता भी नहीं चल सका। उस समय रेणु का भी बुरा हाल था। परिणाम सुनते ही, उसकी आँखों में भी अन्धेरा छा गया। उसके समक्ष जैसे सभी कुछ शून्य पड़ चुका था।

किन्तु इसके विपरीत श्रीधर मानो उस धरती के हर्ष और क्षोभ से दूर रहना चाहता था। उस विजय को पाकर भी, उसके मन में पीड़ा थी। लोग उसका स्वागत कर रहे थे, उसके गले में फूल-मालायें डाल रहे थे, परन्तु वह स्वयं देखता था कि उस विशाल भीड़ में रेणुबाई उदास और खिन्न बनी है। उसका जैसे कुछ खो गया है, छिन गया है, उससे! फलस्वरूप, कठिनाई से श्रीधर उस स्थान पर गया और रेणु के समीप होकर बोला—'कान्त जी की हार पर मुझे दुःख है रेणुबाई!'

रेणु ने इतना सुना और सहज-भाव से श्रीधर की ओर देखा, फिर अपना सिर झुका दिया। उससे बोला नहीं गया।

श्रीधर ने कहा—'इस विजय पर मुझे आनन्द नहीं है, रेणुबाई ! मेरे कारण तुम्हें मनःस्ताप हो, इतनी मेरी अभिलाषा नहीं !'

तभी कठिनाई से रेणुबाई ने कहा—'श्रीधर जी, मेरी बधाई स्वीकार करें।'

श्रीधर ने कहा—'और कान्त बाबू कहाँ हैं ?'

रेणु ने कहा—'वे चले गये, यहाँ से जा चुके हैं।'

उसी समय श्रीधर फिर लोगों से घिर गया। जनता उसका जलूस निकालना चाहती थी। एक सजी हुई गाड़ी में से बैठाने के लिये आतुर थी। किन्तु श्रीधर उसके लिये सहमत नहीं था। उसका मत था कि जीत मेरी नहीं, जनता की है। उसकी समस्या तथा विचारों की है। इसलिये जलूस नहीं निकाला गया। श्रीधर की विजय के उपलक्ष में कोई जलसा भी नहीं किया गया। उसी दिन श्रीधर गाँव लौट गया। वह अपने घर पहुँचते ही, माँ के चरणों में झुक गया।

गद्‌गद् भाव में माँ ने कहा—'जीते रहो, मेरे बेटा !'

श्रीधर ने कहा—'माँ, तुम्हारा आशीष है।'

गाँव उसके घर पर एकत्र था। उसे साधुवाद दे रहा था। तभी लोगों ने देखा कि लाठी के बल चलते हुए रेणुबाई का पिता वहाँ आया और जोर से बोला—'अरे श्रीधर···'

श्रीधर ने कहा—'आपका आशीष है।' और वह उस वृद्ध के पैरों में झुक गया।

वृद्ध ठाकुर ने कहा—'मुझे पता था। मेरा मन कहता था। तुम्हें जनता का आशीष मिला था। सत्य तुम्हारे साथ था।'

एक ओर से आवाज उठी—और ठाकुर तुम्हारा दामाद ? वह कल का मिनिस्टर ?'

ठाकुर ने जोर से चीखकर कहा—'अरे उसकी बात छोड़ो। तुम देवता की पूजा करो। जानते हो कि देश में बहुत से चोर हैं··· डाकू···'

'क्या तुम्हारा दामाद…?'

ठाकुर और अधिक तेज बन गया—'हाँ, वह भी चोर है…डाकू…'

लोगों ने सुना और जोर का ठहाका मार दिया।

तभी श्रीधर ने कहा—'भाई अपनों के दोष भुलाये जाते हैं। उन्हें सुपथ पर लाने के प्रयत्न किये जाते हैं। यह विजय गाँव की है, आपके सहयोग और आशीष की है, मेरी नहीं।

रेणु के पिता ने कहा—'भले आदमी यही कहते हैं। जो उछलते हैं, वे गिरते हैं। असमय ही मर जाते हैं।'

'तो तुम्हारा दामाद…रेणु…'

ठाकुर ने कहा—'भैया, अब वह मिनिस्टर नहीं रहा। साधारण आदमी बन गया। जो कल हवा में उड़ रहा था, आज धरती पर आ गया।'

एक बोला—'आ नहीं गया, हवा का रुख बदला कि गिर गया। चुटीला बन गया…उसका मुंह…'

उसी समय श्रीधर ने ठाकुर की ओर देखकर कहा—"आप कान्त बाबू को समझाइयेगा। रेणु को भी। चुनाव तो होते हैं। वे फिर जीतेंगे…फिर बन जायेंगे मिनिस्टर…देश के नेता…'

ठाकुर कड़वे भाव से मुस्करा दिया—श्रीधर, अब वह कुछ नहीं बन सकेगा। जो एक बार गिरा, तो फिर क्या उठ सकेगा—नहीं!' यह कहते हुए ठाकुर घर की ओर चल दिया। वह घर पहुँचा, तो देखा कि माँ-बेटा बैठे बात कर रहे थे। पिता को देखते ही, जगराम लाल बनकर बोला—'पिताजी आप श्रीधर के पास गये थे? दुश्मन के पास! आप कल सभा में भी गये थे!'

ठाकुर ने अपनी बूढ़ी आँखों से पुत्र की ओर देखा और कहा—'आदमी बनो, आदमी! श्रीधर देवता है, तुमने उसे कहाँ समझा है! अगर एक चोर और देश के दुश्मन को तुमने अपना सम्बन्धी बना लिया, तो यह मत भूलो कि सत्य झूठ बन जायेगा। श्रीधर के दुश्मन

बनकर तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा।'

जगराम ने अपने हाथ की मुट्ठियाँ भींच लीं और लाल बनकर कहा—'पिताजी, इस श्रीधर ने कान्त का नाश कर दिया है !'

बूढ़ा मुस्कराया—'मेरे बच्चे ! वह कान्त अन्धा है। उसने जिस श्रीधर को तिनका समझा और तोड़ देना चाहा आज वही श्रीधर लोगों का आशीष प्राप्त कर रहा है। देखा तुमने, सेवा और त्याग का कितना महत्व है। जिसने एक पैसा नहीं लगाया, वह जीत गया। लोगों ने कान्त का रुपया भी खाया और वोट श्रीधर को दिया। बोलो श्रीधर ने क्या उन लोगों से जाकर कहा था। यह तो लोगों की आत्मा का आह्वान था। मैं भी अपनी आत्मा की पुकार सुनकर, उस श्रीधर के पास दौड़ गया।

इतनी बात सुनी, तो जगराम बोल नहीं सका। उसका सिर झुक गया।

तभी ठाकुराइन ने साँस भरी और कहा—'कान्त चुनाव तो हारा ही, गरीब भी बन गया। कर्जदार बन गया।'

वृद्ध ने अपने स्वर पर जोर दिया और कहा—'वह गरीब बने तो बुरा नहीं, पर वह तो दुराचार का घर बन गया। उस दिन जब मेरे पास बैठा था, तो शराब पिये था। उसके मुंह से दुर्गन्ध का धुआँ उठ रहा था। वह मेरा दामाद है और बड़ा आदमी है, तो क्या इसीलिये मुझे उसका दोष नहीं देखना था···मैं कहता हूँ, ऐसा आदमी समाज के खुले चौराहे पर गोली मार देने के काबिल है।'

खिन्न बनकर ठाकुराइन बोली—'बोले जाओगे, चुप नहीं रहोगे।'

वृद्ध ने लाठी का ठोक जमीन में मारा और कहा—'मैं किसीका दबैल नहीं हूँ। मैं शर्मिन्दा हूँ कि क्या सोचकर मैंने अपनी लड़की का हाथ उस शराबी और पर स्त्री-लोलुप आदमी के हाथों में सौंप दिया। देखा तुमने, जो पैसा कान्त ने बदमाशी से प्राप्त किया, वह एक ही झोंके में चला गया। बोलो, अब उसके पास क्या रहा ? वह इन्सान होता, सच्चरित्र होता, तो रुपया खोकर भी वह मालदार था। एक बार

हार कर भी, वह अभी जीते जाने की आशा कर सकता था।'

ठाकुराइनने साँस भरी और कहा—'हमें तो लड़की का ध्यान है कि उसका···'

वृद्ध ने कहा—'तुम्हारे साथ मैं भी मूर्ख बन गया। हमने हाथ में आया सोने का ढेला फेंक कर, मिट्टी का ढेला उठा लिया। श्रीधर हमारा दामाद होता, तो जानती हो, आज मैं फूला न समाता। धरती पर स्वर्ग देखता।'

उसी समय जगराम उठ गया। वह बाहर चला गया।

वह दिन गया, रात आ गयी। फिर भी दिन आये, रातें भी। यों, चुनाव को मास बीते, वर्ष बीत गया। इस बीच में श्रीधर के साथ जो सबसे अधिक दुःखान्त और पीड़ा भरी बात हुई, वह यह कि कई दिन बीमार रहकर उसकी माँ का देहावसान हो गया। श्रीधर अपने घर में अकेला रह गया। दूर की एक विधवा मौसी थी, माँ के मरने के बाद वह आ गयी। वह फिर लौटकर नहीं गयी। अभाव उसका भी था। वह वृद्धा थी। निःसहाय थी। अतएव श्रीधर ने स्वयं ही, उसे घर पर रहने का अनुरोध किया।

किन्तु उन दिनों श्रीधर मन और मस्तिष्क से स्वस्थ नहीं था। उसके ऊपर काम का भी बोझ था। गाँव में उसके साथ, चुनाव की प्रतिक्रिया के रूप में एक घटना यह और घटी कि जिस रामाधीन की लड़की के विवाह के हेतु उसने आर्थिक सहायता दी, विवाह की तिथि से कुछ पूर्व ही, लड़के वालों ने यह कह कर वह विवाह रोक दिया कि लड़की का चरित्र अच्छा नहीं। इसी प्रसंग में उन उद्दण्ड लड़के वालों ने साफ कह दिया कि लड़की का और गाँव के ठाकुर श्रीधर का सम्बन्ध सात्विक नहीं। निश्चय ही यह बात रामाधीन ने श्रीधर से नहीं कही। परन्तु ऐसी बात छुप नहीं सकती थी। वह उड़ी और गाँव भर में फैल गयी। श्रीधर के कानों में भी आ गयी।

परन्तु उन दिनों श्रीधर के समक्ष एक और समस्या थी। गाँव से

दूर, नगर में रहती हुई रेणु एक अजीब प्रकार की विभीषिका में पड़ गयी थी। उसका पति कान्त चुनाव की हार खाकर जब एक बार बिस्तर पर पड़ा, तो वह उठ नहीं सका। वह देर तक बीमार रहा। सहज ही श्रीधर को इस बात का पता चल गया। फलस्वरूप, वह एक बार उसके घर गया और एक बड़ी राशि रेणुबाई को भेंट कर आया। किन्तु रेणु की समस्या का यदि वहीं अन्त होता तो भी ठीक था ; वहां तो जैसे विषमताओं ने अपना डेरा डाल दिया दिया था। बीमारी से उठा तो कान्त अकारण ही, उस रेणु के प्रति ईर्षित और प्रतिक्रियावादी बन गया। धीरे-धीरे वह इतना उच्छृंखल बना कि साफ कहने लगा कि मेरी हार का कारण तू है···तूने एक बार उस श्रीधर को स्नेह दान दिया, तो फिर भुलाया नहीं! अब तक मुझे भुलावे में रखा। मूर्ख बनाया।

रेणु की उस विषम अवस्था का वर्णन रामनगर गांव में भी पहुँच रहा था। श्रीधर को भी सुनाया जा रहा था। निश्चय ही, कुछ लोग इस बात को लेकर उपहास करना चाहते थे, परन्तु श्रीधर के समक्ष इसका कोई उल्लेख नहीं कर पाता था। श्रीधर ने रेणु की सहायता की, गाँव में इस समाचार को भी प्रसारित किया गया।

किन्तु श्रीधर मानों उन दिनों सभी ओर से उदासीन हो चुका था। एक बार जब वह गाँव में आया, तो तभी, उसे सुनाया गया कि रामाधीन चमार अपनी लड़की के लिये परेशान है, चिन्तातुर है। वह रात-दिन रोता है। उसकी लड़की भी अधीर और व्याकुल हो चली है। लेकिन इस समाचार के बाद भी, जो अन्य बात श्रीधर के समक्ष आयी, वह यह थी कि जब वह रात में खा-पीकर अपने कमरे में पड़ा था, तो तभी रेणु की माँ वहाँ आयी। श्रीधर के कमरे के द्वार पर आ खड़ी हुई। देखते ही, श्रीधर बोला—'अरे, चाची, तुम···'

आगे बढ़कर चाची ने कहा—'श्रीधर, मेरा जन्म बिगड़ रहा है। दिखता है कि मेरा बुढ़ापा···'

श्रीधर ने आकुल बनकर कहा—'क्या बात···कोई नई बात···'

चाची ने कहा—'कान्त और रेणु का सम्बन्ध बिगड़ गया। दोनों में इतना मतभेद हो गया कि—'

श्रीधर गम्भीर बन गया। वह एकाएक उस चाची की बात पर अपना मत नहीं दे सका।

किन्तु चाची ने जैसे आहत बनकर फिर कहा—'श्रीधर भैया, ऐसे तो लड़की मर जायगी। वह कहीं की भी नहीं रहेगी।'

श्रीधर ने कहा—'चाची, मुझे बताओ कि मैं क्या करूँ। समस्या कठिन है। यह एक घर के पति-पत्नी की बात है। कान्त अब जिस रास्ते पर चला है, उसका मुझे पता है। खेद है कि परिस्थितिवश उसे जो कुछ प्राप्त हुआ, वह उसका उपयोग नहीं कर सका। वह अन्धा बन गया।

रेणु की माँ ने कहा—'बेटा, अब रास्ता बताओ। मेरी मदद करो, वह तुम्हारी रेणु···वह कोमल···वह भाग्य की मारी···'

श्रीधर ने कहा—'मैं प्रातः ही फिर शहर जा रहा हूँ। कान्त से मिलूंगा। तुम कहती हो, तो उससे बात भी करूँगा।'

चाची उठ चली। श्रीधर फिर अकेला रह गया। वह रेणु का प्रश्न भी उस प्रश्न के साथ ले बैठा कि जो रामाधीन की लड़की रूप में कुछ देर पूर्व उसके मस्तिष्क में उठा था। उसी अवस्था में श्रीधर सो गया। प्रातः ही, वह फिर शहर की ओर चल दिया।

नगर में जाकर, श्रीधर ने सर्वप्रथम जो कार्य सम्पादित किया, वह था, कान्त के घर पहुँचना। वह गया। कान्त घर पर ही मिला। देखते ही, कान्त ने कहा—'तो आप···'

श्रीधर ने कहा—'मुझे पता था कि तुम्हें आश्चर्य होगा। मेरा आना भी पसन्द नहीं होगा।'

सुनकर, कान्त जैसे सूखे भाव से मुस्कराया—'नहीं, नहीं। मेरा यह भी मत है कि श्रीधर का आगमन मुझसे मिलने के लिये नहीं हुआ, इसका दूसरा ही अर्थ था।'

बात सुनी, तो जैसे श्रीधर का दिमाग घूम गया। उसने एक दम ही तेज स्वर में कहा—'कान्त बाबू...'

कान्त जोर से हँस पड़ा और बोला—'महाशय, मैं इतना ज्ञान रखता हूँ। आप रेणु...'

श्रीधर अभी बैठा ही था कि खड़ा हो गया और खिन्न बनकर बोला—'लगता है कि सचमुच ही अन्धे बन गये हो। तुम विवेकहीन...'

कान्त बात पूरी नहीं सुन सका। उसने मेज का दरवाजा खोला और उसमें से पिस्तौल निकालकर बोला—'श्रीमन्, मेरे पास यह है ! आप सरीखे आदमियों की दवा...'

उसी समय दूसरे कमरे से रेणु निकल आयी। कान्त के हाथ में पिस्तौल देख, वह चीख पड़ी—'कान्त...'

किन्तु उसी समय, धीर भाव से श्रीधर ने अपने कुरते के बटन खोल दिये और कहा—'एक राक्षस को यदि मैं आदमी बना सका, तो सुख मानूंगा। इसके लिये गोली खा लूंगा।'

लेकिन कान्त तो जैसे अन्धा बन गया था। वह स्वयं चीख पड़ा—'तुम मेरे घर से चले जाओ। निकल जाओ, अभी।'

यह सुनना था कि श्रीधर का पुरुष जैसे धक्का मारकर बाहर आ गया। उसने श्रीधर के आदर्शवादी और मानवतावादी लक्ष्य को जैसे धिक्कार दिया। कान्त ने जैसे निकल जाने की बात की कि श्रीधर भेड़िये के सदृश आगे बढ़ा और कान्त के हाथ का पिस्तौल छीन लिया। तभी उसके मुँह पर जोर का तमाचा मारकर बोला—'जी चाहता है कि तेरे प्राण निकाल लूं...तुझे इसी क्षण...और उसने एक ही हाथ से कान्त का गला दबा दिया। तभी वह उसे धक्का देकर, घृणा और क्षोभ से भरा उस मकान से बाहर हो गया। जाते समय वह पिस्तौल भी वहीं फेंक गया।

फलस्वरूप, अपने मन की उस अवस्था में श्रीधर देर तक गाँव नहीं जा सका। जब वह लगभग दो मास बाद गाँव पहुँचा, तो तभी,

वे पीछे छूट गये दो प्रश्न फिर उसके सामने आये। ज्ञात हुआ कि पुत्री के दुःख में दुःखी बूढ़ा रामाधीन मर गया। उसका बेटा दो दिन बीमार रहकर पहिले ही मर चुका था। पता चला कि रेणु गाँव में है, उसका पति से झगड़ा हो चुका है।

इस प्रकार, अनायास ही श्रीधर एकाएक समझ नहीं पाया कि वह क्या करे। वह किस पथ का अनुसरण करे। जब वह आया, तो सन्ध्या बीतते ही, वह रामाधीन चमार के घर पहुँच गया। देखा कि घर में छोटा-सा दीपक टिमटिमा रहा था। जाते ही, श्रीधर ने पुकारा—'लखिया—'

सुनते ही, लखिया ने कहा—'कौन?'

'मैं, श्रीधर!'

लखिया सहम गयी। किन्तु उसकी माँ ने तुरन्त ही कहा—'आओ, ठाकुर! आओ।'

श्रीधर अन्दर पहुँच गया। उसने कहा—'लखिया की माँ, मैं बाहर गया था। आकर सुना तो—'

राखिया की माँ बोली—'ठाकुर यही होना था। भगवान को यही मंजूर था।'

श्रीधर ने कहा—'देखता हूँ तुम दुःखी हो'''तुम्हारी यह लखिया'''

'हाँ, ठाकुर! इसीकी चिन्ता तो मुझे है। सोचती हूँ कि मैं भी जाने वाली हूँ। किसी दिन भी जा सकती हूँ। पति गया, पुत्र गया, तो अब मैं'''

श्रीधर मौन था। वह बार-बार उस लखिया की ओर देख रहा था कि जिसके गोरे गालों पर आँसुओं का वेग उमड़ आया था। तभी चंचल बनकर, श्रीधर ने कहा—'लखिया की माँ, तुम्हारी लखिया प्रसन्न हो, तो मैं कुछ और भी कर सकता हूँ। देखता हूँ कि मेरे ही कारण इसका विवाह नहीं हुआ'''इसका जीवन'''

लखिया की माँ ने कहा—'ठाकुर, तुम्हारा क्या दोष । गाँव ही ऐसा है । लोगों में ईर्षा और जलन है ।'

श्रीधर बोला—'लखिया की माँ, यह तो जानती हो, इन इन्सानों में कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं, सभी समान हैं । इनकी जाति भी कोई और नहीं ।'

लखिया की माँ जैसे इस बात को नहीं समझी । वह मौन बनी रही ।

श्रीधर बोला—'मैं कुछ और कहूं तो मानोगी ।'

जैसे आतुर बनकर लखिया की माँ ने कहा—'ठाकुर, और क्या ? हाँ, क्या ? और तुम्हारी बात न मानूंगी, तो क्या भगवान के सामने अपराधी बनूंगी ?'

श्रीधर बोला—'तुम्हारी लखिया तैयार हो, तो मैं उसके साथ विवाह कर लूंगा ।'

सुनते ही, जैसे आसमान से गिरकर, लखिया की माँ ने कहा—ठाकुर तुम···क्यों बूढ़ी को बहकाते हो ।'

श्रीधर खड़ा हो गया और बोला—'कल मन्दिर पर विवाह हो जायगा । तुम तैयार रहना । बेटी को लेकर सन्ध्या समय मन्दिर पर पहुँच जाना ।' यह कहते हुए श्रीधर वहाँ से लौट गया । वह घर पहुँच कर सो गया ।

किन्तु जब दूसरा दिन हुआ, गाँव के सभी छोटे-बड़े वर्ग में श्रीधर द्वारा लिखा निमन्त्रण-पत्र पहुँचाया गया, तो जैसे गाँव भ्रांति के मुख पर पहुँच गया । वह आग में जलने लगा । सभी ने एक ही बात कही, एक ही स्वर उच्चारित किया—'यह श्रीधर···चमार की बेटी···यह नहीं हो सकेगा···नहीं होगा···।'

एक-एक कर गाँव के लोग श्रीधर के मकान पर एकत्र हुए । स्त्रियाँ भी आयीं । बच्चे और बूढ़े भी आये । श्रीधर अपने मकान के अन्दर था । वह बाहर शोर सुन रहा था कि लोग कह रहे थे—'यह जाति के

सम्मान पर धक्का है'''मुँह काला किया जा रहा है, ठाकुरों का'''

श्रीधर बाहर निकल आया। वह उस उत्तेजित समाज के सम्मुख आ खड़ा हुआ। वह गम्भीर था। जैसे पत्थर। तभी उसने कहा—'मैं आ गया हूँ, आप की गोद में पाला-पोसा गया हूँ। मेरी ओर से आप अधिकार रखते हैं कि मुझे मार दें, परन्तु यह अधिकार नहीं रखते कि मेरे विचारों की हत्या कर दें। आपने सुना कि मेरे ही कारण उस चमार की लड़की का विवाह रुक गया। कुछ ईर्षालुओं ने उस कन्या का जीवन बरबाद कर दिया। और आप जानते होंगे कि मैं विवाह का इच्छुक नहीं। आप में से कोई तैयार हो तो बताइये, उस लड़की से विवाह करने वाले को मैं अपना समस्त धन अर्पित कर दूँगा। मैंने जो कुछ परिश्रम से उपार्जित किया है, वह भेंट कर दूँगा। बोलो है कोई आप में?'

बात सुनी, तो उस पूरे समाज में सन्नाटा छा गया। जैसे सभी का मुँह सी दिया गया। लोगों ने आपस में कहना शुरू किया—'यह श्रीधर रुपया दे देगा'''सर्वस्व! ओह, सच ही अब इसके पास रुपया है'''अधिक भी हो सकता है'''

किन्तु तभी श्रीधर जोर से बोला—'भाईयों, आपने मुझे अपना स्नेह प्रदान किया है। बल दिया। जीवन दिया। तो अब, इस जीवन को, अपने स्नेह को नीचे मत गिरने दो। मुझे आशीष दो कि मेरे कारण जिस लड़की का विवाह नहीं हो सका, तो मैं स्वयं उसके चरणों में अपना मस्तक झुका दूँ'''मैं आपसे इतनी शक्ति चाहता हूँ कि समाज को बता दूँ, इन्सान एक है, आत्मा एक; तो अब मैं उस चमार की लड़की को पत्नी बनाकर, आपके समक्ष उपस्थित होना चाहता हूँ''' मैं दिखाना चाहता हूँ कि समाज की क्रूरता, बर्बरता और यह अनाचारिता देर तक नहीं चलेगी। हवा बदली है, विश्व बदला है, तो हमें भी बदलना पड़ेगा'''हमें भी समाज की एक-सूत्रता को स्वीकार करना पड़ेगा। तभी हमारा जीवन है। मैं सोचता हूँ कि मेरा उदाहरण आपके

मुँह पर स्याही नहीं पोतेगा, सदियों से मुँह पर पुती कालिमा को धो देगा···आपको उज्जवल बना देगा।

तभी आवाज उठी—'हम तैयार हैं। सहमत हैं।'

श्रीधर ने कहा—'आप मेरे हैं, मैं आपका हूँ। सेवक हूँ।'

भीड़ से आवाज गूंजी—'तुम महान्···तुम यशस्वी···'

तभी दीखा कि एक-एक कर सभी व्यक्ति लौट पड़े। वे विरोधी श्रीधर के समर्थक बन गये। क्योंकि यह सभी जानते थे कि इस श्रीधर को अब राजा के घर की बेटी भी प्राप्त हो सकती है। उसके गले में कोई भी सुन्दरी जयमाला डालने के लिए प्रस्तुत हो सकेगी। लोगों की भावना बनी कि गाँव के मूर्खों ने उस रामाधीन की लड़की के साथ जो अन्याय किया, जहर पैदा किया, तो यह श्रीधर उसी हलाहल को अब स्वयं पी जाने के लिये प्रस्तुत हुआ है ··शिव बन गया है···नीलकण्ठ···

जब श्रीधर फिर अपने घर में अकेला रहा, तो तभी, मन्दिर का बाबा वहाँ आया और बोला—'श्रीधरजी, आज तुम्हारे हृदय में भगवान बोला है। उसने तुम्हें साधुवाद दिया है। झुकना नहीं, इस सत्-पथ से डिगना नहीं। तुमने भी सुना, अब ठाकुरों के घर की स्त्रियाँ उस रामाधीन चमार के घर गयी हैं। वे औरतें उस लखिया को सजा रही हैं। उसकी माँग में सिंदूर···हाथों में चूड़ी···'

किन्तु इतना सुनकर भी, श्रीधर मौन था, गम्भीर बना था।

बाबा ने उठकर कहा—'और यह भी सुना तुमने, यह गाँव के मूर्ख, जो अभी तुमसे लड़ने आये थे, इतनी जल्दी बदले कि तुम्हारे उस विवाह पर समूचे गाँव की दावत करना चाहते हैं। जमींदार अगुवा बना है···उसका लड़का···'

व्यग्र भाव में श्रीधर ने कहा—'बाबाजी, यह तमाशा है। यह बुरा है। लोगों को रोक दो। कह दो, श्रीधर विवाह करता है, बस!'

बाबा चल दिया और कहता गया—'अब तक तुम्हारी भावना की बात थी, अब गाँव का नम्बर है। भावना इसकी भी है। अपूर्व है।'

श्रीधर मौन रह गया। बाबा गया, तो उसके मन में आया कि वह क्या सचमुच ही अपनी आत्मा की वाणी सुन रहा है···वह नीलकंठ बन कर जहर पी जाना चाहता है।

यह कहते ही, श्रीधर का मानस एक अजीब तरह के कोलाहल से भर गया। उसे जैसे सभी-कुछ विचित्र लग रहा था। उसके मन में देर से बात थी कि वह विवाह नहीं करेगा···एकाकी रहेगा···

उसी समय पड़ौस की दस-बारह वर्ष की लड़की आयी और श्रीधर से बोली—'भैया, मैं रेणु के घर गयी, तो वह रो उठी थी। अपने कमरे में सुबक रही थी।'

श्रीधर ने बात सुन ली, वह उसके मानस में उतर गयी। लड़की चली गयी। किन्तु वह होती तो देखती कि उसकी बात सुनने के बाद ही, श्रीधर इतना तन्मय बना इतना दीन हुआ कि रो पड़ा। उस क्षण वह अनजाने ही फूट कर रो दिया। वह संन्ध्या तक अपने कमरे में ही पड़ा रहा। मौसी से कह दिया, कि कोई आये, तो कह देना, श्रीधर घर से बाहर चला गया।

किन्तु जब संध्या आयी, अधिक गम्भीर, दीन बना श्रीधर अपने घर से चला, तो तभी, सिर झुकाये, तेज चाल से चलती हुई रेणुबाई उसके पास आकर बोली—'श्रीधर बाबू तुम···'

रेणु को देखकर श्रीधर ने कहा—'हाँ, रेणुबाई! मैंने सुन लिया था कि तुम गाँव में हो। शायद पति से सन्धि-विच्छेद कर आयी हो। मुझे यह भी पता चला है कि जिस माँ ने तुम्हें पैदा किया, वह भी तुमसे लड़ती है। भाभी ताने मारती है। भाई तुम्हें अभागिन···' श्रीधर ने जेब से एक कागज निकाला और कहा—'यह दस हजार का चैक है। तुम्हारे नाम है।। यह मेरा रुपया है, मेरे परिश्रम का!' यह कहते हुए उसने वह चैक रेणु के आँचल में रख दिया और बोला—'भूला नहीं हूँ कि एक दिन तुमने मुझे प्यार किया था, मुझे अपना समझा था। और यही मैंने जीवन में खोजा है, पाया है। अतएव मैं तुम्हारा ऋणी हूँ।

सोच नहीं पाता कि मैं तुम्हारे प्रति और क्या कर सकता हूं।'

किन्तु इतना देख-सुन, रेणु ने चंचल बनकर कहा—'मैं तभी तो यह नहीं ' नहीं, श्रीधर बाबू ! मैं कहने आयी हूं कि मैं अब भी तुम्हारी हूं। और तुम चमार की लड़की लखिया के साथ विवाह करना चाहते हो ! मैं अपनी जीविका का प्रबन्ध कर चुकी हूं ' शहर में नौकरी''' तुम विवाह करो तो तुम मुझे मार दो। मेरा गला घोंट दो।' अत्यन्त भावुक स्वर में श्रीधर ने कहा—'नहीं-नहीं, ऐसा मत सोचो, रेणुबाई। विवाह एक रस्म है, पूरी की जाती है। उससे शायद शरीर की भूख भी मिटती है। पर तुम ऐसा न करो। तुम यहां रहो। सम्मानपूर्ण जीवन बिताओ। पति देख लिया, आदमी का सुख भी पा लिया। अब जन-कल्याण में अपना जीवन लगा दो। मैं इसी गांव में एक संस्था निर्मित कर रहा हूं, सरकार से सहायता पाने का भी आश्वासन पा चुका हूं। तुम उसकी संरक्षिका बनो, यह चाहता हूं।'

लेकिन चंचल बनकर रेणु ने फिर अपने पेट की बात मुंह में उतारी, उसने कहा—'श्रीधर बाबू, तुम मेरे पाप के कारण'''हां, मेरी भूल के कारण उस चमार लड़की के साथ'''

श्रीधर ने व्यग्र बनकर कहा—'नहीं, नहीं। उसमें और तुम में कोई भेद नहीं, रेणुबाई ! चाहो तो, उसे पढ़ा देना। उसे भी सभ्य नारी बनाने में मेरी सहायता कर देना।' उसने रेणु के कंधे हाथ पर अपना हाथ रखा और कहा—'तुम रोती हो, नहीं, नहीं ! हंसो। यह जीवन रोने के लिये नहीं। आंख मूंदकर देखने की भी वस्तु नहीं। मेरे पास बीस हजार रुपया था, जिसका आधा तुम्हें दिया, आधा उस लखिया को। उसे पति नहीं मिला, मेरे कारण छिन गया, तो मैंने इस अपराध में, उसका पति बनना स्वीकार कर लिया।' यह कहते हुए श्रीधर आगे बढ़ गया।

किन्तु रेणु वहीं खड़ी रही। जैसे धरती ने पकड़ ली। जैसे अभी

उसके आँचल में था। श्रीधर का नाम उस पर लिखा था। जिस पर रेणु की आँख का आँसू गिरा और बह गया। रेणु ने वे भरी आँखें ऊपर उठायीं, जाते हुए श्रीधर की ओर देखा कि वह आगे बढ़ रहा था···बढ़े जा रहा था···रेणु ने झटका-सा खाया, अपना सिर झुका दिया और फूटकर रोते हुए कहा—'आह श्रीधर !'
